

ॐ

६२३५!A.

श्रीवीतरागाय नमः

जैनग्रन्थरत्नाकरका ॐ- ॐ रत्न १ ला.

स्वर्गीय भैया भगवतीदासजीकृत

ब्रह्माविलास.

कवि नाथूराम (प्रेमी) जैनद्वारा संशोधित.

जिसको

जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालयके मालिकने

मुम्ययीके

निर्णयसागर छापखानेमें छपाकर

प्रसिद्ध किया.

वीरसंवत् २४३०.

श्री श्री श्री
नारीकाजी माला
द्वारा प्रकाशित.

प्रथमवार १००० प्रति.] [मूल्य १॥] ६० मात्र.

प्रस्तावना.

वर्तमान समयमें हिंदी भाषा काव्यके प्राचीन वा अर्वाचीन जितने ग्रन्थ देखनेमें आते हैं. उनमेंसें शतांश भी ऐसे ग्रन्थ नहीं निकलेंगे जिनमें कि वैराग्य वेदान्त नीति वा भक्तिरसका स्वाद मिलसके. ऐसे ग्रन्थ जिनमें कि अलङ्कार—नायकादि भेदोंकी भरमार है हजारों मिलते हैं तथा विलासितापूर्ण संसारमें दिन पर दिन नयं बनते ही चलेजाते हैं. इन ग्रन्थोंसे सर्वसाधारणको कितना लाभ पहुंचता है सो तो हम नहीं कह सके परन्तु इस समय कविवर भूधरदासजीके दो सर्वेये याद आगये हैं, उन्हें पाठकोंको सुनाये देते हैं ।

राग उदै जग अन्ध भयो, सहजें सय लोगन लाज गमाई ।
सीख विना सय सीखत हैं, विषयानके सेवनकी सुधराई ॥
तापर और रचें रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई ।
अन्ध असुझनकी अखियाँनमें, झोंकत हैं रज रामदुहाई ॥ १ ॥
हे विधि ? भूल भई तुमते, समझे न कहाँ कसतुरि बनाई ? ।
दीन कुरंगनके तनमें ! तृण दंत धरे करुणा नहीं आई ॥
क्यों न रची तिन जीभन-जे, रसकाव्य करें परको दुखदाई ।
साधुअनुग्रह दुर्जनदण्ड, दुह सधते विसरी चतुराई ॥ २ ॥

हर्षका विषय है कि ऐसे समयमें जब कि भाषा साहित्य केवल मात्र शृङ्गाररसके भरोसेपरही जी रहाथा, जैनकवियोंने उसमें वेदान्त, वैराग्य भक्तिरसका श्रेयस्कर संचार करनेकेलिये अतिशय प्रयत्न किया है. क्योंकि जैनकवियोंके बनाये हुये जितने ग्रन्थ आजतक देखे व सुने गये हैं उनमेंसें किसीमें भी विषयान्ध करनेवाले रसोंका प्रवेश नहीं हुआ है. बल्कि यों कहना चाहिये कि उनके इस बातकी दृढ़ प्रतिज्ञा ही थी. जोकि उनके बनाये हुये नाटक समयसार, प्रवचनचार, वनारसीविलास, दानत-विलास, ब्रह्मविलास भूधरविलास बुधजनशतसयी, वृंदावनशतसयी आदिग्रन्थोंके देखनेसे भली भांति ज्ञात हो सची है ।

पण्डित हेमराजजी वनारसीदासजी, भगवतीदासजी, दानतरायजी, भूधरदासजी, रामचन्द्रजी, सेवाराजजी (जाट) जिनबद्ध (मुसलमान) वृंदावनजी, दौलतरा-

मजी, विहारीलालजी आदि बड़े २ भापाकवि जैनियोंमें हुए हैं। जिनकी काव्यशक्ति प्रसंगानीय थी। इनमेंसे मैया भगवतीदासजीकृत यह ब्रह्मविलास ग्रन्थ (जिसको एक प्रकारका वेदांत कहना चाहिये) है। इस ग्रन्थके विषयमें कुछ कहनेसे पहिले हम उक्त कविवरके विषयमें कुछ लिखकर पाठकोंको यथाशक्ति परिचय देना चाहते हैं।

कविवर भगवतीदासजीका जन्म आगरामें ही हुआ था और वे अपने अन्तसमय-तक प्रायः वहींपर रहे हैं, ऐसा उनके ग्रन्थसे जान पड़ता है। इनके पिताका नाम लालजी था। ये ओसवाल जातिके वणिक् थे। इन्होंने प्रशस्तिमें अपना गोत्र कटारिया लिखा है। इनके समयमें औरंगजेब बादशाह मौजूद थे। इनकी जन्मतिथि व मृत्यु तिथिका अभीतक हमें पता नहीं लगा तो भी उनकी कवितासे जो वि० संवत् १७३१ से १७५५ तकका क्रमशः उल्लेख मिलता है। उससे जान पड़ता है कि, उनका जन्म अठारहवीं शताब्दीके पहिले ही हुआ होगा। इसके पहिले या आगेकी कोई भी कविता अभीतक नहीं मिली है। कवितामें इन्होंने अपना पद व भोग 'मैया' वा 'मविक' तथा एक जगह 'दासकिशोर' भी रक्खा है।

एक दन्तकथासे प्रसिद्ध है कि कविवर केशवदासजी तथा दादू पंथी बाबा सुन्दरदासजी और मैया भगवतीदासजी एकही गुरुके शिष्यथे अर्थात् काव्य विषय इन्होंने एकही गुरुसे सीखा था। विद्याभ्यासके पश्चात् तीनों पृथक् २ होगये। कविवर केशवदासजीने जब 'रसिकप्रिया' ग्रन्थ निर्माण किया तो उसकी एक २ प्रति सहपाठी वा मित्र होनेके कारण बाबा सुन्दरदासजी तथा भगवतीदासजीके पास समालोचनार्थ भेजी। भगवतीदासजीने रसिकप्रियाको देखकर एक छंद बनाया, और उसे रसिकप्रियाके पृष्ठपर लिखकर वापिस भेज दिया था। वह यह है।

बड़ी नीति लघु नीति करत है, वाय सरत बढायोय भरी ।
फोड़ा आदि फुनगुणी मंडित, सकल देह मनु रोग दरी ॥
शोणित हाड मांसमय मूरत, तापर रीझत घरी घरी ।
ऐसी नार निरखकर केशव, 'रसिकप्रिया' तुम कहा करी? ॥१९॥

(ब्रह्मविलास पृष्ठ १८४)

इसी प्रकार बाबा सुन्दरदासजीने भी जो कि वैराग्य वेदान्त विषयके अच्छे कवि थे, रसिकप्रियाकी बहुत कुछ निंदा की है। जो कि उनके बनाये हुए सुन्दरविलाससे प्रगट है।

इस दन्तकथाके कथनानुसार इन्हें केशवदासजीके समकालीन ही कहना चाहिये परन्तु इतिहास प्रकाशकोंने केशवदासजीका शरीरपात विक्रमसंवत् १६७० में होना लिखा है. इसकारण इस दन्तकथापर विश्वास नहीं किया जा सक्ता. कदाचिन् रसिकप्रिया इनके देखनेमें पीछेंसे आई हो और फिर यह छंद बनाया हो ती भी संभव हो सक्ता है.

यह ब्रह्मविलास ग्रन्थ यथार्थमें उनकी विक्रम संवत् १७३१ से १७५५ तककी कविताका संग्रह है जो कि सांसारिक कार्योंसे निराकुलित होनेपर समय समय पर बनाया गया है. किन्तु द्रव्यसंग्रह आदिमें इनके मित्र नान-सिंहजीकी कविताका भी प्रवेश है. यद्यपि वह कविता इतनी उत्तम नहीं है. जो इनकी कविताके शामिल की जाय तब भी कविवरने अपने मित्रके उत्साहवर्द्धनार्थ इस ग्रन्थमें स्थानप्रदानकरके यथार्थ मित्रता वा राजनताका परिचय दिया है।

भगवतीदासजी संस्कृत और हिंदीके ज्ञाता होनेके अतिरिक्त फारसी, गुजराती मारवाड़ी बंगला आदि भाषाका भी ज्ञान रखते थे, ऐसा अनुमान उनकी कवितामें प्रयोजित शब्दोंसे तथा कोई २ कविता खास गुजराती फारसीमें करनेसे स्पष्टतया हो सक्ता है. तथा ओसवाल जातिकी उत्पत्ति मारवाड़ देशसे होनेके कारण कविवर भगवतीदासजीकी मातृभाषा मारवाड़ी होनाभी संभव है. क्योंकि इनकी कविता-में यत्र तत्र मारवाड़ी भाषाके (जो कि प्रायः प्राकृत भाषाके शब्दोंसे सुशोभित है) शब्दोंका प्रयोग अधिक पाया जाता है.

इस ग्रन्थके शोधनेका भार ग्रन्थप्रकाशक पं० पन्नालालजीने मुझ अल्पज्ञपर डाला था. यद्यपि मैं कान्य विषयका इतना जानकार नहीं हूं जो ऐसे २ अपूर्वभावविशिष्ट ग्रन्थोंका संशोधन कर सकूं. परन्तु उक्त प्रकाशकजीकी आज्ञाका उल्लंघन करनेको असमर्थ होकर मुझसे जहांतक बना है परिश्रम करनेमें त्रुटि नहीं की है. फिर भी संभव है कि प्रमादवशतः अनेक अशुद्धियां रह गई होंगी. आशा है कि उन्हें पाठक महाशय सुधारके पढ़नेकी कृपा करेंगे.

इस ग्रन्थमें परमात्मशतक और कुछ चित्रयद्धकविता जो पूर्वाद्धमेंथी और जिसे साथ प्रकाशित करनेकी आवश्यकता समझ अनवकाशवशतः रख छोड़ी थी वह हमने कठिन २ दोहोंके अर्थसे यथाशक्ति विभूषितकर अन्तमें लगाई है. आशा है कि पाठक महाशय इस क्रमसंग करनेके अपराधको क्षमा करेंगे. इसके अतिरिक्त इस ग्रंथमें व, व, श, प, स, ख, क्ष, च्छ अनुसार और सांनुनासिक संबंधी रदवदलकी त्रुटियां भी विशेष रही होंगी सो पाठक महाशय मुझे अल्पज्ञ बालक जान क्षमा करेंगे.

इस ग्रन्थके संशोधनार्थ ४ प्रतियोंकी सहायता ली गई है. जिनमेंसे एक तो वि० सं० वत् १७८० की, दूसरी सं० १८०४ की, तीसरी सं० १९२० की और चौथी सं० १९५३ की लिखी हुई है. इनमेंसे सं० १७८० की प्रतिसे हमें बहुत कुछ सहायता मिली है. क्योंकि यह प्रति ग्रन्थनिर्माण होनेके थोड़े ही दिन पीछेकी लिखी हुई होनेसे बहुत कुछ शुद्ध है. अन्य प्रतियोंमें अनभिज्ञ लेखकोंकी असावधानीकी परम्परासे बहुत कुछ पाठान्तर पाया गया है.

अन्तमें ग्रन्थकर्त्ता व प्रकाशकमहाशयके परिश्रमपर, विचार करके पाठकगण इस ग्रन्थसे अपना और अपनी सन्ततिका दितसाधन करेंगे ऐसी आशा करके इस प्रस्तावनाको पूर्ण करता हूं।

मुम्बयी.

१७-१२-१९०३ ई०

सर्वसज्जनोंका हितैषी दास-

नाथूराम, प्रेमी जैन.



सूचीपत्र.

वि. सं. विषयनाम.	पृष्ठाङ्क.	वि. सं. विषयनाम.	पृष्ठाङ्क.
१ पुण्यपचीसिका.	१	९ परमात्माकी जयमाला.	१०४
२ शतअष्टोत्तरी.	८	१० तीर्थंकरजयमाला.	१०५
३ द्रव्यसंग्रह.	३३	११ मुनिराजजयमाला.	१०६
४ चेतनकर्मचरित्र.	५५	१२ अहिक्षितिपार्श्वनाथस्तुति.	१०७
५ अक्षरवत्तीसिका.	८४	१३ शिक्षावली. (शिक्षाछंद).	१०८
६ जिनपूजाष्टक.	८८	१४ परमार्थपदपंक्ति.	१०९
७ फुटकर कविता.	९१	१५ गुरुशिष्यप्रश्नोत्तरी.	११८
८ चतुर्विंशति जिनस्तुति.	९२	१६ मिथ्यात्वविध्वंसनचतुर्दशी.	११९

सूचीपत्र.

६

१७ जिनगुणसाला.	१२३	४२ पुण्यपापजगमूलपचीसिका.	१९४
१८ सिञ्जाय और परमेष्ठि नमस्कार	१२५	४३ बावीसपरीपह.	२००
१९ गुणमंजरी.	१२६	४४ मुनिआह्वारविधि.	२०८
२० लोकाक्रांशक्षेत्रपरिमाण कथन.	१२३	४५ जिनधर्मपचीसिका.	२११
२१ मधुविन्दुक्रुको चौपई.	१२५	४६ अनादिवत्तीसिका.	२१७
२२ सिद्धचतुर्दशी.	१४०	४७ समुद्रातस्वरूप.	२२०
२३ निर्वाणकौडभापा.	१४४	४८ मूढाष्टक.	२२१
२४ एकादशगुणस्थानपंथवर्णन.	१४६	४९ सम्यक्त्वपचीसिका.	२२२
२५ कालाष्टक.	१४८	५० वैराग्यपचीसिका.	२२५
२६ उपदेशपचीसिका.	१४९	५१ परमात्मछत्तीसी.	२२७
२७ नन्दीश्वरद्वीपकी जयमाला.	१५१	५२ नाटकपचासी.	२३०
२८ बारहभावना.	१५३	५३ उपादाननिमित्तसंवाद.	२३२
२९ कर्मबन्धके दशभेद.	१५४	५४ चतुर्विंशतितीर्थकरजयमाला.	२३६
३० सप्तभंगीवाणी	१५६	५५ पंचेन्द्रियसवाद.	२३८
३१ सुबुद्धिचौवासी.	१५७	५६ ईश्वरनिर्णयपचीसी.	२५२
३२ अकृत्रिमचैत्यालयकी जयमाला.	१६३	५७ कर्ताभकर्तापचीसी.	२५६
३३ चवदहगुणस्थानवार्त्तिजीवसंख्या	१६६	५८ दृष्टांतपचीसी.	२५९
वर्णन. (शिवपंथपचीसिका.)		५९ मनवत्तीसी.	२६१
३४ पन्द्रहपात्रकी चौपई.	१६९	६० स्वप्नवत्तीसी.	२६४
३५ ब्रह्मा ब्रह्मनिर्णयचतुर्दशी.	१७१	६१ सूवायत्तीसी.	२६७
३६ अनित्यपचीसिका.	१७२	६२ ज्योतिषके छंद.	२७१
३७ अष्टकर्मकी चौपई.	१७७	६३ पदराग प्रभाती.	२७२
३८ मुपंथकुपथपचीसिका.	१८०	६४ फुटकर कविता.	२७२
३९ मोहब्रमाष्टक.	१८६	६५ परमात्मशतक.	२७८
४० आश्चर्यचतुर्दशी.	१८८	६६ चित्रवद्धकविता.	२९२
४१ रागादिनिर्णयाष्टक.	१९३	६७ ग्रन्थकर्तापरिचय.	३०५



६७३४. A. श्रीवीतरागाय नमः

स्वर्गीय कविवर भैया भगोतीदासकृत

ब्रह्मविलास.

अथ पुण्यपचीसिका.

मङ्गलाचरण छप्पय.

प्रथम प्रणमि अरहंत, वहुरि श्रीसिद्ध नमिजै ।
 आचारज उवझाय, तासु पद वंदन किजै ॥
 साधु सकल गुणवंत, शान्तमुद्रा लखि वंदौ ।
 श्रावक प्रतिमा धरन, चरन नमि पापनिकंदौ ॥
 सम्यकवंत स्वभाव धर, जीवजगतमहिं होंहि जित ।
 तित तित त्रिकाल वंदित 'भविक' भावसहित शिरनाय नित ॥१॥

श्रीनिनेन्द्रस्तुति छप्पय.

मोहकर्म जिहँ हस्यो, कस्यो रागादिक नष्टित ।
 द्वेष सवै परिहस्यो, जागि क्रोधहिं किय भिष्टित ॥
 मानमूढ़ता हरिय, दरिय माया दुखदायिन ।
 लोभ लहरगति गरिय, खरिय प्रगटी जु रसायिन ॥
 केवल पद अवलंवि हुव, भवसमुद्रतारनतरन ।
 त्रयकाल चरन वंदत 'भविक' जयजिनंद तुहँ पर्यशरन ॥२॥

श्रीसिद्धस्तुति छप्पय छन्दः

अचल धाम विश्राम, नाम निहचै पद मंडित ।
 यथाजात परकाश, बास जहँ सदा अखंडित ॥
 भासहि लोकालोक, थोक सुखसहज विराजहिं ।
 प्रणमहि आपु सहाय, सर्वगुणमंदिर छाजहिं ॥
 इहविधि अनंत जिय सिद्धमहिं, ज्ञानप्रान विलसंत नित ।
 तिन तिन त्रिकाल वंदत 'भविक' भावसहित नित एकचित् ॥ ३ ॥

श्रीआचार्यजीकी स्तुति छप्पय छन्द.

पंच परम आचार, ताहि धारहिं आचारज ।
 ज्ञान चार संयुक्त, करत उत्तम सब कारज ॥
 देत धर्म उपदेश, हेत भविजीय विचारत ।
 जिनवानी जो खिरत, सु तौ निज हिरदै धारत ॥
 कहत अर्थ परकाशकें, केवलपद महिमा लखत ।
 जुगसाधुमध्यपरधानपद, आचारज अमृत चखत ॥ ४ ॥

श्रीउपाध्यायस्तुति कवित्त.

द्वादशांगवानी सुबखानी वीतराग देव, जानी भव्यजीवन
 अनादिकी कहानी है । ताके पाठ करिवेको भेद हृदै धरिवेको,
 अर्थके उचरिवेको पंडित प्रमानी है ॥ पर समुझायवेको ज्ञान
 उपजायवेको, रूपके रिझायवेको निपुण निदानी हैं । याहीतें
 प्रमाण मानी सत्य उवझायवानी, 'भैया' यों बखानी जाकी
 मोक्षवधू रानी है ॥ ५ ॥

श्रीमुनिराजकी स्तुति.

दहिकैं करम अघ लहिकैं परममग, गहिकैं धरमध्यान ज्ञानकी
 लगन है । शुद्ध निजरूप धरै परसों न प्रीति करै, बसत शरीरपै

अलिप्त ज्यों गगन है ॥ निश्चै परिणामसाधि अपने गुणों अराधि,
अपनी समाधिमध्य अपनी जगन है । शुद्ध उपयोगी मुनि राग-
द्वेष भये शून्य, परसों लगन नाहिं आपमें मगन है ॥ ६ ॥

श्रावकप्रशंसा.

मिथ्यामतरीत टारी भयो अणुव्रतधारी, एकादश भेद भारी
हिरदै वहतु है । सेवा जिनराजकी है यहै शिरताजकी है,
भक्ति मुनिराजकी है चित्तमें चहतु है । वीसद्वै निवारी रीति
भोजन न अक्षप्रीति, इंद्रिनिको जीत चित्त थिरता गहतु है ।
दयाभाव सदा धरै, मित्रता प्रगट करै, पापमलपंक हरै मुनि यों
कहतु है ॥ ७ ॥

सम्यक्तकी महिमा.

भौथिति निकंद होय कर्मबंद मंद होय, प्रगटै प्रकाश निज
आनंदके कंदको । हितको दृढाव होय विनैको बढाव होय,
उपजै अंकूर ज्ञान द्वितियाके चंदको ॥ सुगति निवास होय दुर्ग
तिको नाश होय, अपने उछाह दाह करै मोहफंदको । सुख
भरपूर होय दोष दुख दूर होय, यातै गुणवृंद कहै सम्यक
सुछंदको ॥ ८ ॥

श्रीजिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाको नमस्कार छप्पय.

प्रथम प्रणमि सुरलोक, जहां जिनचैत्य अकृत्रिम ।
चैत्य चैत्य प्रतिबिंब, एकसो आठ अनूपम ॥
बहुरि प्रणमि मृतलोक, विम्ब जिनके जिहँ थानक ।
कृत्य अकृत्तिम दुविधि, लसै प्रतिमा मनमानक ॥
पाताल लोक रचना प्रबल, तिहँ थानक जिनबिबँ विदित ।
तहँ तहँ त्रिकाल वंदित 'भबिक' भावसहित शिरनायनित ॥ ९ ॥

सम्यग्दृष्टिकी महिमा कवित्त.

स्वरूप रिझवारेसे सुगुण मतवारेसे, सुधाके सुधारेसे सुप्राण दयावंत हैं । सुबुद्धिके अथाहसे सुरिद्धपातशाहसे, सुमनके सनाहसे महाबडे महंत हैं । सुध्यानके धरैयासे सुज्ञानके करैयासे, सुप्राण परखैयासे शकती अनंत हैं । सबै संघनायकसे सबै बोललायकसे सबै सुखदायकसे सम्यकके संत हैं ॥ १० ॥

(सबैया)

काहेको क्रूर तू क्रोध करै अति, तोहि रहैं दुख संकट धेरें ।
काहेको मान महाशठ राखत, आवत काल छिनै छिन नेरे ॥
काहेको अंध तु बंधत मायासों, ये नरकादिकमें तुहै गेरें ।
लोभ महादुख मूल है भैया, तु चेतत क्यों नहिं चेत सवेरे ॥ ११ ॥

कवित्त.

जेते जग पाप होंहि अभ्रमके व्याप होंहि, तेते सब कारजको मूल लोभकूप है । जेते दुखपुंज होंहि कर्मनके कुंज होंहि, तेते सब बंधनको मूल नेह रूप है ॥ जेते बहु रोग होंहि व्याधिके संयोग होंहि, तेते सब मूलको अजीरन अनूप हैं । जेते जगमर्ण होंहि काहूकी न शर्ण होंहि, तेते सब रूपको शरीरनाम भूप है ॥ १२ ॥

ज्ञानमें है ध्यानमें है वचन प्रमाणमें है, अपने सुथानमें है ताहि पहचानुरे । उपजै न उपजत मूए न मरत जोई, उपजन मरन व्योहार ताहि मानुरे ॥ रावसो न रंकसो है पानीसो न पंकसो है, अति ही अटंकसो है ताहि नीके जानुरे । आपनो प्रकाश करै अष्टकर्म नाश करै, ऐसी जाकी रीति 'भैया' ताहिउर आनुरे ॥ १३ ॥

सेर आध नाजकाज अपनों करै अकाज, खोवत समाज सब

राजनितें अधिकें । इंद्र होतो चंद्र होतो नरनागइन्द्र होतो
करत तपस्या जोपैं पैठि साधुमधिकें ॥ इन्द्रिनको दम होतो 'यम'
ओ नियम होतो, 'जम'को न गम होतो ज्ञान होतो अधिकें ।
लोकालोक भास होतो अष्टकर्म नाश होतो, मोखमें सुवास
होतो चलतो जो सधिकें ॥ १४ ॥

सवैया.

काहेको कूर तू भूरि सहै दुख, पंचनके परपंच भखाये ।
ये अपने अपने रसको नित पोखतु हैं, तोहि लोभ लगाये ॥
तू कछु भेद न बूझतु रंचक, तोहि दगा करि देत बँधाये ॥
हैं अबके यह दाव भलो नैर ! जीत ले पंच जिनंद बताये ॥ १५ ॥
हे नैर अंध तू बंधत क्यों निज, सूझत नाहिं कै भंग खई है ।
जे अघ संचतु है नित आपको, ते तोहि सौंज करैगे गई है ॥
ये नरकादिकमें तोहि डारिकें, देहैं सजा बहु ऐसी भई है ।
मानत नाहिं कहूं समुझाय, सु तोकों दई मति ऐसी दई हैं ॥ १६ ॥

कवित्त.

धूमनके धौरहर देख कहा गर्व करै, ये तो छिनमाहिं जांहि
पाँन परसत ही । संध्याके समान रंग देखत ही होय भंग,
दीपकपतंग जैसे काल गरसत ही ॥ सुपनेमें भूप जैसे इंद्रधनुरूप
जैसे, ओसवूंद धूप जैसे दुरै दरसत ही । ऐसोई भरम सब कर्म-
जालवर्गणाको, तामे मूढ मग्न होय मरै तरसत ही ॥ १७ ॥

मात्रिक कवित्त.

देख तू दृष्टि विचार अभ्यंतर, या जगमहिं कछु सांचो आह ।
मात तात सुत बन्धव वनिता, इनसो प्रीति करै कित चाह ।

(१) 'दूर सब तम हो तो' ऐसा भी पाठ है. (२) बहकाये. (३) 'तोही'
ऐसा भी पाठ है. (४) 'शड' ऐसा भी पाठ है.

तन यौवन कंचन औ मंदिर, राजरिद्ध प्रभुता पद काह ।
ये उपजै विनशै अपनी धिति, तूंकित नाथ होंहि शठ ! ताह ॥ १८ ॥

कवित्त.

संसारी जीवनके करमनको बंध होय, मोहको निमित्त पाय
रागद्वेषरंगसों । वीतराग देवपै न रागद्वेष मोह कहूं, ताहींतें
अबंध कहे कर्मके प्रसंगसों ॥ पुगलकी क्रिया रही पुगलके
खेतबीचि, आपहीतें चलै धुनि अपनी उमंगसों । जैसे मेघ परै
विनु आपनिज काज करै, गर्जि वर्षि झूम आवे शक्ति सु
छंगसों ॥ १९ ॥

मात्रिक कवित्त.

आतमसूवा भरममहिं भूल्यो, कर्म नलिनपै बैठो आय ।
विषयस्वादविरम्यो इह धानक, लटक्यो तरै ऊर्द्धभये पाँय ॥
पकरै मोहमगन चुंगलसों, कहै कर्मसों नाहिं बसाय ।
देखहु किन ? सुविचार भविक जन, जगत जीव यह धरै स्वभाय २०
तोलों प्रगट पूज्यपद थिर है, तोलों सुजस लहै परकास ।
तोलों उज्जल गुणमणि स्वच्छित्त, तोलों तपनिर्मलता पास ॥
तोलों धर्मवचनमुख शोभत, मुनिपद ऐसे गुनहिं निवास ।
जोलों रागसहित नहिं देखत, भामनिको मुखचंदविलास ॥ २१ ॥

कवित्त.

जोपै चारों वेद पढे रचिपचि रीझ रीझ, पंडितकी कलामें
प्रवीन तू कहायो है । धरम व्योहार ग्रन्थ ताहूके अनेक भेद,
ताके पढे निपुण प्रसिद्ध तोहि गायो है ॥ आतमके तत्त्वको
निमित्त कहूं रंच पायो, तोलों तोहि ग्रन्थनिमें ऐसे के बतायो है ।

जैसे रसव्यञ्जनिमें करछी फिर सदीच, मूढतासुभावसों न स्वाद
कछु पायो है ॥ २२ ॥

संवैया.

चेतन ऐसेमें चेतत क्यों नहि, आय बनी सबही विधि नीकी ।
है नरदेह यो आरज खेत, जिनंदकी बानी सु वृंद अमीकी ॥
तामे जु आप गहो थिरता तुम, तौ प्रगट महिमा सब जीकी ।
जामें निवास महामुखवासनु, आय मिल पतियां शिवतीकी ॥ २३

कवित्त.

ग्रीष्ममें धूप परं तामें भूमि भारी जरै, फूलत है आक पुनि
अतिही डमहिकें । वर्षाऋतुनेष झरै तामें वृक्ष केई फरै, जरत
जवासा अघ आपुर्हीतैं डहिकें ॥ ऋतुको न दोष कोऊ पुण्यपाप
फलें दोऊ, जेमें जैसे किये पूर्व तैसे रहै सहिकें । केई जीव
सुखी होंहि केई जीव दुखी होंहि, देखहु तमासो 'भैया' न्यारे
नैकु रहिकें ॥ २४ ॥

दोहा.

पुण्य ऊर्द्ध गतिको करै, निश्चै भेद न कोय ।
तातें पुण्यपचीसिका, पढे धर्म फल होय ॥ २५ ॥

सत्रहसे तेतीसके, उत्तम फागुन मास ।
आदिपक्ष नमि भावसों, कहै भगोतीदास ॥ २५ ॥

इति पुण्यपचीसिका समाप्ता ॥ १ ॥

अथ शतअष्टोत्तरी कवित्तवन्ध लिख्यते ।

दोहा.

ओंकार गुण अति अगम, पँचपरमेष्टि निवास ।
प्रथम तासु वंदन किये, लंहिये ब्रह्मविलास ॥ १ ॥

छप्पय.

द्रव्य एक आकाश, जासुमहिं पंच विराजत ।
द्रव्य एक चिद्रूप, सहज चेतनता राजत ॥
द्रव्य एक पुनि धर्म, चलन सबको सहकारी ।
द्रव्य सुएक अधर्म, रहनधिरता अधिकारी ॥
द्रव्य एक पुद्गल प्रगट, अरु अंतक पट मानिये ।
निज निज सुभावमें सब मगन, यह सुबोध उर आनिये ॥ २ ॥
जीव ज्ञानगुण धरै, धरै मूरतिगुण पुद्गल ।
जीव स्वपर करि भेद, भेद नहि लहै कर्ममल ॥
जीव सदा शिवरूप, रूपमें दर्बसु ओरें ।
जीव रमै निजधर्म, धर्मपर लहै न ठौरें ।
जीव दर्ब चेतन सहित, तिहुं काल जगमें लसै ।
तसु ध्यान करत ही भव्य जन, पंचमिगति पलमें वसै ॥ ३ ॥
रसनाके रस मीन, प्राण पलमाहिं गमावै ।
अलि नासा परसंग, रैन बहु संकट पावै ॥
मृग करि श्रवण सनेह, देह दुरजनको दीनी ।
दीपक देख पतंग, दृष्टि हित कैसी कीनी ॥
फरसइंद्रिवस करि पखो, कौन कौन संकट सहै ।
एक एक विषबेलिसम, पंचन सेय तु सुख चाहै ॥ ४ ॥

(१) 'होवत'—ऐसा भी पाठ है. (२) काल.

चेतु चेतु चित चेतु, विचक्षण वेर यह ।

हेतु हेतु तुच हेतु, कहित हों रूप गह ॥

मानि मानि पुनि मानि, जनम यहु बहुर न पावै ।

ज्ञान ज्ञान गुण जान, मूढ क्यों जन्म गमावै ॥

बहु पुण्य अरे नरभौ मिल्यो, सो तू खोवत वावरे ।

अज हूं संभारि कछु गयो नहि 'भैया' कहत यह दावरे ॥५॥

कवित्त.

जैसो वीतराग देव कह्यो है स्वरूपसिद्ध, तैसो ही स्वरूप मेरो
यामें फेर नाहीं है । अष्टकर्म भावकी उपाधि मोमें कहूं नाहिं,
अष्ट गुण मेरे सो तौ सदा मोहि पांहीं है ॥ ज्ञायक स्वभाव
मेरो तिहूं काल मेरे पास, गुण जे अनन्त तेऊ सदा मोहिमाहीं
हैं । ऐसो है स्वरूप मेरो तिहूं काल सुद्धरूप, ज्ञानदृष्टि देखतैं न
दूजी परछांही है ॥ ६ ॥

विकट भौसिंधु ताहि तरिवेको तारू कौन, ताकी तुम तीर
आये देखो दृष्टि धरिकैं । अवके संभारेतैं पार भले पहुँचत हौं,
अवके संभारे विन बूडत हो तरिकैं ॥ बहुस्यो फिर मिलवो नाहिं
ऐसो है संयोग, देव गुरु ग्रंथ करि आये हिय धरि कै । ताहि तू
विचारि निज आतमनिहारि 'भैया' धारि परमातमाहिं शुद्ध
ध्यान करिकैं ॥ ७ ॥

जोपैं तोहि तरिवेकी इच्छा कछु भई भैया, तो तौ वीतरा-
गजूके वच उर धारिये । भौसमुद्रजलमें अनादिही तैं बूडत हो,
जिननाम नौका मिली चित्ततैं न टारिये ॥ खेवट विचारि शुद्ध
थिरतासों ध्यान काज, सुखके समूहको सुदृष्टिसों निहारिये ।
चलिये जो इह पंथ मिलिये इयौ मारगमें, जन्मजरांमरनके
भयको निवारिये ॥ ८ ॥

ज्ञानप्राप्त तेरे ताहि नेरे तौ न जानत हो, आनप्राप्त मानि
आनरूप मानि रहे हो । आत्मके वंशको न अंश कहूं खुल्यो
कीजै, पुगलके वंशसेती लागि लहलहे हो ॥ पुगलके हारे हार
पुगलके जीते जीत, पुगलकी प्रीतसंग कैसें बहवहे हो । लागत
हो धायधाय लागै न उपाय कछु, सुनो चिदानंदराय ! कौन पंथ
गहे हो ? ॥ ९ ॥

छंद द्रुमिल ।

इक बात कहूं शिवनायकजी, तुम लायक ठौर कहां अटके ? ।
यह कौन विचक्षण रीति गही, विनुदेखहि अक्षनसों भटके ॥
अजहूं गुणमानो तो शीख कहूं, तुम खोलत क्यों न पटै घटके ? ।
चिनमूरति आपु विराजतु है, तिन सूरत देखे सुधा गटके ॥ १० ॥

सवैया

शुद्धितें मीन पियें पय बालक, रासभ अंगविभूति लगाये ।
राम कहे शुक ध्यान गहे वक, भेड़ तिरै पुनि मूढ़ मुड़ाये ॥
वस्त्र विना पशु व्योम चलै खग, व्याल तिरैं नित पौनके खाये ।
एतो सबै जड़ रीत विचक्षण ! मोक्ष नहीं विनतत्वके पाये ॥ ११ ॥
कर्म स्वभावसों तौंतोसो तोरिकें, आत्म लक्षण जानि लये हैं ।
ध्यान करै निहचै पदको जिहैं, थानक और न कोऊ ठये हैं ॥
ज्ञान अनंत तहां प्रतिभासत, आपु ही आपु स्वरूप छये हैं ।
और उपाधि पखारिकें चेतन, शुद्ध भये तेउ सिद्ध भये हैं ॥ १२ ॥
देखत रूप अनूप अनूपम, सुंदरता छवि रीझिकें मोहै ।
देखत इन्द्र नरेन्द्र महामुनि, लच्छिविभूषण कोटिक सोहै ॥

देखत देव कुदेव सवै जग, राग विरोध धरै उर दो है ।
ताहि विचारि विचक्षण रे मन ! द्वैपल देखु तो देखत को है ॥ १३ ॥

कवित्त.

सुनो राय चिदानंद कहोजु सुबुद्धि रानी, कहैं कहा बेर बेर नैकु
तोहि लाज है । कैसी लाज कहो कहां हम कछु जानत न, हमें इ-
हां इंद्रनिको विपै सुख राज है ॥ अरे मूढ विपै सुख सेयें तू अनन्ती
बेर, अज हूं अघायो नाहिं कामी शिरताज है । मानुष जनम पाय
आरज सुखेत आय, जो न चेतैं हंसराय तेरो ही अकाज है ॥ १४ ॥

सुनो मेरे हंस एक बात हम सांची कहैं, कहो क्यों न नीके
कोउ मुखहू गहतु है । तुम जो कहत देह मेरी अरु नीकै राखों,
कहो कैसें देह तेरी राखी ये रहतु है ? ॥ जाति नाहिं पांति
नाहि रूपरंग भांति नाहिं, ऐसैं झूठ मूठ कोउ झूटोहू कहतु है ।
चेतन प्रवीनताई देखी हम यह तेरी, जानिहो जु तब ही ये दुख
को सहतु है ॥ १५ ॥

सुनो जो सयाने नाहु देखो नेकु टोटा लाहु, कौन विवसाहु,
जाहि ऐसैं लीजियतु है । दश द्यौंस विपैसुख ताको कहो केतो
दुख, परिकें नरकमुख कोलों सीजियतु है ॥ केतो काल बीत
गयो अजहू न छोर लयो, कहूं तोहि कहा भयो ऐसे रीझियतु
है । आपु ही विचार देखो कहिवेको कौन लेखो, आवत परेखो
तातैं कह्यो कीजियतु है ॥ १६ ॥

मानत न मेरो कह्यो मान बहुतेरो कह्यो, मानत न तेरो गयो
कहो कहा कहिये ? । कौन रीझि रीझि रह्यो कौन बूझ बूझ रह्यो,
ऐसी बातैं तुमे यासों कहा कही चाहिये ? । एरी मेरी रानी तोसों
कौन है सयानी सखी, एतौ वापुरी विरानी तू न रोस गहिये ।

इनसो न नेह मोहि तोहीसों सनेह वन्यों, रामकी दुहाई कहूं
तेरे गेह रहिये ॥ १७ ॥

जीवन कितेक तापै सामा तू इतेकु करै, लक्ष कोटि जोर जोर
नैकु न अघातु है । चाहतु धराको धन आन सब भरो गेह, यों न
जानै जनम सिरानो मोहि जात है ॥ कालसम क्रूर जहां निशदिन
घेरो करै, ताके बीच शशा जीव कोलों ठहरातु है । देखतु है नैन-
निसों जगसब चल्यो जात, तऊमूढचेतै नाहिं लोभै ललचातु है ॥ १८ ॥

कहां हैं वे वीतराग जीते जिन रागद्वेष, कहां हैं वे चक्रवर्ति
छहों खंडके धनी । कहां हैं वे वासुदेव युद्धके करैया वीर, कहां
हैं वे कामदेव कामकीसी जे अनी ॥ कहां है वे राजा राम राव-
नसे जीते जिनि, कहां हैं वे शालिभद्र लच्छि जाके थी धनी । ऐसे
तो कईक कोटि है गये अनंती बेर, डेढ दिन तेरी वारी काहेको
करै मनी ॥ १९ ॥

सुनिरे सयाने नर कहा करै घरघर, तेरो जु शरीरघर घरीज्यों
तरतु है । छिन २ छीजे आय जल जैसे घरी जाय, ताहूको इलाज
कछु उरदू धरतु है ॥ आदि जे सहे हैं ते तौ यादि कछु नाहि तो-
हि, आगे कहो कहा गति काहे उछरतु है । घरी एक देखो ख्याल
घरीकी कहां है चाल, घरीघरी घरियाल शोर यों करतु है ॥ २० ॥

पाय नर देह कहो कीनों कहा कामतुम, रामा रामा धनधन कर-
त विहातु है । कैक दिन कैक छिन रहि है शरीर यह, याके संग
ऐसें काज करतु सुहातु है ॥ जानत है यह घर मरवेको नाहिं डर,
देख भ्रम भूलि मूढ फूलि मुसकात है । चेतरे अचेत पुनि चेतवेको
नाहिं ठौर, आज कालि पींजरेसों पंछी उड जातु है ॥ २१ ॥

कर्मको करैया सो तो जानै नाहिं कैसे कर्म, भरममें अनादिही-

को करमैं करतु है । कर्मको जनैया(भैया)सोतो कर्म करै नाहिं,
धर्म माहि तिहुंकाल धरमें धरतु है॥दुहूँनकी जाति पांति लच्छन स्व
भाव भिन्न, कबहुँन एकमेक होइ विचरतु है। जा दिनातें ऐसी दृष्टि
अन्तर दिखाई दर्ई, तादिनातें आपु लखि आपुही तरतु है ॥२२॥

सवैया.

जीव अकर्ता कह्यो परको, परको करता पर ही परवान्यो ।
ज्ञान निधान सदा यह चेतन, ज्ञान करै न करै कछु आन्यो॥
ज्यों जग दूध दही घृत तक्रकी, शक्ति धरै तिहुं काल बखान्यो।
कोऊ प्रवीन लखै दृगसेती सु, भिन्न रहै वपुंसो लपटान्यो॥२३॥

मानिक कवित्त.

चेतन चिह्न ज्ञान गुण राजत, पुद्गलके वरणादिक रूप ।
चेतन आपरु आन विलोकत, पुगल छाँह धरै अरु धूप ॥
चेतनकै थिरता गुण राजत, पुगलकै जड़ता जु अनूप ।
चेतन शुद्ध सिधालय राजत, ध्यावत है शिवगामी भूप ॥ २४ ॥

कवित्त.

जीवहू अनादिको है कर्महू अनादिको है, भेदहू अनादिको है सर्व
दोऊदलमें । रीझवेको है स्वभाव रीझनाहीं है स्वभाव, रीझवे-
को भावसो स्वभाव है अमलमें ॥ साँचेही सो करै प्रीति साँचेसों
न करी प्रीति, साँची विधि रीतिसो बहाय दर्ई पलमें । ज्ञान गुन
काम कीने काम के न काम कीने, ध्यानमें मुकाम कीने वसे आप
थलमें ॥ २५ ॥

दासीनके संग खेल खेलत अनादि बीते, अजहूँ लों वहै बुद्धि
कौन चतुरई है । कैसी है कुरूपकारी निशि जैसेँ अँधियारी, औ-

गुन गहनहारी कहा जान लई है ॥ इनहीकी संगतसों संकट
अनेक सहे, जानि बूझ भूल जाहु ऐसी सुधि गई है । आवत
परेखो हंस ! मोहि इन वातनको, चेतनाके नाथको अचेतना क्यों
भई है ॥ २६ ॥

कहाँ कहाँ कौनसंग लागेही फिरत लाल ! आवो क्यों न आज
तुम ज्ञानके महलमें । नैकहू विलोकि देखो अन्तरसुदृष्टिसेती,
कैसी कैसी नीकी नारि ठाड़ी हैं टहलमें ॥ एकनतें एक वनी
सुंदरसुरूप घनी, उपमा न जाय गनी वामकी चहलमें । ऐसी
विधिपाय कहूं भूलि और काज कीजे, एतो कह्यो मानलीजे वीनती
सहलमें ॥ २७ ॥

सवैया.

लाई होंलालन बाल अमोलक, देखहु तो तुम कैसी वनी हैं ?
ऐसी कहूं तिहुं लोकमें सुन्दर, और न नारि अनेक घनी हैं ॥
याहीतैं तोहि कहूं नित चेतन ! याहूकी प्रीति जु तोसों सनी है ।
तेरी औ राधेकी रीझि अनंत, सु मोपें कहूं यह जात गनी है ॥ २८ ॥

कायासी जु नगरीमें चिदानंद राज करै, मायासी जु रानी पै
मगन बहु भयो है । मोहसो है फोजदार क्रोधसो है कोतवार,
लोभसो वजीर जहां लूटिवेको रह्यो है ॥ उदैको जु काजी मानै
मानको अदल जानै, कामसेवा कानवीस आइ वाको कह्यो है ।
ऐसी राजधानीमें अपने गुण भूल गयो, सुधि जब आई तवै ज्ञान
आय गह्यो है ॥ २९ ॥

कवित्त.

कौन तुम कहाँ आये कौनैं बौराये तुमहिं, काके रस रसे कछु
सुधहू धरतु हो ? । कौन हैं ये कर्म जिन्हें एकमेक मानिरहे, अजहं
न लागे हाथ भाँवरि भरतु हो वे दिन चितारो जहां बीते हैं

अनादिकाल, कैसे कैसे संकट सहेहु विसरतु हो । तुम तो सयाने पैं सयान यह कौन कीन्हो, तीनलोकनाथ हैके दीनसे फिरतु हो ॥ ३० ॥

देख कहा भूलि परयो देख कहा भूलि परयो, देख भूलि कहा करयो हरयो सुख सब ही । ज्ञान है अनंत ताहि अक्षर अनन्त भाग, बल है अनंत ताहि देखो क्यों न अब ही ॥ कामवशपरे तातें नरकमें वशपरे, ऐसे दुख परे सो कहे न जाहिं कब ही । बात जो निगोदकी है तेहू तैन गोदकी है, ऐसे अनुमोदकी है जानिहू जो तव ही ॥ ३१ ॥

सवैया

वे दिन क्यों न चितारत चेतन, मातकी कूखमें आय वसे हो ।
ऊरध पांव नगे निशिवासर, रंच उसासनिको तरसे हो ॥
आवसंयोग बचे कहूं जीवत, लोगनिकी तव दृष्टि लसे हो ।
आजु भये तुम यौवनके रस, भूल गये किततैं निकसे हो ॥ ३२ ॥

कवित्त.

सहे हैं नरकदुख फेर भयो तेही रुख, बेरबेर कहै मुख मैं ही सुख लहा है । जोवनकी जेव भरे जुवति लगावे गरे, करै काम खोटे खरे काम आगि दहा है ॥ दिन दश बीति जाय हाथपीठ पछताय, यौवन न ठहराय कीजे अब कहा है । जरा आइ लागी कान भूलिगये अवसान, देखे जमके निसान परयो शोच महा है ॥ ३३ ॥

जाही दिन जाही छिन अंतर सुबुद्धि लसी, ताही पल ताही समैं जोतिसी जगति है । होत है उद्योत तहां तिमिर विलाइ जातु, आपापर भेद लखि ऊरधव गति है ॥ निर्मल अतीन्द्री ज्ञान

देखि राय चिदानंद, सुखको निधान याकै माया न जगति है । जैसो शिवखेत तैसो देहमें विराजमान, ऐसो लखि सुमति स्वभावमें पगति है ॥ ३४ ॥

मात्रिक कवित्त.

जबते अपनो जी आपु लख्यो, तवतैं जु मिटी दुविधा मनकी ।
यों शीतल चित्त भयो तवही सब, छांडदई ममता तनकी ॥
चिंतामणि जब प्रगळ्यो घरमें, तव कौन जु चाहि करै धनकी ।
जो सिद्धमें आपुमें फेर न जानै सो, क्यों परवाह करै जनकी ॥ ३५ ॥

सवैया.

केवल रूप महा अति सुंदर, आपु चिदानंद शुद्ध विराजै ।
अंतरदृष्टि खुलै जब ही तव, आपुहीमें अपनो पद छाजै ॥
सेवक साहिव कोऊ नही जग, काहेको खेद करै किहूँ काजै ।
अन्य सहाय न कोऊ तिहारै जु, अंत चल्थो अपनो पद साजै ॥ ३६ ॥

दोहा.

जा छिन अपने सहज ही, चेतन करत किलोल ॥
ता छिन आनन भास ही, आपुहि आपु अडोल ॥ ३७ ॥

कवित्त.

पियो है अनादिको महा अज्ञान मोहमद, ताहीतैं न शुधि याहि और पंथ लियो है । ज्ञानविना व्याकुल है जहां तहां गि-
थो परै, नीच ऊंच ठौरको विचार नाहिं कियो है ॥ बकियो विराने वश तनहूकी सुधि नाहिं, बूडै सब कूपमाहिं सुन्नसान हियो है । ऐसे मोहमदमें अज्ञानी जीव भूलि रह्यो ज्ञानदृष्टि देखो 'भैया' कहा ताको जियो है ॥ ३८ ॥

देखत हो कहां कहां केलि करै चिदानंद, आतम स्वभाव भूलि

(१) 'सहाय नहीं नर कोव तिहारै' ऐसा पाठ भी है.

और रस राच्यो है। इन्द्रिनके सुखमें मगन रहै आठों जाम इन्द्रिनके दुख देख जाने दुख सांच्यो है ॥ कहूं क्रोध कहूं मान कहूं माया कहूं लोभ; अहंभाव मानिमानि ठौरठौर माच्यो है ॥ देव तिरजंच नरनारकी गतिन फिरै, कौन कौन स्वांग धरै यह ब्रह्म नाच्यो है ॥ ३९ ॥

करखाछंद गुर्जरभाषाया:

उहिल्याजीवड़ाहूं तनै शूं कहूं, बलीबली आज तुं विषयविष सेवै।
विषयना फल अछै विषय थकी पांडुवा ज्ञाननी दृष्टि तू कां न बेवै ॥
हजी शुं सीख लागी नथी कां तनै नरकना दुःख कहिवेको न रेवै।
आव्यो एकलो जायपण एक तू, एटलामाटे कां एटलूं खेवै ॥

कवित्त.

कोउ तो करै किलोल भामिनीसों रीझिरीझि, वाहीसों सनेह
करै कामराग अंगमें । कोउतो लहै अनंद लक्ष कोटि जोरि जोरि,
लक्ष लक्ष मानकरै लच्छिकी तरंगमें । कोउ महाशूरवीर कोटिक
गुमान करै, मो समान दूसरो न देखो कोऊ जंगमें । कहै कहा
‘भैया, कछु कहिवेकी बात नाहिं, सब जग देखियतु रागरस
रंगमें ॥ ४१ ॥

जोलों तुम और रूप द्वै रहे हो चिदानंद, तोलो कहूं सुख नाहिं
रावरे विचारिये । इन्द्रिनिके मुखको जो मान रहे सांचो सुख, सो तो
सब दुःख ज्ञान दृष्टिसों निहारिये ॥ एतो विनाशीक रूप छिनमें औरै
स्वरूप, तुम अविनाशी भूप कैसें एकु धारिये । ऐसो नरजन्म पाय
नैकु तो विवेक कीजै, आप रूप गहि लीजे कर्मरोग दारिये ॥ ४२ ॥

अरे मूढ चेतन! अचेतन तू काहे होत, जेई छिन जाहिं फिर
तेई तोहि आयवी ? । ऐसो नरजन्म पाय श्रावकके कुल आय,

रह्यो है विपै लुभाय औंधीमति छाड़वी ॥ आगे हू अनादिकाल
वीते विपरीत हाल, अजहूँ सम्हारि लाल ! वेर भली पाड़वी । पी-
छें पछतायें कछु आइ है न हाथ तेरे, तातें अव चेत लेहु भली पर-
जायवी ॥ ४३ ॥

जीवै जग जिते जन तिन्है सदा रैनदिन, सोचतही छिन छिन काल
छीजियतु है । धन होय धान होय, पुत्र परिवार होय, बडो वि-
सतार होय जसलीजियतु है ॥ देहहू निरोग होय सुखको संयो-
ग होइ मनबांछे भोग होय जौलौं जी जियतु है । चहै वांछा पूरी होइ
पैन बांछे पूरी होय, आयु थिति पूरी होय तोलों कीजियतु है ॥ ४४ ॥

मात्रिक कवित्त.

जबलों रागद्वेष नहिं जीतय तबलों मुकति न पावै कोइ ।
जबलों क्रोध मान मनधारत, तबलों, सुगति कहांतें होइ ॥
जबलों माया लोभ बसे उर, तबलों, सुख सुपनै नहिं जोइ ।
एअरि जीत भयो जो निर्मल, शिवसंपति विलसत है सोइ ॥ ४५ ॥

कवित्त.

सात धातु मिलन है महादुर्गन्ध भरी, तासां तुम प्रीति करी ल-
हत अनंद हौ । नरक निगोदके सहाई जे करन पंच, तिनहीकी
सीख संचि चलत सुछंद हौ ॥ आठों जाम गहै काम रागरसरंग-
राचि, करत किलोल मानों माते ज्यों गयंद हौ । कछु तो विचार
करो कहां कहां भूले फिरो, भलेजू भलेजू 'भैया' भले चिदा-
नंद हौ ॥ ४६ ॥

सवैया.

ए मन मूढ ! कहा तुम भूले हो, हंसविसार लगे परछाया ।
यामें स्वरूप नहीं कछु तेरो जु, व्याधिकी पोद बनाई है काया ॥

सम्यक् रूप सदा गुण तेरोसु, और बनी सबही भ्रम माया ।
देखत रूप अनूप विराजत सिद्धसमान जिनंद बताया ॥ ४७ ॥
चेतन जीव ! निहारहु अंतर, ए सब हैं परकी जड काया ॥
इन्द्रकमान ज्यों मेघघटामहिं, शोभत है पै रहै नहिं छाया ॥
रैन समै सुपनो जिम देखै तु प्रात बहै सब झूट बताया ।
त्यों नदिनाव सँयोगमित्यो तुम, चेतहु चित्तमें चेतन राया ॥ ४८ ॥
देहके नेह लग्यो कहा चेतन, न्यारी ये क्यों अपनी करमानी ।
याहीसों रीझि अज्ञानमें मानिकैं, याहीमें आपु न ह्वै रह्यो थानी ॥
देखतु है परतच्छ विनाशी तऊ, नहिं चेतत अंध अज्ञानी ।
होहु सुखी अपनो बल फोरिकैं, मान कह्यो सर्वज्ञकी बानी ॥ ४९ ॥

समस्यापूर्ति—‘चेतत क्यों नहिं चेतनहारे’ सवैया ।

केवलरूप विराजत चेतन, ताहि विलोकि अरे मतवारे ।
काल अनादि वितीत भयो, अजहूं तोहि चेतन होत कहा रे ? ॥
भूलिगयो गतिको फिरवो अब तो दिन च्यारि भये ठकुरारे ।
लागि कहा रह्यो अक्षैनिके संग, ‘चेतत क्यों नहिं चेतनहारे’ ॥ ५० ॥
बालक है तब बालकसी बुधि, जोवन काम हुतासन जारे ।
वृद्ध भयो तब अंग रहे थकि, आये हैं सेत गये सब कारे ॥
पाँय पसारि परयो धरतीमहिं, रोवै रटै दुख होत महारे ।
वीती यों बात गयो सब भूलि तू, चेतत क्यों नहिं चेतनहारे ॥ ५१ ॥
बालपनै नित बालनके संग, खेल्यो है ताकी अनेक कथारे ।
जोवन आप रस्यो रमनीरस, सोड तो बात विदीत यथारे ॥
वृद्ध भयो तन कंपत डोलत, लार परै मुख होत विथारे ।
देखि शरीरके लच्छन भैया तु, ‘चेतत क्यों नहिं चेतनहारे’ ॥ ५२ ॥

तू ही जु आय बस्यो जननी उर, तूही रम्यो नित बालकतारे ।
 जोबनताजु भई पुनि तोहिको, ताहीके जोर अनेक तैं मारे ॥
 वृद्ध भयो तुंही अंग रहै सब, बोलत वैन कहै तुतरारे ।
 देखि शरीरके लक्षण भैया तु 'चेतत क्यों नहिं चेतन हारे' ॥५३॥
 औरसों जाइ लग्यो हितमानिके, वाहीके संग सुज्ञान विडारे ।
 काल अनादि बस्यो जिनके ढिग, जान्यो न लक्षणये अरि सारं ॥
 भूलिगयो निजरूप अनूपम, मोह महा मदके मतवारे ।
 तेरो हू दाव बन्यो अबकेतुम, चेतत क्यों नहिं चेतन हारे ॥५४॥

कवित्त.

पंचनसों भिन्न रहै कंचन ज्यों काई तजै, रंच न मलीन
 होय जाकी गति न्यारी है । कंजनके कुल ज्यों स्वभाव कीच
 छुवै नाहि, बसै जलमाहि पै न उर्द्धता विसारी है ॥ अंजनके
 अंश जाके वंशमै न कहूं दीखै, शुद्धता स्वभाव सिद्धरूप सुख-
 कारी है । ज्ञानको समूह ज्ञान ध्यानमें विराजि रह्यो, ज्ञानदृष्टि
 देखो 'भैया' ऐसो ब्रह्मचारी है ॥ ५५ ॥

चिदानंद भैया विराजत है घटमाहिं, ताके रूप लखिवेको
 उपाय कछू करिये । अष्ट कर्म जालकी प्रकृति एक चार आठ,
 तामें कछू तेरी नाहि आपनी न धरिये ॥ पूरवके बंध तेरे तेई
 आइ उदै होंहि, निजगुणशक्तिसों तिन्है त्याग तरिये । सिद्धसम
 चेतन स्वभावमें विराजत है, वाको ध्यान धरु और काहुसों न
 डरिये ॥ ५६ ॥

एक शीख मेरी मान आप ही तू पहिचान, ज्ञान द्रगचर्ण
 आन वास वाके थरको । अनंत बलधारी है जु हलको न

भारी है, महाब्रह्मचारी है जु साथी नाहिं जरको ॥ आप महा ते-
जवंत गुणको न ओर अंत, जाकी महिमा अनंत दूजो नाहि
वरको । चेतनाके रस भरे चेतन प्रदेश धरे, चेतनाके चिह्न करे
सिद्ध पटतरको ॥ ५७ ॥

कर्मको करैया यह भरमको भरैया यह, धर्मको धरैया यहै
शिवपुर राव है । सुख समझैया यह दुख भुगतैया यहै, भूलको
भुलैया यहै चेतना स्वभाव है ॥ चिरको फिरैया यहै भिन्नको
रहैया यहै, सबको लखैया यहै याको भलो चाव है । राग द्वेषको
हरैया महामोखको करैया, यहै शुद्ध 'भैया' एक आतम
स्वभाव है ॥ ५८ ॥

उर्दूभाषामें कवित्त.

मान यार ! मेरा कहा दिलकी चशम खोल, साहिब नजदीक है
तिसको पहचानिये । नाहक फिरहु नाहिं गाफिल जहान बीचि
शुकन गोश जिनका भलीभांति जानिये ॥ पावक ज्यों वसता है
अरनी पखानमाहिं, तीसरोस चिदानंद इसहीमें मानिये । पंजसे
गनीम तेरी उमरसाथ लगे हैं खिलाफ तिसें जानि तूं आप सच्चा
आनिये ॥ ५९ ॥

अबैं भरमके ल्योरसों देख क्या भूलता, देखि तु आपमें जिन
आपने वताया है । अंतरकी दृष्टि खोलि चिदानंद पाइयेगा, बाहि-
रकी दृष्टिसों पाँझलीक छाया है ॥ गनीमनके भाव सब जुदे करि
देखि तू, आगें जिन ढूंढा तिन इसीभांति पायां है । वे ऐब सा-
हिव विराजता है दिलबीच, सच्चा जिसका दिल है तिसीके
दिल आया है ॥ ६० ॥

नाहक विराने ताई अपना कर मानता है, जानता तू है कि ना-
हीं अंत मुझे मरना है । केतेक जीवनेपर ऐसे फैल करता है,
सुपनेसे सुखमें तेरा पूरा परना है ॥ पंजसे गनीम तेरी उमरके-
साथ लगे, तिनोंको फरक किये काम तेरा सरना है । पाक बे-
ऐबसाहिब दिलबीच बसता है, तिसको पहिचान वे तुझे जो त-
रना है ॥ ६१ ॥

वे दिन क्यों फरामोश करता है चिदानंद, दोजकके बीच तू
पुकार पड़ा करता था । उछालके अकाश तुझे लेते थे त्रिशूलसों
आतिससा आब तू तौ पीवतैं ही जरता था ॥ तत्ता लोहा करिकें
देह तेरी तोरते थे, फिरस्तोंके आगे तू साइत भी न ठरता था ।
जिंदगानी सागरोंकी उमर तेरी हुई थी, जिसके बीच वे तू ऐसे
दुःख भरता था ॥ ६२ ॥

कवित्त, इकतुकिया.

चैतहुरे चिदानंद इहां बने दोऊ फंद, कामिनी कनक छंद अँन-
मैनकासी है । जिहिंको तू देख भूल्यो, विषयसुख मान फूल्यो,
मोहकी दशामें झूल्यो, अँनमैनकासी है ॥ पाये तैं अनेक बेर
देखै कहा फेरि फेरि, कालकरतब हेरि अँनमैनिकासी है । इनको
तू छाँडदेहु 'भैया' कह्यो मान लेहु, सिद्ध सदा तेरो गेह अँनमैनाक-
सी है ॥ ६३ ॥

कोटिकोटि कष्ट सहे, कष्टमें शरीर दहे, धूमपान कियो पै न
पांयो भेद तनको । वृक्षनके मूल रहे जटानमें झूलि रहे, मान मध्य
भूलि रहे किये कष्ट तनको ॥ तीरथ अनेक न्हये, तिरत न कंहूं भये,
कीरतिके काज दियो दान्हू रतनको । ज्ञानविना बेर बेर क्रिया
करी फेर फेर, कियो कोऊ कारज न आतम जतनको ॥ ६४ ॥

धरम न जानतु है मूढ मिथ्या मानतु है, शास्त्रशुद्ध छोरि औ-

र पढ्यो चाहे पारसी । मिथ्यामती देव जहां शीस नावे जाय तहां,
एते पर कहै हमें येही पूरो पारसी॥ निशदिन विपै मानै सुकृतको
नहिं जानै, ऐसी करतूत करै पहुंच्यो चाहे पारसी ॥ नरकमाहिं
परैगो सुतीसतीन भरैगो, करैगो पुकार एको न विपति पारसी ॥६५॥

सवैया

देव अदेवमें फेर न मान, कहै सब एक गँवार कहुं को ।
साधु कुसाधु समान गनै चित, रंच न जानत भेद कहुंको ॥
धर्म कुधर्मको एक विचारत, ज्ञान विना नर बासी चहुंको ।
ताहि विलोकि कहा करिये मन ! भूलो फिरै शठ कालतिहुंको ॥६६॥

दोहा.

नैननिनै देख सकल, नै ना देखै नाहि ।
ताहि देखु को देख तो, नैनझरोखे माहि ॥ ६७ ॥

कवित्त.

देखै ताहि देख जोपै देखिवेकी चाह धरै, देखे विन आप तो-
हि पाप बडो लागै है । मोह निंद शैनमें अनादिकाल सोय रह्यो,
देखि तू विचार ताहि सोवै है कि जागै है ॥ रागद्वेषसंगसों मि-
थ्यातरंग राचि रह्यो, अष्ट कर्म जालकी प्रतीति मानि पागै है । वि-
पैकी कलोल हंस । देखि देखि भूलि गयो, रूपरस गंध ताहि कैसें
अनुरागै है ॥ ६८ ॥

देव एक देहरेमें सुंदर सुरूप बन्यो, ज्ञानको विलास जाको सि-
द्ध सम देखिये । सिद्धकीसी रीति लिये काहु सो न प्रीति किये,
पूरबके बंध तेई आइ उदै पेखिये ॥ वर्ण गन्ध रस फास जामे
कछु नाहि भैया, सदाको अबन्ध याहि ऐसो करि लेखिये । अ-
जरा अमर ऐसो चिदानंद जीव नाव, अहो मन मूढ ताहि मर्ण
क्यों विशेखिये ॥ ६९ ॥

काके दोऊ राग द्वेष ? जाके ये करम आठ, काके ये करम आठ ? जाके रागद्वेष हैं । ताको नाव क्यों न लेहु ? भले जानो तुम लेहु, लिखिहु बतावो लिखिवेको कहा लेख है ? ॥ ताको कछु लच्छन है ? देखि तू विचक्षण है, कछु उन्मान कहो ? मान कह्यो भंख है । ए न कहो सुधि सुधि तौ परैगी आगैं आगैं, जोपैं कहूँ इनसों मिलाप कौ विशेष है ॥ ७० ॥

कुंडलिया

भैया, भरम न भूलिये पुद्गलके परसंग ।
 अपनो काज सवारिये, आय ज्ञानके अंग ॥
 आय ज्ञानके अंग, आप दर्शन गहि लीजे ।
 कीजे थिरताभाव, शुद्ध अनुभौरस पीजे ॥
 दीजे चंद्रविधि दान, अहो शिव खेत वसैया ।
 तुम त्रिभुवनके राय, भरम जिन भूलहु भैया ॥ ७१ ॥
 हंसा हँस हँस आप तुझ, पूर्व संवारे फंद ।
 तिहिं कुदावमें बंधि रहे, कैसें होहु सुछंद ॥
 कैसें होहु सुछंद, चंद जिम राहु गरासै ।
 तिमर होय बल जोर, किरणकी प्रभुता नासै ॥
 स्वपरभेद भासै न देह जड़ लखि तजि संसा ।
 तुम गुण पूरन परम सहज अवलोकहु हंसा ॥ ७२ ॥
 भैया पुत्रकलत्र पुनि, मात तात परिवार ।
 ए सब स्वारथके सगे, तू मनमाहि विचार ॥
 तू मनमाहि विचार, धार निजरूप निरंजन ।
 पर परणति सो भिन्न, सहज चेतनता रंजन ॥

(१) दशविधि—ऐसा भी पाठ है ।

कर्म भर्म मिलि रच्यो, देह जड़ मूर्ति धरैया ।
 तासों कहत कुटंब मोह मद माते भैया ॥ ७३ ॥
 सूवा सयानप सब गई, सेयो सेमर वृच्छ ।
 आये धोखे आमके, यापैं पूरण इच्छ ॥
 यापैं पूरण इच्छ वृच्छको भेद न जान्यो ।
 रहे विषय लपटाय, मुग्ध मति भ्रम भुलान्यो ॥
 फलमहिं निकसे तूल स्वाद पुन कछू न हूवा ।
 यहै जगतकी रीति देखि, सेमर सम सूवा ॥ ७४ ॥

मात्रिक-कवित्त.

आठनकी करतूत विचारहु, कौन कौन यह करते ख्याल ।
 कवहूं शिरपर छत्र धरावहिं, कवहू रूप करैं बेहाल ॥
 देवलोक कवहूं सुख भुगतहिं, कवहू नेकु नाजको काल ।
 ये करतूति करैं कर्मादिक, चेतन रूप तु आप संभाल ॥ ७५ ॥
 चेतन रूप विचारि विचक्षण, ए सब हैं परके परपंच ।
 आठों कर्म लगे निशिवासर, तिन्हें निवारि लेहु किन खंच ॥
 जिय समुझावत हों फिर तोकों, इनसे मग्न होऊ जिन रंच ॥
 ये अज्ञान तुम ज्ञान विराजत, तातैं करहु न इनको संच ॥ ७६ ॥
 चेतन जीव विचारहु तो तुम, निहचै ठौर रहनकी कौन ।
 देव लोक सुरइंद्र कहावत, तेहू करहिं अंत पुनि गौन ॥
 तीन लोकपति, नाथ जिनेश्वर, चक्रीधर पुनि नर हैं जौन ।
 यह संसार सदा सुपनेसम, निशचै वास इहां नहिं हौन ॥ ७७ ॥
 चित्तके अंतर चेत विचक्षण, यह नरभव तेरो जो जाय ।
 पूरव पुण्य किये कहुं अतिही, तातैं यह उत्तम कुल पाय ॥
 अव कछु सुकृत ऐसो कर तू, जातैं मरण जरा नहिं थाय ।
 वार अनंती मरकैं उपजे, अव चेतहु चित चेतन राय ॥ ७८ ॥

कवित्त.

अरे नरमूरखतू भामनीसों कहा भूल्यो, विपकीसी बेल काहू
दगाको बनाई है । सेवत ही याहि नैकु पावत अनेक दुःख, सु-
खहूकी बात कहूं सुपनै न आई है ॥ रसके कियेसों रसरोगको
रसंस होइ, प्रीतिके कियेसों प्रीति नरककी पाई है । यह शुभ्र
सागरमें डूबिवेकी ठौर 'भैया', यामें कछु धोखा खाय रामकी-
दुहाई है ॥ ७९ ॥

मात्रिक कवित्त.

चंद्रमुखी मन धारत है जिय, अंतसमें तोकों दुखदाई ।
चारहु गतिमें यही फिरावत, तासों तुम फिर प्रीति लगाई ॥
वार अनंती नरकहिं डारिके, छेदन भेदन दुःख सहाई ।
सुबुधि कहै सुनि चेतनप्रानी, सम्यक शुद्ध गहौं अधिकाई ॥ ८० ॥

सवैया.

रे मन मूढ विचारि करो, तियके संग बात सवैं विगँरगी ।
ए मन ज्ञान सुध्यान धरो, जिनके संग बात सवैं सुधरैगी ॥
धू गुण आपु विलक्ष गहो पुनि, आपुहितै परतीति टरैगी ।
सिद्ध भये ते यही करनी कर, ऐसैं किये शिव नारि वरैगी ॥ ८१ ॥

सोरठा.

एहो चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी ।
जे नरकहिं ले जाहिं, तिनहीसों राचे सदा ॥ ८२ ॥

मात्रिक कवित्त.

चेतन नींद बडी तुम लीनी, ऐसी नींद लेय नहिं कोय ।
काल अनादि भये तोहि सेवत, विनजागे समकित क्यों होय ॥

निशचै शुद्ध गयो अपनो गुण, परके भाव भिन्न करि खोय ।
 हंस अंश उज्ज्वल है जब ही, तब ही जीव सिद्धसम सोय ॥८३॥
 काल अनादि भये तोहि सोवत, अब तो जागहु चेतन जीव ।
 अमृत रस जिनवरकी बानी, एकचित्त निशचैकर पीव ॥
 पूरव कर्म लगे तेरे संग, तिनकी मूर उखारहु नीव ।
 ये जड़ प्रगट गुप्त तुम चेतन, जैसे भिन्न दूध अरु घीव ॥ ८४॥

समान सवैया.

काल अनादि तैं फिरत फिरत जिय, अब यह नरभव उत्तम पायो ।
 समुझि समुझि पंडित नर प्राणी, तेरे कर चिंतामणि आयो ॥
 घटकी आँखें खोल जोंहरी, रतन जीव जिनदेव बतायो ।
 तिलमें तैल वास फूलनिमें, यों घटमें घटनायक गायो ॥ ८५ ॥

सवैया.

हंसको वंश लख्यो जबतैं, तबतैं जु मिथ्यो भ्रम घोर अंधेरो ।
 जीव अजीव सबैं लख लीने, सु तत्त्व यहै जिनआगमकेरो ॥
 ताक्ष्यके आवत ही अहि भागे, सु छूटि गयो भवबंधन घेरो ।
 सम्यक शुद्ध गहो अपनो गुन, ज्ञानके भानु कियो है सवेरो ॥८६॥

कवित्त.

उदै करै जोपैं भानु पच्छिमकी दिशा आय, उड़िके अकाश
 मध्य जाय कहूं धरती । अचल सुमेरु सोऊ चल्यो जायअवनी-
 पै, सीतता स्वभाव गहै आगि महा जरती ॥ फूलै जोपैं कौल कहूं
 पर्वतकी शिलानपै, पाथरकी नाव चलै पानीमाहिं तरती । च-
 लिके ब्रह्मंड जोपैं तालमधि जाहि कहूं, तऊ विधनाकी लेखि-
 लिखी नाहिं तरती ॥ ८७ ॥

संन्या.

काहेको शोच करै चित चेतन, तेरी जु बात सु आगें बनी है ।
 देखी है ज्ञानीतैं ज्ञान अनंतमें, हानि ओ वृद्धिकी रीति धनी है ॥
 ताहि उलंघि सकै कहि कौंउजु, नाहक भ्रामिक बुद्धि ठनी है ।
 याहि निवारिकें आपु निहारिकें, होहु सुखी जिम सिद्ध धनी है ८८
 कोउजु शोच करो जिन रंचक, देह धरी तिहु काल हरैगो ।
 जो उपन्यो जगमें दिन चारके, देखत ही पुनि सोई मरैगो ॥
 मोह भुलावत मानत सांच सो, जानत याहीसों काज सरैगो ।
 पंडित सोई विचारत अंतर, ज्ञान सँभारिकें आपु तरैगो ॥ ८९ ॥
 काहेको देहसों नेह करै तुव, अंतको राखी रहैगी न तेरी ।
 मेरी है मेरी कहा करै लच्छिसों, काहुकी हैके कहूं रही नेरी ? ॥
 मान कहा रह्यो मोह कुटुंबसों, स्वारथके रस लागे सगेरी ।
 तातैं तू चेति विचक्षण चेतन, झूटी है रीति सबै जगकेरी ॥ ९० ॥

कवित्त.

केवल प्रकाश होय अंधकार नाश होय, ज्ञानको विलास होय
 ओरलों निवाहवी । सिद्धमें सुवास होय, लोकालोक भास होय,
 आपुरिद्ध पास होय औरकी न चाहवी ॥ इन्द्र आय दास होय
 अरिनको त्रास होय, दर्वको उजास होय इष्टनिधि गाहिवी । सत्व-
 सुखराश होय सत्यको निवास होय, सम्यक भयेतैं होय ऐसी
 सत्य साहिवी ॥ ९१ ॥

मात्रिक कवित्त.

जाके घट समकित उपजत है, सो तौ करत हंसकी रीत ।
 क्षीर गहत छांडत जलको सँग, वाके कुलकी यहै प्रतीत ॥

कोटि उपाय करो कोउ भेदसों, क्षीर गहै जल नेकु न पीत ।
तैसें सम्यकवंत गहै गुण, घट घट मध्य एक नयनीत ॥ ९२ ॥
सिद्ध समान चिदानंद जानिके, थापत है घटके उरबीच ।
वाके गुण सब वाहि लगावत, और गुणहि सब जानत कीच ॥
ज्ञान अनंत विचारत अंतर, राखत है जियके उर सींच ।
ऐसें समकित शुद्ध करत हैं, तिनतैं होवत मोक्ष नगीच ॥ ९३ ॥

कवित्त.

निशदिन ध्यान करो निशचै सुज्ञान करो, कर्मको निदान करो
आवै नाहि फेरिकैं । मिथ्यामति नाश करो सम्यक उजास करो,
धर्मको प्रकाश करो शुद्धदृष्टि हेरिकैं ॥ ब्रह्मको विलास करो,
आत्मनिवास करो, देव सब दास करो महामोह जेरिकैं । अनुभौ
अभ्यास करो थिरतामें वास करो, मोक्षसुख रासकरो कहूं
तोहि टेरिकैं ॥ ९४ ॥

जिनके सुदृष्टि जागी परगुणके भैं त्यागी, चेतनसो लवलगी
भागी भ्रांति भारी है । पंचमहाव्रतधारी जिन आज्ञाके विहारी,
नग्नमुद्राके अकारी धर्महितकारी है ॥ प्राशुक अहारी अट्टाईस
मूल गुणधारी, परीसह सहैं भारी परउपकारी हैं। परमधर्म धनधारी
सत्य शब्दके उचारी, ऐसे मुनिराज ताहि वंदना हमारी है ९५॥

शुभ ओ अशुभ कर्म दोऊ सम जानत है, चेतनकी धारामें
अखंड गुण साजे है । जीवद्रव्य न्यारो लखै न्यारे लख आठों कर्म
पूरवीक बंधतैं मलीन केई ताजे हैं ॥ स्वसंवेग ज्ञानके प्रवानतैं अ-
वाधिवेदि ध्यानकी विशुद्धतासों चढै केई वाजे हैं । अंतरकी दृष्टि-

सों अरिष्ट सब जीत राखे, ऐसी बातें करैं ऐसे महा मुनिराजे हैं ॥ ९६ ॥

श्रीवीर जिनस्वामीको केवल प्रकाश भयो, इंद्र सब आय त-
हां क्रिया निज कीनी है। सोचत सो इन्द्र तब बानी क्यों न खिर
आज यह तो अनादि थिति भई क्यों नवीनी है ॥ पूछत सीमं-
धरपैं जायके विदेहक्षेत्र, इन्द्रभूति योग छिनमें बताय दीनी है।
आय एक काव्य पढी जाय इंद्रभूति पास, सुनत ही चौंक
चल्यो आय दीक्षा लीनी है ॥ ९७ ॥

छंद प्लवङ्गम.

राग द्वेष अरु मोह, मिथ्यात्व निवारिये ।
पर संगति सब त्याग, सत्य उर धारिये ॥
केवल रूप अनूप, हंस निज मानिये ।
ताके अनुभव शुद्ध सदा उर आनिये ॥ ९८ ॥

सवैया.

जो षट स्वाद विवेकी विचारत, रागनके रस भेदनपो है ।
पंच सुवर्णके लच्छन वेदत, बूझै सुवास कुवासहिं जो है ॥
आठ सपर्श लखै निज देहसों, ज्ञान अनंत कहेंगे कितो है ।
ताहि विलोकि विचक्षन रे मन, ! द्वैपल देखतो देखत को है ॥ ९९ ॥

कवित्त.

बुद्धि भये कहा भयो जोपैं शुद्ध चीन्हीं नाहिं, बुद्धिको तो फल
यह तत्त्वको विचारिये । देह पाये कौन काज पूजे जो न जिन-
राज, देहकी बडाई ये जप तप चितारिये ॥ लच्छि आये कौन
सिद्धि रहि है न थिर रिद्धि, लच्छिको तो लाहु जो सुपात्र मुख

डारिये । वचनकी चातुरी बनाय बोले कहा होहि, वचन तौ वह सत्य शब्द उचारिये ॥ १०० ॥

सवैया.

जो परलीन रहै निशिवासर, सो अपनी निधि क्यों न गमावै ।
जो जगमाहिं लखै न अध्यातम, सो जिय क्यों निहचै पद पावै ॥
जो अपने गुन भेद न जानत, सो भवसागरमें फिर आवै । जो
विप खाय सो प्राण तजै, गुड खाय जो काहे न कान विधावै ॥ १०१ ॥

दुर्मिल सवैया ८ सगण.

भगवंत भजो सु तजो परमाद, समाधिके संगमें रंग रहो ।
अहो चेतन त्याग पराइ सु बुद्धि, गहो निज शुद्धि न्यो सुख लहो ॥
विषया रसके हित बूडत हो, भवसागरमें कछु शुद्धि गहो ।
तुम ज्ञायक हो पद द्रव्यनके, तिनसों हित जानके आपु कहो ॥ १०१ ॥

कवित्त.

देखी देह खेतक्यारी ताकी ऐसी रीति न्यारी, बोये कछु आन
उपजत कछु आन हैं । पंचामृत रस सेती पोखिये शरीर नित,
उपजै रुधिर मास हाडनको ठान हैं ॥ १०२ ॥ एतेपर रहै नाहिं
कीजिये उपाय कांठि, छिनमें विनश जाय नाम न निशान है । एते
देखि मूरख उछाह मनमाहिं धरै, ऐसी झूठ वातनिको सांच कर
मान हैं ॥ १०३ ॥

कुंडलिया.

सुखमें मग्न सदा रहै, दुखमें करै विलाप ।
ते अजान जाने नहीं, यहै पुण्य अरु पाप ॥
यहै पुण्य अरु पाप, आप गुन इनतें न्यारो ।
चिद्विलास चिद्रूप, सहज जाको उजियारो ॥

गुण अनंत जामे प्रगट, कबहू होहिं न और रुख ।

तिहिं पद परसे विनु रहै, मूढ मगन संसार सुख ॥ १०४ ॥

कवित्त.

जीव जे अभव्य राशि कहे हैं अनंत तेज, ताहू तैं अनंत गुणे सिद्धके विशेषिये । ताहूतैं अनंत जीव जगमें जिनेश कहे, तिनहूतैं कर्म ये अनंत गुणे लेखिये ॥ तिनहूतैं पुद्गल प्रमाण हैं अनंत गुणे, ताहूतैं अनंत यों अकाशको जु पेखिये । ताहूतैं अनन्त ज्ञान जामें सब विद्यमान, तिहूं काल परमाण एकसमै देखिये ॥ १०५ ॥

कवित्त.

जे तो जल लोकमध्य सागर असंख्य कोटि, ते तौ जल पीयो पै न प्यास याकी गयी है । जे ते नाज दीपमध्य भरे हैं अवार ढेर, ते तौ नाज खायो तोऊ भूख याकी नयी है ॥ तातें ध्यान ताको कर जातें यह जाँय हर, अष्टादश दोष आदि येही जीत लयी है । वहै पंथ तूहीं साजि अष्टादश जाहिं भाजि होय बैठि महाराज तोहि सीख दयी है ॥ १०६ ॥

कविकी लघुता, छंद कवित्त.

एहो बुद्धिवंत नर हँसो जिन मोह कोऊ, बाल ख्याल कीनो तुम लीजियो सुधारिके । मैं न पढ्यो पिंगल न देख्यो छंद कोश कोऊ, नाममाला नावको पढी नहीं विचारिके ॥ संस्कृत प्राकृत व्याकरणहू न पढ्यो कहूं, तातैं मोको दोष नाहि शोधियो निहारिके । कहत भगोतीदास ब्रह्मको लह्यो विलास, तातैं ब्रह्म रचना करी है विसतारिके ॥ १०७ ॥

दोहा.

इति श्री शत अष्टोत्तरी, कीन्हीं निजहित काज ।

जे नर पढहिं विवेकसों, ते पावहिं शिवराज ॥ १०८ ॥

इति शत अष्टोत्तरी कवित्तबंध समाप्ता : ।

अथ द्रव्यसंग्रह मूलसहित कवित्तयन्ध लिख्यते ।

मंगलचरण. आर्याछंद.

जीवमजीवं द्रव्यं, जिणवरचसहेण जेण णिदिट्ठं ।
देविंदविंदचंदं, वंदे तं सच्चदा सिरसा ॥ १ ॥

छप्पयछंद.

सकल कर्मक्षय करन, तरन तारन शिव नायक ।
ज्ञान दिवाकर प्रगट, सर्व जीवहिं सुखदायक ॥
परम पूज्य गणधरहु, ताहि पूजित-जिनराजे ।
देवनिके पति इन्द्र वृंद, वंदित छवि छाजे ॥
इह विधि अनेक गुणनिधिसहित, वृषभनाथ मिथ्यात हर ।
तमु चरण कमल वंदित भविक, भावसहित नित जोर कर ॥ १ ॥

दोहा.

तिहूँ जिन जीव अजीवके, लखे सगुण परजाय ।
कहे प्रगट सब ग्रंथमें, भेदभाव समुझाय ॥ १ ॥
जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भुत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥

कवित्त.

जीव है मुज्ञानमयी चेतना स्वभाव धरै, जानिवो आँ देखिवो
अनादिनिधि पास हैं । अमूर्त्तिक सदा रहै और सोन रूप गहै,
निश्चैन प्रवान जाकं आतम विलास हैं ॥ व्योहारनय कर्त्ता है
देहके प्रमान मान, भुक्ता मुख दुःखनिको जगमें निवास है ।
शुद्ध नै विलोकें सिद्ध करम कलंक विना, ऊर्द्धको स्वभाव जाको
लोक अग्रवास है ॥ २ ॥

(१) 'भोत्ता' ऐसा भी पाठ है ।

तिक्काले चदुपाणा, इंदिय बलमाउ आणपाणा य ।

ववहारा सो जीवो, णिच्चयणयदो दु चेदंणा जस्स ॥ ३ ॥

तिहुंकाल चार प्राण धरै जगवासी जीव, इन्द्रीवल आयु ओ

उस्वास स्वास जानिये। एई चार प्राण धरै सातामान जीवो करै,

तातैं जीव नांव कह्यो नैव्योहार मानिये ॥ निश्चैनय चेतना वि-

राज रही शुद्ध जाके, चेतना विरुद सदा याहीतै प्रमानिये ।

अतीत अनागत सुवर्तमान 'भैया' निज, ज्ञानप्राप्त शास्वतो स्वभा-

व यों बखानिये ॥ ३ ॥

उवओगो दुवियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चदुधा ।

चक्खु अचक्खु ओही, दंसणमथ केवलं णेयं ॥ ४ ॥

जीवके चेतना परिणाम शुद्ध राजत है, ताके भेद दोय
जिन ग्रन्थनिमें गाइये । एक है सु चेतना कहावै शुद्ध दर्शन,

दूजी ज्ञान चेतना लखेतैं ब्रह्म पाइये ॥ देखिवेके भेद चारि ली-

जिये हृदै विचारि, चक्षु ओ अचक्षु औधि केवल सुध्याइये ।

येही चार भेद कहे दर्शनके देखनेके, जाके परकाश लोकालोक

हू लखाइये ॥ ४ ॥

णाणं अद्वियप्पं, मदिसुदिओही अणाणणाणाणि ।

मणपज्जय केवलमवि, पचक्खपरोक्खभेयं च ॥ ५ ॥

मइ सुइ परोक्ख णाणं, ओही मण होइ वियल पंचक्खं ।

केवलणाणं च तहा, अणोवमं होइ सयलपच्चक्खम् ॥ ५ ॥

ज्ञानके जु भेद आठ ताके नाम भिन्न सुनो, कुमति कुश्रुति
अवधि लों विशेषिये। सुमति सुश्रुति सु औधि मनपर्जय और, के-

वल प्रकाशवान वसुभेद लेखिये ॥ मति श्रुति ज्ञान दोऊ हैं
परोक्षवान औधि, मनपर्जय प्रत्यक्ष एक देश पेखिये । केवल प्र-
त्यक्ष भास लोकालोकको विकास, यहै ज्ञान शास्वतो अनंतका-
ल देखिये ॥ ५ ॥

अट्टचटुणाणदंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥ ६ ॥
मात्रिक कवित्त.

अष्ट प्रकार ज्ञान चतु दरसन, नय व्यवहार जीवके लच्छन ।
निहचै शुद्ध ज्ञान ओ दरसन, सिद्ध समान सुछंद विचक्षण ॥
केवल ज्ञान दरस पुनि केवल, राजे शुद्ध तजै प्रतिपच्छन ।
यहनिहचै व्योहार कथनकी, कथा अनंत कही शिव गच्छन ॥६॥
वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ट णिच्चया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ ७ ॥
कवित्त.

वर्ण पंच स्वेत पीत हरित अरुण श्याम, तिनहूके भेद नाना
भांतिके विदीत है । रस तीखो खारो मधुरो कडुओ कपायलो,
इनहूके मिले भेद गणती अतीत है ॥ तातो सीरो चीकनो रूखो
नरम कठोर, हरुवो भारी सुगंध दुर्गंधमयी रीत है । मूरति सुपु-
द्गलकी जीव है अमूरतीक नैव्योहार मूरतीक बंधत कहीत है ॥७॥
बंधो है अनादिहीको कर्मके प्रबंध सेती, तातैं मूरतीक कह्यो
परके मिलापसों । बंधहीमें सदा रहै समैप्रतिसमै गहै; पुगलसों
एकमेक हूँ रह्यो है आपसों ॥ जैसे रूपो सोनो मिले एक नाव

(१) चहुँ ऐसामी पाठ है ।

पाय रह्यो, तैसैं जीवमूरतीक पुगल प्रतापसों । यहै बात सिद्ध
भई जीव मूरतीकमई, बंधकी अपेक्षा लई नैव्योहार छापसों ॥ ७ ॥

पुगलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो ।

चेदणकम्मा णादा, सुद्धणया सुद्ध भावाणं ॥ ८ ॥

पुदगल करमको करैया है चिदानंद, व्योहार प्रवान इहां फेर
कछु नाहीं है । ज्ञानावणीं आदि अष्ट कर्मको करता है, रागा-
दिक भाव धरै आप उहि पांही है ॥ शुद्ध नै विचारिये तो राग
है कलंक याकै, यह तो अटक सदा चेतना सुधाही है । अनंत
ज्ञान परिणाम तिनको करैया जीव, सास्वतो सदीव चिरकाल
आपमाही हैं ॥ ८ ॥

ववहारा सुहदुक्खं, पुगलकम्मफलं पभुंजेदि ।

आदा णिच्चयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥

व्योहार नै देखिये तो पुगलके कर्मफल, नाना भांति सु-
खदुःख ताको भुगतैया है । उपजाये आपुतैं ही शुभ ओ अशुभ
कर्म, ताके फल साता ओ असाताको सहैया है ॥ निश्चैनय दे-
खिये तो यह जीव ज्ञानमई, अपुने चेतन परिणामको करैया है ।
तातैं भोक्ता पुनि सुचेतन परिणामनिको, शुद्धनै विलोकिये तो
सबको लखैया है ॥ ९ ॥

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।

असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥ १० ॥

देहके प्रमान राजै चेतन विराजमान, लघु और दीरघ शरी-
रके उदैसों है । ताहीके समान परदेश याके पूरि रहे, सूक्ष्म औ
बादर तन धरै तहां तैसो है ॥ व्यवहारनय ऐसो कह्यो समुद्रात

विना, देहको प्रमान नाहि लोकाकाश जैसो है । शुद्ध निश्चयन-
यसों असंख्यात परदेशी, आतम स्वभाव धरै विद्यमान ऐसो
है ॥ १० ॥

पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविह थावरेइंदी ।

विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥ ११ ॥

पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय वायुकाय, वनस्पतिकाय पांचो
थावर कहीजिये । वे इंद्री ते इंद्री चौ इंद्री पंचेंद्रिय है चारों,
जामें सदा चलिवेकी शक्ति लहीजिये ॥ तन जीभ नाक आंख
कान येही पंचइंद्री, जाके जे ते होय ताहि तैसो सर्दहीजिये ।
संख द्वै पिपीलि तीन भौर चार नर पंच, इन्हें आदि नाना भेद
समुझि गहीजिये ॥ ११ ॥

समणा अमणा णेया, पंचेंद्रिय णिम्मणा परे सब्बे ।

वायरसुहमेइंदी, सब्बे पज्जत्त इदरा य ॥ १२ ॥

पंच इंद्री जीव जिते ताके भेद दोय कहे, एकनिके मन एक
मनविना पाइये । और जगवासी जंतु तिनके न मन कहूं, एकें-
द्री वेइंद्री तेंद्री चौइंद्री बताइये ॥ एकेंद्रीके भेद दोय सूक्ष्म
वादर होय, पर्यापित अपर्यापित सबै जीव गाइये । ताके बहु
विस्तार कहे हैं जु ग्रंथनिमें, थोरेमें समुझि ज्ञान हिरदै अना-
इये ॥ १२ ॥

मग्गण गुणठाणेहि य, चउदसहि हवन्ति तह असुद्धणया ।

विण्णेया संसारी, सब्बे सुद्धा हु सुद्धणया ॥ १३ ॥

चउदह मारगणा चउदह गुणस्थान, होंहि ये अशुद्ध नय

कहे जिनराजने । येही भाव जोलों तोलों संसारी कहावै जीव,
इनको उलंघिकर मिलै शिव साजने ॥ शुद्धनै विलोकियेतौ शुद्ध
है सकलजीव, द्रव्यकी उपेक्षासो अनंत छवि छाजने । सिद्धके
समान ये विराजमान सबै हंस, चेतना सुभाव धरै करं निज का-
जनै ॥ १३ ॥

णिक्कम्मा अट्टगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।

लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवयेहिं संजुत्ता ॥ १४ ॥

अष्टकर्महीन अष्ट गुणयुत चरमसु, देह तातें कछु ऊनो सु-
खको निवास है । लोकको जु अग्र तहाँ स्थित है अनंत सिद्ध,
उत्पादव्यय संयुक्त सदा जाको वास है ॥ अनंतकाल
पर्यन्त थिति है अडोल जाकी, लोकालोकप्रतिभासी ज्ञानको प्र-
काश है । निश्चै सुखराज करै बहुरि न जन्म धरै, ऐसो सिद्ध
राशनिको आतम विलास है ॥ १४ ॥

पयडिडिदिअणुभागप्पदेसबंधेहि सच्चदो मुक्को ॥

उड्डं गच्छदि सेसा, विदिसावज्जं गदिं जंति ॥ १५ ॥

प्रकृति ओ थितिबंध अनुभागबंध परदेशबंध एई चार बंध
भेद कहिये । इन्ही चहुं बंधतैं अवंध हूँके चिदानंद, अग्निशिखा-
सम ऊर्ध्वको सुभावी लहिये ॥ और सब जगजीव तजै निज
देह जब, परभोको गौन करै तबै सर्ल गहिये । ऐसैं ही अनादि-
थिति नई कछु भई नाहिं, कही ग्रंथमांहि जिन तैसी सरद-
हिये ॥ १ ॥

(इति जीवस्य नवाधिकाराः)

(१) 'अपेक्षासों' ऐसा भी पाठ है परन्तु ऐसा पाठ रखनेपर 'अनंत' शब्दका
अर्थ 'निल' ऐसा लेना चाहिये । (२) 'सिद्धराजनिको' ऐसा भी पाठ है ।

अजीवो पुण णेओ, पुगल धम्मो अधम्म आयासं ॥

कालो पुगल मुत्तो, रूचादिगुणो अमुत्ति सेसादु ॥१५॥

अजीवदरव पंच ताके नांव भिन्न सुनो, पुद्गल ओ धर्मद्रव्यको सुभाव जानिये । अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य काल दर्व ईर्, पांचो द्रव्य जगमें अचेतन बखानिये ॥ तामे पुगल है मूरतीक रूप रस गंध, पर्शमई गुणपरजाय लिये जानिये । और पंच जीव जुत कहे हैं अमूरतीक, निज निज भाव धरै भेदी है पिछानिये ॥ १५ ॥

सदोयंधो सुहमो, थूलो संठाण भेद तमछाया ॥

उज्जोदादवसहिया, पुगलदव्वस्स पज्जाया ॥ १६ ॥

शवद बंध सूक्ष्म थूल ओ अकार रूप, हैंवो मिलिवो ओ विछुरिवो धूप छाय है । अंधारो उजारो ओ उद्योत चंदकांतिसम, आतप सु भानु जिम नानाभेद छाय है ॥ पुद्गल अनन्त ताकी परजाय हू अनंत, लेखो जो लगाइये तोऽनंतानंत थाय हैं । एकही समैमें आय सब प्रतिभास रही, देखी ज्ञानवंत ऐसी पुद्गल प्रजाय है ॥ १६ ॥

गइपरणयाण धम्मो, पुगलजीवाण गमणसहयारी ॥

तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥ १७ ॥

जब जीव पुद्गल चलै उठि लोकमध्य, तबै धर्मास्तिकाय सहाय आय होत है । जैसे मच्छ पानीमाहिं आपुहीतैं गौन करे, नीरकी सहायसेती अलसता खोत है ॥ पुनि यों नही जो पानी मीनको चलावे पंथ, आपुहीतैं चलै तो सहाय कोऊ नोत है । तैसें जीव पुद्गलको और न चलाय सके, सहजै ही चलै तो सहायका उदोत है ॥ १७ ॥

ठाणजुयाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसह्यारी ॥

छाया जह पहियाणं, गच्छंता नेव सो धरई ॥ १८ ॥

जीव अरु पुग्गलको थितिसहकारी होय, ऐसो है अधर्मद्रव्य लोकताई हद है । जैसें कोऊ पथिक सुपंथमध्य गौन करे, छाया-के समीप आय बैठे नेकु तद है ॥ पै यों नहीं जु पंथीको राखतु बैठाय छाया, आपुने सहज बैठे बाको आश्रयपद है । तैसें जीव पुद्गलको अधर्मास्तिकाय सदा, होत है सहाय 'भैया' थितिसमें जद है ॥ १८ ॥

अवगासदाणजोगं, जीवादीणं वियाण आयासं ॥

जेणहं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥ १९ ॥

जीव आदि पंच पदार्थनिको सदाही यह, देत अवकाश तातैं आकाश नाम पायो है । ताके भेद दोय कहे एक है अलोकाकाश, दूजो लोकाकाश जिन ग्रंथनिमें गायो है ॥ जैसें कहूं घर होय तामें सब बसें लोय, तातैं पंच द्रव्यद्वको सदन बतायो है । याही-में सबै रहै पै निजनिज सत्ता गहै, यातैं परें और सो अलोक ही कहायो है ॥ १९ ॥

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये ॥

आयासे सो लोको, तत्तो परदो अलोशुत्तो ॥ २० ॥

जितने आकाशभाहिं रहैये दरबपंच, तितने अकाशको जु लोकाकाश कहिये । धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य कालद्रव्य पुद्गल-द्रव्य जीव द्रव्य एई पांचों जहाँ लहिये ॥ इनतै अधिक कछु और जो विराज रह्यो, नाम सो अलोकाकाश ऐसो सरदहिये । देख्यो ज्ञान-

वतन अनंतज्ञान चक्षुकरि, गुणपरजाय सो सुभाव शुद्ध ग-
हिये ॥ २० ॥

द्ववपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो ॥

परिणामादिलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्टो ॥ २१ ॥

जोई सर्वद्रव्यको प्रवर्त्तावन समरथ, सोई कालद्रव्य बहुभेद-
भाव राजई । निज निज परजाय विपै परणवै यह, कालकी सहाय
पाय कर निज काजई ॥ ताही कालद्रव्यके विराजरहे भेद दोय,
एक व्यवहार परिणाम आदि छाजई । दूजो परमार्थकाल निश्चयव-
र्त्तना चाल, कायतै रहित लोकाकाशलों सुगाजई ॥ २१ ॥

लोयायास पदेसे, इक्केजेठिया हु इक्केका ।

रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ २२ ॥

लोकाकाशके जु एक एक परदेश विपै, एक एक काल
अणु सुविराज रहे हैं । तातें काल अणुके असंख्य द्रव्य कहिय
तु, रतनकी राशि जैसें एक पुंज लहे हैं ॥ काहुसों न मिलै कोई
रत्नजोत दृष्टि जोई, तैसें काल अणु होय भिन्नभाव गहे हैं ।
आदि अंत मिल नहिं वर्त्तना सुभावमांहि, समै पल महूर्त्त प-
रजाय भेद कहे हैं ॥ २२ ॥

एवं छम्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो द्ववं ।

उत्तं कालविजुत्तं, णायव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥ २३ ॥

दोहा.

जीव अजीवहि द्रव्यके, भेद सुषट्विध जान ।

तामें पंच सु काय धर, कालद्रव्य विन मान ॥ २३ ॥

(१) 'जमराजके' ऐसा भी पाठ है ।

सन्ति जदो तेणेदे, अत्थीति भणन्ति जिणवरा जह्मा ।
कायाइव बहुदेसा, तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

कवित्त.

ऐसे कह्यो जिनवर देख निज ज्ञान माहिं, इतने पदार्थनिको
कायधर मानिये । जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य ओ
अकाश द्रव्य एई नाम जानिये ॥ कायके समान सदा बहुते
प्रदेश धरे, तातैं काय संज्ञा इन्हैं प्रत्यक्ष प्रवानिये । निज निज
सत्तामें विराज रहे सबै द्रव्य, ऐसैं भेद भाव ज्ञान दृष्टिसों पि-
छानिये ॥ २४ ॥

हुंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे ।

मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

जीवद्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य इन, तीनोंको असंख्य परदे-
शी कहियतु है । अनंत प्रदेशी नभ पुद्गलके भेद तीन,
संख्याऽसंख्याऽनंत परदेशको बहुतु है ॥ कालके प्रदेश एक
अन्य पांचके अनेक, तातैं पंच अस्ति काय ऐसो नाम हतु है ।
काल विन काय जिनराजजूनें यातैं कह्यो, एक परदेशी कैसैं
कायको धरतु है ॥ २५ ॥

एयपदेसोवि अणू, णाणाखंध प्पदेसदो होदि ।

बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणन्ति सव्वण्हू ॥२६॥

पुगल प्रमाण जोपैं एक परदेश धरै, तोपैं बहु प्रमाण मिलै
बहु प्रदेश हैं । नानाकार खंधसों जु कितने प्रदेश होंहि, अनंत
असंख्यसंख्य भेदको धरेश हैं ॥ तातैं सर्वज्ञजूने पुगल प्रमाण

(१) 'पयेसा' ऐसा भी पाठ है ।

प्रति, कह्यो कायधर सदा जाके सब भेश है। देखिये जु नैननिसों
पुगलके पुंज सबै, यहै लोक माहिं एक सासुतो नरेश है ॥२६॥

जावदियं आयासं, अविभागी पुगलाणुवट्टद्धं ।

तं खु पदेसं जाणे, सत्त्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥ २७ ॥

जितनों आकाश पुगलाणु एक रोकि रह्यो, तितने अकाश
को प्रदेश एक कहिये । शुद्ध अविभागी जाके एकके न होय
दोय, ऐसे परमाणुके अनेक भेद लहिये ॥ अनंत परमाणुको
योग्य ठौर देवेको जु, ऐसोही अकाशको प्रदेश एक गहिये ।
जामें और द्रव्य सब प्रगट विराज रहे, कोऊ काहू मिलै नाहिं
ऐसो सरदहिये ॥ २७ ॥

इति श्रीपद्मद्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादनामा प्रथमोऽधिकारः ॥ १ ॥

आस्रवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे ॥

जीवाजीवविसेसा, तेवि समासेण पभणामो ॥ २८ ॥

चौपाई १५ मात्रा.

आस्रव सँवर बंधको खंध, निर्जर मोक्ष पुण्यको बंध ।

पापऽरु जीव अजीव सु भेव, इते पदार्थ कहों संखेव ॥ २८ ॥

आस्रवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ॥

भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥ २९ ॥

दुर्मिल छंद (सवैया) ३२ मात्रा.

जिहँ आतमके परिणामनिसों, निजकर्महि आस्रव मान लये ।

तिहँ भावनको यह नाम लियो, भावास्रव चेतनके जु भये ॥

दरवाश्रय पुद्गलको अयवो, करमादि अनेकन भांति ठये ।

इम भावनिको करता भयो चेतन, दर्वित आस्रव ताहितै ये ॥२९॥

मिच्छताविरदिपमाद, जोगकोहादओ सविण्णेया ॥
पणपणपणदहतियचदु, कमसो भेदा दु पुब्बस्स ॥ ३० ॥

मान्त्रिक कवित्त.

पांच मिथ्यात पांच है अत्रत, अरु पंद्रह परमादहिं जान ।
मनवचकाय योग ये तीनों, चतु कषाय सोरहविधि मान ॥
इन्हें आदि परिणाम जाति बहु, भावास्रव सब कहे बखान ।
तातैं भावकर्मको करता, चिन्मूरत 'भैया' पहिचान ॥ ३० ॥
णाणावरणादीणं, जोगं जं पुग्गलं समासवदि ॥
दब्बासवो स णेओ, अणेयभेओ जिणक्खादो ॥ ३१ ॥

कवित्त.

ज्ञानावर्णी आदि अष्ट करमनको आयवो, पुग्गलप्रमाणु मि-
लि नानाभांति थिते हैं । जीवके प्रदेशनिको आयके आछादतु
है, कोऊ न प्रकाश लहै, असंख्यात जिते हैं ॥ ऐसो द्रव्य आस्रव
अनेकभांति राजत है, ताहीके जु वसि जग वसैं जीव किते हैं । कहे
सर्वज्ञजुने भेद ये प्रत्यक्ष जाके, वेदै ज्ञानवंत जाके मिथ्यामत
विते हैं ॥ ३१ ॥

वज्झादि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भावबंधो सो ॥
कम्मादपदेसाणं, अण्णोणणपवेसणं इदरो ॥ ३२ ॥
चेतन परिणामसो कर्म जिते बांधियत, ताको नाव भावबंध
ऐसो भेद कहिये । कर्मके प्रदेशनिको आतमप्रदेशनिसों परस्प-
रमिलिबो एकत्व जहां लहिये ॥ ताको नाव द्रव्यबंध कह्यो जि-
नग्रंथनमें, ऐसो उभै भेद बंध पद्धतिको गहिये । अनादिहीको
जीव यह बंधसेती बँध्यो है, इनहीके मितत अनंत सुख प-
हिये ॥ ३२ ॥

(१) 'अणेय भेदो' ऐसा भी पाठ है । (२) बीता है । (३) 'वहिये' पाठभी है ।

पयडिद्विदिअणुभागपदेसभेदा इ चदुविधो बंधो ॥

जोगा पयडिपदेसा, ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

द्रव्यबंध भेद चारि प्रकृति ओ स्थितिवंध, अनुभागबंध परदेश बंध मानिये । प्रकृति प्रदेशबंध दोऊ मनवचकाय, के संयोगसेती हों-
हि ऐसे उर आनिये ॥ थिति बंध अनुभाग होंय ये कपायसेती, स-
मुच्च समस्या एती समुद्धि प्रमानिये । ऐसे बंधविधि कही ग्रंथनके
अनुसार सर्वगविचार सरवज्ञ भये जानिये ॥ ३३ ॥

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ ॥

सो भावसंवरो ग्लु, दब्बासवरोहणो अण्णो ॥ ३४ ॥

कर्मनिके आस्रव निरोधियेके भाव भये, तेई परिणाम भाव-
संवर कहीजिये । द्रव्यास्रव रोकियेको कारण सु जेजे होंय, ते ते
सर्व भेदद्रव्य संवर लहीजिये ॥ याहीविधि भेद दोय कहे जिन-
देव सोय, द्रव्यभाव उभे होय 'भैया' यों गहीजिये । संवरके
आवत ही आस्रव न आवै कहै, ऐसे भेद पाय परभाव त्याग
दीजियं ॥ ३४ ॥

वदसमिदी गुत्तीओ, धम्माणुपेहापरीसहजओ य ॥

चारित्तं बहु भैया, णायब्बा भावसंवरविसेसा ॥ ३५ ॥

अहिंसादि पंच महाव्रत पंचसमितिसु, मनवचकाय तीन गुप-
ति प्रमानिये । धरम प्रकार दश वारह सुभावनाजु, वाईस परी-
सह को जीतिवो सुजानिये ॥ बहुभेद चारितके कहत न आवै
पार, अति ही अपार गुण लच्छन पिछानिये । एते सब भेद भाव
संवरके जानियेजु, समुच्चैहि नाम कहे 'भैया' उर आनिये ॥३५॥

जह्कालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ॥

भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

मात्रिक कवित्त.

जे परिणाम होंहि आत्मके, पुगल करम खिरनके हेत ।
अपनों काल पाय परमाणू, तप निमित्ततें तजत सुखेत ॥
तिहँ खिरियेके भाव होंहि बहु, ते सब निर्जरभाव सुचंत ।
पुगल खिरै सुद्रव्य निर्जरा, उभयभेद जिनवर कहिदेत ॥३६॥
सञ्चस्स कम्मणो जो, खय हेदू अप्पणो कखु परिणामो ॥
णेवो सभावमोक्खो, दञ्चविमोक्खो य कम्मपुथभावो ३७

छप्पय छंद.

सकल कर्म छय करन, भाव अंतरगत राजें ।
तिन भावनिसों कहत, भाव यह मोक्ष सु छाजें ॥
दर्वमोक्ष तहाँ लहत, कर्म जहां सर्व विनासैं ।
आत्मके परदेश, भिन्न पुद्गलतें भासैं ॥
इहविधि सुभेद द्वै मोक्षके, कहे सु जिनपथ धारिकें ।
यह द्रव्य भावविधि सरदहत, सम्यकवतं विचारिकें ॥३७॥
सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं ह्वंति खलु जीवा ॥
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥ ३८ ॥

कवित्त.

शुभभाव तहां जहां शुभ परिणाम होहिं, जीवनिकी रक्षा
अरु व्रतनिकों करिवो । तातें होय पुण्य ताको फल सातावेद-
नीय, शुभ आयु शुभगोत बहु सुख वरिवो ॥ अशुभ प्रणामनितें
जीव हिंसा आदि बहु, पापके समूह होंय संकृतको हरिवो । वे-
दनी असाता होय छिनकी न साता होय, आयु नाम गोत सब
अशुभको भरिवो ॥ ३८ ॥

इति श्रीसप्ततत्त्वनवपदार्थ प्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारः ॥ २ ॥

(१) 'पुह' ऐसा भी पाठ है ।

सम्मदंसण णाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्चयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

छप्पय.

सम्यकदरशप्रमाण, ज्ञान पुनि सम्यक सोहै ।
अरु सम्यक चारित्र, त्रिविध कारण शिव जो है ॥
नय व्यवहार वखानि, कह्यो जिन आगम जैसे ।
निहचै नय अव सुनहु, कहहुं कछु लच्छन तैसे ॥
दर्शन सुज्ञान चारित्रमय, यह है परम स्वरूप मम ।
कारणसु मोक्षको आपु तैं, चिद्विलास चिद्रूपक्रम ॥ ३९ ॥
रयणत्तयं ण वट्ठइ, अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियद्धि ॥
तह्मा तत्तिय मइओ, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

कवित्त.

जीव व्यतिरेक ये रतनत्रय आदि गुण, अन्य जडद्रव्यनिमें
नैकुह न पाइये । तातैं दृग्ज्ञानचर्ण आत्मको रूपवर्ण, त्रिगु-
णको मूलधर्ण चिदानंद ध्याइये ॥ निश्चैनय मोक्षको जु का-
रण है आप सदा, आपनो सुभाव मोक्ष आपुमें लखाइये । जैसें
जैनवैनमें वखाने भेदभाव ऐन, नैनसो निहार 'भैया' भेद
यां वताइये ॥ ४० ॥

जीवादीसद्वहणं, सम्मत्तं रूपमप्पणे तं तु ॥
दुरभिणिवेसविसुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जद्धि ॥४१॥

जीवादि पदार्थनिकी जौन सरधानरूप, रुचि परतीति होय
निजपरभास है । ताको नाम सम्यक कहा है शुद्ध दरशन, जाके
सरधाने विपरीत बुद्धि नाश है ॥ आत्म स्वरूपको सुध्यान

ऐसे कहियतु, जाके होत होत बहु गुणको निवास है । सम्यक दरस भये ज्ञानहू सम्यक होय, इन्हैं आदि और सब सम्यक विलास है ॥ ४१ ॥

संसयविमोहविभ्रमविवर्जितं अप्परस्वरूपं ॥
गहणं सम्मं णाणं सायारमणेयमेयं तुं ॥ ४२ ॥

छप्पय.

निजपरवस्तु स्वरूप, ताहि वेदै अरु धारै ।
गुन लच्छन पहिचानि, यथावत अंगीकारै ॥
संशय विभ्रम मोह, ताहि वर्जित निज कहिये ।
ऐसो सम्यक ज्ञान, भेद जाके बहु लहिये ॥
तसपद महिमा अगम अति, बुधिवलको वरनन करै ।
यह मतिज्ञानादिक बहुत, भेद जासु जिन उच्चरै ॥ ४२ ॥
जं सामणं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं ॥
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णये समये ४३

मात्रिककवित्त.

जासु स्वरूप सवै प्रतिभासत, दर्शन ताहि कहै सब कोय ।
भावऽरु भेद विचार विना जहँ, एकहि वेर विलोकन होय ॥
जानि जु द्रव्य यथावत वेदत, भेद अभेद करै नहिं जोय ॥
गुण देखै विकल्प विनु 'भैया', दरसन भेद कहावे सोय ॥ ४३ ॥
दंसणपुब्बं णाणं, छदमत्थाणं ण दुण्णि उवयोगा ॥
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दोवि ॥ ४४ ॥

(१) 'च' ऐसा भी पाठ है ।

कुंडलिया.

सब संसारी जीवको, पहिले दरशन होय ।
 ताके पीछे ज्ञान है, उपजै संग न दोय ॥
 उपजै संगन दोय, कोइ गुण किसि न सहाई ।
 अपनी अपनी ठौर, सबै गुण लहै बडाई ॥
 पैश्रीकेवल ज्ञानको, होय परमपद जब्ब ।
 तब कहुं समै न अंतरो, होंहिं इकट्ठे सब्ब ॥ ४४ ॥
 असुहादो विणवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ॥
 वदसमिदिगुत्तिरुवं ववहारणया दु जिणभणियं ॥ ४५ ॥
 कवित्त.

पापपरिणाम त्याग हिसातैं निकसि भाग, धरमके पंथ लाग
 दयादान कररे । श्रावकके व्रत पाल ग्रंथनके भेद भाल, लगै दोष
 ताहि टाल अघनिको हररे ॥ पंच महाव्रतधरि पंच हू समिति
 करि, तीनहू गुपति वरि तेरह भेद चररे । कहै सर्वज्ञ देव चारित्र
 व्योहारभेव, लहि ऐसा शीघ्रमेव वेग क्यों न तररे ॥ ४५ ॥

बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं ।
 णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥ ४६ ॥

अभ्यंतर बाह्य दोऊ क्रियाको निरोध तहां, परम सम्यक्त गुण
 चारित उदोत है । वैन अरु काय दोऊ बाहिरके योग कहे, मन
 अभ्यंतर योग तीनो रोध होत है ॥ ताहीतैं निघट जल जात
 है संसाररूप, रागादिक मलिनको याही क्रम खोत है । कषाय
 आदि कर्मके समूहको विनाश करै, ताको नाव सम्यक चारित्र-
 दधिपोत है ॥ ४६ ॥

(१) इस कुंडलियेमें कुछ विलक्षणता है ।

दुविहंपि मोक्ख हेउं, झाणे पाउणादि जं मुणी णियमा ।
तद्धा पयत्तचित्ता, जूयं ज्ञाणं समवभसह ॥४७॥

मात्रिक कवित्त.

द्वै परकार मोखको कारण, नितप्रति तस कीजे अभ्यास ।
रत्नत्रयतै ध्यानप्राप्त पुन, सुख अनंत प्रगटै निजरास ॥
ध्यान होय तो लहै रतनत्रय, छिनमें करै कर्मको नास ।
तातै चिंता त्याग भविकजन, ध्यान करो धर मन उल्लास ॥४७॥
मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु ॥
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्त झाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

छप्पय.

मोह कर्म जिन करहु, करहु जिन रागऽरु द्वेषहिं ।
इष्ट संयोगहि देख, करहु जिन राग विशेषहिं ॥
मिलहिं अनिष्टसंयोग, द्वेष जिन करहु ताहि पर ।
जो थिरता चित चहहु, लहहु यह सीख मंत्र वर ॥
ध्रुवध्यान करहु बहु विधिसहित, निर्विकल्पविधि धारिकें ।
जिमि लहहु परमपद पलकमें, त्रिविध करम अध टारिकें ॥४८॥
पणतीस सोल छ प्पण, चदु दुगमेगं च जवह झाएह ॥
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण ॥ ४९ ॥

चौपई १९ मात्रा.

पंच परमपद कीजे ध्यान । तस अक्षरका सुनहु विधान ।
तीस पंच अक्षर गणलीजे । नमस्कार नितप्रति तिहँ कीजे ॥
'णमो अरहंताणं' सात । 'णमो सिद्धाणं' पंच विख्यात ।
'णमो आयरियाणं' पँच दोय । 'णमो उवज्झायाणं' रिषि होय

(१) मत । (२) 'विनान' ऐसामी पाठ हैं । (३) सात ।

‘णमोलोए सन्वसाहूणं’ । नवमिलि पैंतिस अक्षर गुणं ।

शोलह अक्षरको विस्तार । सुनहु भविक परमागमसार ॥

‘अरहंत सिद्ध आचारज’नामा ‘उपाध्याय’नित ‘साधु’प्रणाम ।

‘अरहंत सिद्ध’ छै अक्षर जाना ‘अ सि आ उ सा’ पंच प्रधान ।

चतु अक्षर ‘अरहंत’ चितारि । द्वै अक्षर श्री ‘सिद्ध’ निहारि ॥

इक अक्षर ‘ओं’ सब ही धरै । इनको सुमरन भविजन करै ।

ये सबही परमेष्टि लखेय । अन्य सकलगुरुमुख सुनलेय ॥

दोहा.

इह विधि पंच परमपदहि, भविजन नितप्रति ध्याय ॥

इनके गुणहि चितारतें प्रगट इन्ही सम थाय ॥ ४९ ॥

णट्ट चउघायकम्मो, दंसण सुहणाणवीरियमइओ ।

सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥ ५० ॥

कवित्त.

ऐसैं निज आतम अहंतको विचारियतु, चारकर्म नष्ट गये
ताहीतैं अफंद है । ज्ञानदर्शवरणीय मोहिनी सु अंतराय, येही चारि

कर्म गये चेतन सुछंद है ॥ दृष्टिज्ञान सुख वीर्य अनंत चतुष्टै युक्त,

आतमा विराजमान मानों पूर्णचंद है । परमोदारीक देह बसै राग

तजै जेह, दोषनितैं रह्यो सुद्ध ज्ञानको दिनंद है ॥ ५० ॥

णट्टकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणवो दट्ठा ॥

पुरिसाधारो अप्पा, सिद्धो ज्झायेह लोयसिहरत्थो ॥ ५१ ॥

ऐसे यह आतमाको सिद्ध कह ध्याइयतु, आठोंकर्म देहादिक

दोष जाके नसे हैं । लोक ओ अलोकको जु ज्ञानवन्त दृष्टिमाहिं,

जाकी स्वच्छताईमें सुभाव सब लसे हैं ॥ अनंतगुण प्रगट अनंतका-

लपरजंत, थिति है अडोल जाकी पुरुषाकार बसे हैं ॥ ऐसो है स्व-

रूप सिद्धखेतमें विराजमान, तैसो ही निहारि निज आपुरस रसे
हैं ॥ ५१ ॥

दंसण णाणपहाणे, वीरिय चारित्त वरतवायारे ॥

अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी ज्जेओ ॥ ५२ ॥

पंच जु आचारजके जानत विचार भले, ताही आचारजजूको
नाम गुणधारी है । आपहू प्रवर्त्तै इह मारग दयाल रूप, और
प्रवर्त्तविनको परउपकारी है ॥ दरसनाचार ज्ञानाचारवीर्याचार
चर्णाचार तपाचारमें विशेष बुद्धि भारी है । इन्हें आदि और
गुण केतेई विराज रहे, ऐसे आचारज प्रति वंदना हमारी है ॥ ५२ ॥

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो ॥

सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥ ५३ ॥

मात्रिक कवित्त.

सम्यक दरश ज्ञान पुनि सम्यक, अरु सम्यक चारित कहिये ।

ये रतनत्रय गुण करि राजत, द्वादश अँग भेदी लहिये ॥

सदा देत उपदेश धरमको, उपाध्याय इह गुण गहिये ।

मुनि गणमाहिं प्रधान पुरुष है, ता प्रति वंदन सरदहिये ॥ ५३ ॥

दंसण णाणसमगं, मगं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।

साधयदि णिच्च सुद्धं, साहू स मुणी णमो तस्स ॥ ५४ ॥

दोहा.

सम्यक दर्शन संजुगत, अरु सम्यक जहँ ज्ञान ।

तिहँ करि पूरण जो भरयो, सो चारित परमान ।

चारित मारग मोक्षको, सर्वकाल सुध होय ।

तिहँ साधत जो साधु मुनि, तिनप्रति वंदत लोय ॥ ५४ ॥

जंकिंचि विचिंततो, गिरीहवित्ती हवे जदा साहू ॥
लद्धूणय एयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्चयं ज्ञाणं ॥ ५५ ॥

छप्पय.

जब कहूं साधु मुनीन्द्र, एक निज रूप विचारें ।
तब तहूं साधु मुनीन्द्र, अघनिके पुंज विदारें ॥
जब कहूं साधु मुनीन्द्र, शुद्ध थिरतामहिं आवै ।
तब तहूं साधु मुनीन्द्र, त्रिविधिके कर्म बहावै ॥

इम ध्यान करत मुनिराज जब, रागादिक त्रिक दारिके ।
तिन प्रति निश्चै कहत जिन, वंदहु सुरति सँभारिके ॥ ५५ ॥
मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंचि जेण होइ थिरो ॥
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्ञाणं ॥ ५६ ॥

कवित्त.

मनवचकाय तिहूं जोगनिसों राचि कहूं, करो मति चेष्टा तुम इन
की कदाचिकें । वोलो जिन वैन कहूं इनसों मगन हैके, चिंतो
जिन आन कछु कहूं तोहि सांचिकें ॥ पर वस्तु छांड निज रू-
प माहिं लीन होय, थिरताको ध्यान करि आतमसों राचिकें ।
देख्यो जिन जिनवान यहै उतकृष्ट ध्यान, जामे थिर होय परम क-
र्म नाच नाचिकें ॥ ५६ ॥

तवसुदवदवं चेदा, ज्ञाणरहधुरंधरो जह्मा ॥
तह्मा तत्तियणिरदा, तल्लङ्गीए सदा होइ ॥ ५७ ॥

मात्रिक कवित्त.

जब यह आतम करै तपस्या, दाहै सकल कर्मवन कुंज ॥
श्रुतसिद्धांत भेद बहु वेदत, जपै पंच पदके गुणपुंज ॥

व्रतपर्चखान करै बहु भेदै, इन संयुक्त महा सुख भुंज ।
 तब तिहँ ध्यान धुरंधर कहिये, परमानंद प्राप्तिमें मुंज ॥५७॥
 द्रव्यसंग्रहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ॥
 सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, नेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥५८॥
 कवित्त.

सकलगुण निधान पंडितप्रधान बहु, दूषणरहित गुणभूषण-
 सहित हैं । तिनप्रति विनवत नेमिचंद मुनिनाथ, सोधियो जु याको
 तुम अर्थ जे अहित हैं ॥ ग्रंथ द्रव्यसंग्रह सु कीनो में बहुतथोरो,
 मेरी कछु बुद्धि अल्पशास्त्र जो महित हैं । तातें जु यह ग्रंथ रचना-
 करी है कछु, गुण गहि लीज्यो एती, विनती कहित हैं ॥५९॥
 इति श्रीद्रव्यसंग्रहग्रंथे मोक्षमार्गकथनं तृतीयोऽधिकारः ।

दोहा—

नेमचंद मुनिनाथने, इहविध रचना कीन ॥
 गाथा थोरी अर्थ बहु, निपट सुगम करदीन ॥ १ ॥

छप्पय.

ज्ञानवंत गुण लहै, गहै आतमरस अमृत ।
 परसंगत सब त्याग, शांतरस वरें सु निज कृत ॥
 वेदै निजपर भेद, खेद सब तजें कर्मतन ।
 छेदै भवथिति वास, दास सब करहिं अरिनगन ॥
 इहविधि अनेक गुण प्रगट करि, लहै सुशिवपुर पलकमें ।
 चिद्विलास जयवंत लखि, लेहु 'भविक' निज झलकमें ॥ २ ॥

दोहा.

द्रव्यसंग्रह गुण उदधिसम, किहँविधि लहिये पार ।
 यथाशक्ति कछु वरणिये, निजमतिके अनुसार ॥ ३ ॥

(१) प्रत्याख्यान=त्याग ।

चौपाई १५ मात्रा.

गाथा मूल नेमिचंद करी । महा अर्थनिधि पूरण भरी ॥
 बहुश्रुत धारी, जे गुणवंत । ते सब अर्थ लखहिं विरतंत ॥ ४ ॥
 हमसे मूरख समझें नाहिं । गाथा पढ़ै न अर्थ लखाहिं ॥
 काहू अर्थ लखे बुधि ऐन । वांचत उपज्यो अति चितचैन ॥ ५ ॥
 जो यह ग्रंथ कवितमें होय । तौ जगमाहिं पढ़ै सब कोय ॥
 इहिविधि ग्रंथ रच्यो सुविकास, मानसिंह व भगोतीदास ॥ ६ ॥
 संवत सत्रहसे इकतीस, माघसुदी दशमी शुभदीस ॥
 मंगल करण परमसुखधाम, द्रवसंग्रहप्रति करहुं प्रणाम ॥ ७ ॥
 इति श्रीद्रव्यसंग्रहमूलसहित कवित्तबंध समाप्तः ।

अथ चेतनकर्मचरित्र लिख्यते.

दोहा.

श्रीजिन चरण प्रणाम कर, भाव भक्ति उर आन ॥
 चेतन अरु कछु कर्म को, कहहुं चरित्र बखान ॥ १ ॥
 सोवत महत मिथ्यात में, चहुं गति शय्या पाय ॥
 वीत्यो काल अनादि तहँ, जग्यो न चेतन राय ॥ २ ॥
 जवही भवथिति घट गई, काल लब्धि भइ आय ॥
 बीती मिथ्या नीद तहँ, सुरुचि रही ठहराय ॥ ३ ॥
 किये कर्ण प्रथमहि तहां, जाग्यो परम दयाल ॥
 लह्यो शुद्ध सम्यक दरस, तोरि महा अघ जाल ॥ ४ ॥
 देखहिं दृष्टि पसारिकें, निज पर सबको आदि ॥
 यह मेरे संग कौन हैं, जड़सँ लगे अनादि ॥ ५ ॥
 तब सुबुद्धि बोली चतुर, सुन हो ! कंत सुजान ॥
 यह तेरे संग अरि लगे, महासुभट बलवान ॥ ६ ॥

कहो सुबुद्धि किम जीतिये, ये दुश्मन सब घेर ॥
 ऐसी कला बताव जिमि, कवहुं न आवें फेर ॥ ७ ॥
 कह सुबुद्धि इक सीख सुन, जो तू मानें कंत ॥
 कै तो ध्याय स्वरूप निज, कै भज श्रीभगवंत ॥ ८ ॥
 सुनिके सीख सुबुद्धिकी, चेतन पकरी मौन ॥
 उठी कुबुद्धि रिसायके, इह कुलक्षयनी कौन ? ॥ ९ ॥
 मै बेटी हूं मोह की, व्याही चेतनराय ॥
 कहौ नारि यह कौन है, राखी कहां लुकाय ॥ १० ॥
 तब चेतन हूँस यों कहै, अब तोसों नहिं नेह ॥
 मन लाग्यो या नारिसों, अति सुबुद्धि गुण गेह ॥ ११ ॥
 तबहिं कुबुद्धि रिसायके, गई पिताके पास ॥
 आज पीय हमें परिहरी, तातें भई उदास ॥ १२ ॥

चौपाई (मात्रा १५)

तबहिं मोह नृप बोलै बैन । सुन पुत्री शिक्षा इक ऐन ॥
 तू मन में मत है दलगीर । बांध मैगावत हों तुमतीर ॥ १३ ॥
 तब भेजो इक काम कुमार । जो सब दूतनमें सरदार ॥
 कहो बचन मेरो तुम जाय । क्योंरे अंध अधरमी राय ॥ १४ ॥
 व्याही तिय छांड़हि क्यों कूरा । कहां गयो तेरो बल शूर ॥
 कै तो पांय परहु तुम आय । कै लरिबे को रहहु सजाय ॥ १५ ॥
 ऐसे बचन दूत अवधार । आयहु चेतन पास विचार ॥
 नृपके बैन ऐन सब कहे । सुनके चेतन रिस गह रहे ॥ १६ ॥
 अब याको हम परसें नाहिं । निजबल राज करें जगमाहिं ॥
 जाय कहो अपने नृप पास । छिनमें करुं तुम्हारो नास ॥ १७ ॥

तुम मन में मत करहु गुमान । हम बहु हैं यह एक सुजान ॥
 कर आवहु असवारी वेग । मैं भी बांधी तुम पर तेग ॥ १८ ॥
 ऐसे वचन सुनत विकराल । दूत लखै यह कोप्यो काल ॥
 उन से तो जब है है रारि । तबलों मोह न डारै मारि ॥ १९ ॥
 तब मन में यह कियो विचार । अवके जो राखै करतार ॥
 तो फिर नाम न इनको लेउं । चेतनको पुर सब तज देउं ॥ २० ॥
 तब बोले चेतन राजान । जाहु दूत तुम अपने थान ॥
 फिर जिन आवहु इहि पुर माहिं । देखेसों बचिहो पुनि नाहिं ॥ २१ ॥

सोरठा.

दूत लह्यो प्रस्ताव, मन में तो ऐसी हुती ॥
 भलो वन्यो यह दाव, आयो राजा मोह पै ॥ २२ ॥
 कही सब समुझाय, बातें चेतन राय की ॥
 नवहि न तुमको आय, लरिवे की हामी भरै ॥ २३ ॥
 सुनके राजा मोह, कीन्हीं कटकी जीव पै ॥
 अहो सुभट सज होय, घेरो जाय गँवार को ॥ २४ ॥
 सज सज सबही शूर, अपनी अपनी फौज ले ॥
 आये मोह हजूर, अवै महलौ लीजिये ॥ २५ ॥

चौपाई.

राग द्वेष दोउ बड़े बजीर । महा सुभट दल थंभन वीर ॥
 फौज माहिं दोऊ सरदार । इनके पीछे सब परवार ॥ २६ ॥
 ज्ञानावरण बोलै यों वैन । मो पै पंच जाति की सैन ॥
 जिन जग जीव किये सब जेर । राखे भवसागर में घेर ॥ २७ ॥

ज्ञान उपरि मेरे सब लोग । ताहींतैं न जगें उपयोग ॥
 जानें नहीं 'एक अरु दोय' । सो महिमा मेरी सब होय ॥ २८ ॥
 तव दर्शनावरण यों कहै । जगके जीव अंध हैं रहै ॥
 सो सब है मेरो परशाद । नौ रस बीर करें उनमाद ॥ २९ ॥
 तवै वेदनी बोलै धीर । मो पै दोय जातिके बीर ॥
 महा सुभट जोधा बलसूर । तीर्थकर के रहें हुजूर ॥ ३० ॥
 और जीव वपुरे किहि मात । मेरी महिमा जग विख्यात ॥
 मोको चाहें चहुं गति माहिं । मैं छिन सुख छों छिन दुख पांहि ॥ ३१ ॥
 आयु कर्म बोलै बलवंत । सिद्ध बिना सब मेरे जंत' ॥
 मैं राखों तोलैं धिर रहै । नातरु पंथ मौत की गंह ॥ ३२ ॥
 मो पै चार जातिके सूर । तिनसों युद्ध करै को कूर ॥
 चहुंगति में मेरे सब दास । मैं त्यागों तव शिवपुरवास ॥ ३३ ॥
 नामकर्म बोलै गहि भार । मो विन कौन करै संसार ॥
 मैं करता पुदगल को रूप । तामें आय वसै चिद्रूप ॥ ३४ ॥
 बीर तिरानवे मेरे संग । रूप रसीले अरु बहुरंग ॥
 इनसों सरभर को जिय करै । तोहु न छाँडै भर अवतर ॥ ३५ ॥
 गोत्रकर्म लै द्वय असवार । ऊंचनीच जिनको परवार ॥
 सूर वंशको यहै स्वभाव । छिनमें रंक करै छिन राव ॥ ३६ ॥
 अंतराय अपनों दलसाज । पंच सुभट देखौ महाराज ॥
 सबके आगे ये असवार । रणमें युद्ध करै निरधार ॥ ३७ ॥
 कर हथियार गहन नहिं देहिं । चेतनकी सुधि सब हर लेहिं ॥
 ऐसे सुभट एक सौ बीस । तिनके गुण जानें जगदीश ॥ ३८ ॥

इनके सुभट सात सरदार । परदल गंजन जवर जुझार ॥
तवै मोह नृप अति आनंद । देखे सब सुभटनके वृन्द ॥ ३९ ॥

पुनर्जन्म छन्द.

राग द्वेप द्वय मित्र, लये तव बोलिकै ।
तुम ल्यावहु मम फौज, भवनत्रय खोलिकै ॥
बीस आठ असवार, बड़े सब सूरमा ।
अरिपै यों चल जाहिं, नदी ज्यों पूरमा ॥ ४० ॥
राग द्वेप तहँ चले, जहां सब सूर हैं ।
लाये तुरत बुलाय, प्रभू ये हज़ूर हैं ॥
तव बोले मुख बैन, जीवपर हम चढ़े ।
सुनके श्रवनन शब्द, सूरके मन बढ़े ॥ ४१ ॥
फौजें कीन्हों चार, बडे विसतारसों ।
निज सेवक सरदार, किये भुजभारसों ॥
पहिली फौजें सात, सुभट आगें चले ।
दूजी फौजें चार, चारतें सब भले ॥ ४२ ॥
द धोंसा सब चढ़े, जहां चेतन बसै ।
आये पुरके पास, न आगें को धसै ॥
चेतनको गढ़ जोर, देख सब थरहरे ।
सात सुभट तव निकस, सबन आगें अरे ॥ ४३ ॥

दोहा.

उदय दूत सुधि मोहकी, कही जीवपै जाय ॥
कहां रहे तुम बैठके?, फौजें लागी आय ॥ ४४ ॥

(१) नगाड़े बजाकर ।

सोरठा.

सुनके चेतन राय, चित चमक्यो कीजे कहा ॥
 लीन्हों ज्ञान बुलाय, कहो मित्र कहा कीजिये ॥ ४५ ॥
 तब बोलै यों ज्ञान, इनसों तो लरिये सही ॥
 हरिये इनको मान, अपनी फौजें साजिये ॥ ४६ ॥

चौपाई (१५ मात्रा)

तब चेतन बोले मुख वीर । तुमसे मेरे वड़े वजीर ॥
 तो मो कहँ चिंता कछु नाहिं । निर्भय राज करुं जगमाहिं ॥ ४७ ॥
 इनपै फौज करहु तय्यार । लेहु संग सब सूर जुझार ॥
 तबै ज्ञान सब सूर बुलाय । हुकम सुनायो चेतनराय ॥ ४८ ॥
 है तैयार गहहु हथियार । कर्मनसों अव करनी भार ॥
 सुनिकर सूर खुशी अतिभये । अंतमुहूरतमें सज गये ॥ ४९ ॥
 लेहु हाजिरी ज्ञान वजीर । कैसे सुभट वने सब वीर ॥
 तबै ज्ञान देखै सब सैन । कौन कौन सूर तुम ऐन ॥ ५० ॥
 प्रथम स्वभाव कहै मैं वीर । मोहि न लागें अरिके तीर ॥
 और सुनहु मेरी अरदास । छिनमें करुं अरिनको नास ॥ ५१ ॥
 तब सुध्यान बोलै मुख बैन । हुकम तुम्हारे जीतों सैन ॥
 मो आगें सब अरिनसि जाय । सूर देख जिम तिभर पलाय ॥ ५२ ॥
 पुनि बोलो चारित बलवंत । छिनमें करहुं अरिन को अंत ॥
 अरु विवेक बोलै बलसूर । देखत मोहनसहिं अरिकूर ॥ ५३ ॥
 तब संवेग कहै कर मान । अरि कुल अवहिं करुं घमसान ॥
 तब उत्तम बोले समभाव । मैं जीते बांके गढ़राव ॥ ५४ ॥

तौ अरि वपुरे हैं किंह मात । तम सम चूर करों परभात ॥
 बोलैं वच संतोष रसाल । मो आगें वे कहा कँगाल ॥ ५५ ॥
 धीरज कहै मोसन को सूर । पलमें करहुँ अरिन चकचूर ॥
 सत्य कहै मोमैं बहु जोर । जीतों बैरी कठिन करोर ॥ ५६ ॥
 उपशम कहत अनेक प्रकार । मैं जीते बैरी सरदार ॥
 दर्शन कहत एकही बेर । जीतों सकल अरिनको घेर ॥ ५७ ॥
 आये दान शील तप भाव । निश्चय विधि जानें जिनराव ॥
 पारन पावहुँ नाम अपार । इहि विधिसकल सजे सरदार ॥ ५८ ॥
 तबहिं ज्ञान चेतनसों कही । फौज तुम्हारी सब बन रही ॥
 चेतन देखै नयन उधार । यह तौ फौज भई तय्यार ॥ ५९ ॥
 अवहीं मेरे सूर अनंत । ल्यावहु ज्ञान हमारे मंत ॥
 शक्ति अनन्त लसैं निज नैन । देखो प्रभू तुम्हारी सैन ॥ ६० ॥
 अनंत चतुष्टय आदि अपार । सेना भई सबै तय्यार ॥
 जुरे सुभट सब अति बलवंत । गिनती करत न आवै अन्त ॥ ६१ ॥

दोहा.

कहै ज्ञान चेतन सुनहु, रोप करहु जिन रंच ॥
 एक बात मुहि ऊपजी, कहूं बिना परपंच ॥ ६२ ॥
 कहै जीव कहि ज्ञान तू, कैसी उपजी बात ॥
 तुम तो महा सुबुद्धि हो, कहते क्यों सकुचात ? ॥ ६३ ॥
 तबहिं ज्ञान निःशंक है, बोले प्रभु सन वैन ॥
 चाकर एकहि भेजिये, गहि लावे सब सैन ॥ ६४ ॥

सोरठा.

कहा विचारो मोह, जिहँ ऊपर तुम चढ़त हो ॥
 भेजहु सेवक सोह, जीवित लावै पकरके ॥ ६५ ॥

कहै चेतन सुनज्ञान, वह घेरयो पुर आयके ॥

यह कहो कौन सयान, रहिये घरमें बैठके ॥ ६६ ॥

सूरनकी नहिं रीति, अरि आये घरमें रहै ॥

कै हारें कै जीति, जैसी हूँ तैसी बनै ॥ ६७ ॥

कहै ज्ञान सुनि सूर, तुम जो कहो सो सांच है ॥

कहा विचारो कूर, जिहँ ऊपर तुम चढ़त हौ ॥ ६८ ॥

पद्धरिछंद (१६ मात्रा)

तब जीव कहै सुनिये सुज्ञान । तुम लायक नाहीं यह सयान ॥

वह मिथ्यापुरको है नरेश । जिहँ धेरे अपने सकल देश ॥ ६९ ॥

जाके संग सूर हैं अनेक । अज्ञान भाव सब गहँ टेक ॥

मंत्रीसुर रागद्वेष हेर । छिनमें सब सेना करहिँ जेरा ॥ ७० ॥

संशय सो गढ़ जाके अटूट । विभ्रम सी खाई जटाजूट ॥

विषया सी रानी जासु गेह । सुत जाके सूर कपायसेह ॥ ७१ ॥

सैनापति चारों है अनंत । जिहँ घेरो अव्रतपुर महंत ॥

व्रतनामी लीन्हों देश छीन । परमत्तहिँ दोही आय कीन ॥ ७२ ॥

इहि विधि सब घेरे देश जेह । चढ़ आई फौजें लगी तेह ॥

तातें नृप आप अनंत जोर । बल जासुन पारावार ओर ॥ ७३ ॥

आयुध जाके भ्रम चक्र हाथ । बहु धारा जास उपाधि साथ ॥

महा नाग फाँस विद्या अनेक । वँध सत्तर कोड़ा कोड़ि टेक ॥ ७४ ॥

वाणादिक महा कठोर भाव । जिहिँ लगै बचत नहिँ रंक राव ॥

इहि विधि अनेक हथियार धार । कहुं नाम कहत नहिँ लहै पार ॥ ७५ ॥

यह मोह महा बलवत भूप । तुम ज्ञाता जानत सब स्वरूप ॥

कैसें कर इन सों बचौ जाव ? । तुम स्यानें है चूकौ न दाव ॥ ७६ ॥

सोरठा.

तव बोले यों ज्ञान, जिय ! तुमने सांची कही ॥

पै मेरे अनुमान, तुम क्यों जानो बात यह ॥ ७७ ॥

कहै जीव सुन मित्र, मैं वीतक अपनो कहूं ॥

तू धरि निश्चयचित्त, सुनहु वात विस्तारसों ॥ ७८ ॥

चौपई.

यही मोह नृप मोहि भुलाय । निजपुत्री दीन्ही परनाय ॥

ताकी याद मोह कछु नाहिं । काल अनादि याहिविधि जाहिं ७९

मेरी सुधि बुधि सब हर लई । मोहि न सुरत रंच कहूं भई ॥

इहि कीन्हो जैसो नट कीस । विविध स्वांग नांच्यौ निशिदीस ८०

चौरासी लख नाम धराय । कवहु स्वर्ग नरक लै जाय ॥

कवहु कौर मनुष तिरजंच । लखेन जाहिं याके परपंच ॥ ८१ ॥

जडपुर को मुह कियो नेरश । मैं जानो सब मेरो देश ॥

तब मैं पाप किये इहि संग । मानि मानि अपने रस रंग ॥

तब मैं बसौ मोहके गेह । तातें सब विधि जानों येह ॥ ८२ ॥

कहो कहां लों बहु विस्तार । थोरें लख लेहु विचार ॥ ८३ ॥

सोरठा.

तव बोलै इम ज्ञान, यह परमारथ मैं लहौ ॥

अब तुम सुनहु सुजान, एक हमारी बीनती ॥ ८४ ॥

सेवक भेजो एक, जो अतिही बलवंत हो ॥

तब रहै तुम्हरी टेक, मेरे मन ऐसी बसी ॥ ८५ ॥

कहै जीव सुन ज्ञान, विना विचारे क्यों कहौ ॥

मोह महा बलवान, ताकी पटतर कौन है ? ॥ ८६ ॥

चौपाई.

कहै ज्ञान सुन जीव नरेश । तुम सम और न कोउ राजेंस ॥
 सुख समाधि पुर देश विशाल । अभय नाम गढ़ अतिहि रसाल ८७
 तामें सदा बसहु तुम नाथ । निशि दिन राज करौ हित साथ ॥
 सुमति आदि पदरानी सात । सुबुधि क्षमा करुणा विख्यात ८८ ॥
 निर्जर दोय धारणा एक । सात आदि अरु सखी अनेक ॥
 बांधव जहां धरमसे धीर । अध्यातम से सुत वरवीर ॥ ८९ ॥
 मित्र शांति रस बसै सुपास । निजगुण महल सदा सुख वास ॥
 ऐसे राज करहु तुम ईश । सुख अनंत विलसहु जगदीश ९०
 तुम पै सूर सैनको जोर । तिनको पार नहीं कहूं ओर ॥
 तुम अपने पुर धिर है रहौ । वचन हमारो सत सरदहौ ॥ ९१ ॥
 आज्ञा करहु एक जन कोय । सज सेना वह आगें होय ॥
 कहै जीव तुम सुनहु सुज्ञान । तुम्हरे वचन हमें परवान ॥ ९२ ॥
 हम आज्ञा यह तुमको करी । लेहु महरत अति शुभ घरी ॥
 चढहु कर्म पै सज हथियार । सूर बडे सब तुम्हरी लारा ॥ ९३ ॥
 हमतुममें कछु अन्तर नाहिं । तुम हममें हम हैं तुम माहिं ॥
 जैसे सूर तेज दुति धरै । तेज सकल सूरज दुति करै ॥ ९४ ॥
 इहि विधि हम तुम परमसनेह । कहत न लहिये गुणको छेह ॥
 ज्ञान कहै प्रभु सुन इक बैन । शिक्षा मोहि दीजियो ऐन ॥ ९५ ॥
 तुम तो सब विधि हौ गुन भरे । पै अरि सों कबहूँ नहिं लरे ॥
 तातें तुम रहियो हुशियार । युद्ध बडे अरिसों निरधार ॥ ९६ ॥

वेशरी छंद. (१६ मात्रा)

ज्ञान कहै विनती सुन स्वामी । तुम तौ सबके अन्तर जामी ॥
 कहा भयो न करी मै रारी । अब देखो मेरी तरवारी ॥ ९७ ॥

वे सब दुष्ट महा अपराधी । किहू विधि सैन जाय सब साधी ॥
मेरे मन अचरज यह ज्ञाना । पै मैं जानों तुम बलवाना ॥ ९८ ॥

दोहा.

ज्ञान कहै चेतन सुनो, तुमसे मेरे नाथ ॥

कहा विचारो क्रूर वह, गहि डारों इक हाथ ॥ ९९ ॥

तब चेतन ऐसे कहै, जीत तुम्हारी होय ॥

मारि भगावों मोहको, रागद्वेष अरि दोय ॥ १०० ॥

करिखा छंद ।

ज्ञान गंभीर दलवीर संग ले चढ्यो, एक तैं एक सब
सरस सूर । कोट अरु संखिन न पार कोऊ गने, ज्ञानके भेद
दल सबल पूरा ॥ १०१ ॥ सिपहसालार सरदार भयो भेद नृप, अरि
न दलचूर यह विरद लीनो । हाथ हथियार गुणधार विस्तार ब-
हु, पहिर दृढभाव यह सिलह कीनो ॥ १०२ ॥ चढत सब वीर
मन धीर असवार हैं, देख अरिदलनको मान भंजै । पेख जय-
वंत जिनचंद सबही कहै, आज पर दलनिको सही गंजै ॥ १०३ ॥
अतिहि आनंदभर वीर उमगंत सब, आज हम भिड़नको दाव
पायो ॥ युद्ध ऐसो विकट देख अरि थर हरें, होय हम नाम दिन
दिन सवायो ॥ १०४ ॥

मरहठा छंद.

वज्रहिं रण तूरे, दल बहु पूरे; चेतन गुण गावंत ॥

सूरा तन जगगो, कोऊ न भगगो, अरिदलपै धावंत ॥

ऐसे सब सूरे, ज्ञान अँकूरे, आये सन्मुख जेह ॥

आपावल मंडे, अरिदल खंडे, पुरुषत्वनके गेह ॥ १०५ ॥

दोहा.

नाम विवेक सु दूतको, लीन्हों ज्ञान बुलाय ॥

जाय कहहु वा मोहको, भलो चहै तो जाय ॥ १०६ ॥

जो कबहूँ देदो वकै, तो तुम दीज्यो सोंस ॥

धिक धिक तेरे जनमको, जो कछु राखै होंस ॥ १०७ ॥

तेरो बल जेतो चलै, तेतो कर तू जोर ॥

वे चाकर सब जीवके, छिनमें करि हैं भोरें ॥ १०८ ॥

ज्ञान भलाई जानकें, मैं पठ्यो तोहि पास ॥

चेतनको पुर छांडदे, जो जीवनकी आस ॥ १०९ ॥

सोरठा.

चल्यो विवेक कुमार, आयो राजा मोह पै ॥

कह्यो वचन विस्तार, भलो चहै तो भाजिये ॥ ११० ॥

सुनके वचन हुताश, कोप्यो मोह महा बली ॥

छिनमें करिहों नाश, मो आगें तुम हो कहा? ॥ १११ ॥

दोहा.

एकहि ज्ञानावर्णिने, तुम सब कीने जेर ॥

इतनी लाज न आवही, मुखहिं दिखावहु फेर ॥ ११२ ॥

काल अनंतहिं कित रहे, सो तुम करहु विचार ॥

अब तुम में कूवत भई, लरिवेको तय्यार ॥ ११३ ॥

चौरासी लख स्वांगमें, को नाचत हो नाच ॥

वा दिन पौरुष कित गयो, मोहि कहो तुम सांच ॥ ११४ ॥

इतने दिनलों पालिकें, मैं तुम कीने पुष्ट ॥

तातें लरिवेको भये, गुण लोपी महा दुष्ट ॥ ११५ ॥

जाहु जाहु पापी सबै, चेतनके गुण जेह ॥

मोको मुख न दिखावहु, छिनमें करिहों खेह ॥ ११६ ॥
मोहवचन ऐसे सये, सुनिके चलयो विवेक ॥

आयो राजा ज्ञान पै, कही बात सब एक ॥ ११७ ॥
वह क्योंही भाजै नहीं, गहि बैठ्यो यह टेक ॥

लरिहों फोजें जोरिके, बोलै दूत विवेक ॥ ११८ ॥
दूत वचन सुनिकें हँसो, ज्ञान बली उर माहिं ॥

देखो धित पूरी भई, क्योंहु मानें नाहिं ॥ ११९ ॥
लेहु सुभट ! तुम वेगही, अव्रतपुर अभिराम ॥

रह्यो क्रूर वह धेरिकें, मेटहु वाको नाम ॥ १२० ॥
चढ़ी सैन सब ज्ञानकी, सूर वीर बलवन्त ॥

आगे सेनानी भयो, महा विवेक महंत ॥ १२१ ॥
करिखा छंद.

आय सन्मुख भये मोहकी फोजसों, भिड़नके मतै सब सूर
गाढे । देख तव मोह अति कोहँ, मनमें कियो, सुभट हलकारि
रहे आप ठाढे ॥ १२२ ॥ सूर बलवन्त मदमेंत महा मोहके, निकसि
सब सैन आगे जु आये ॥ मारि घमसान महा जुद्ध बहु रुद्ध
करि, एक तैं एक सातों सवाये ॥ १२३ ॥

वीर सुविवेकने धनुष ले ध्यानका, मारिकें सुभट साँतों गिराये ।
कुमक जो ज्ञानकी सैन सब संग धसी, मोहके सुभट मूर्छा समाये ॥ १२४ ॥
देख तव युद्ध यह मोह भाग्यो तहां, आय अव्रतहिं सब सूर जोरे,
बांधकर मोरचे बहुरि सन्मुखभयो, लरनकी होंसतें करै निहोरे ॥ १२५ ॥

(१) चौथा गुण स्थान । (२) सेनापति । (३) क्रोध । (४) मदोन्मत्त । (५)

मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया
लोभ ये ७ प्रकृतियें । (६) उपशमित कियो । (७) चौथे गुणस्थानमे ।

चौपाई १५ मात्रा.

इहविधि मोहजोरिसव सैन। देशव्रत पुर बैठो ऐन ॥
 करै उपाय अनेक प्रकार। किहिविधि ल्यों अत्रतपुर सार ॥ १२६ ॥
 सुभट सात तिनको दुँखकरै। तिन विन आज निकसि को लरै ॥
 जो होते वे सूर प्रधान। तो लेते अत्रतपुर थान ॥ १२७ ॥
 ऐसे वचन मोह नृप कहे। रागद्वेष तव अति उर दहे ॥
 हा हा ! प्रभु ऐसैं क्यों कहो। एक हमारी शिक्षा लहो ॥ १२८ ॥
 सुभट तुम्हारे हैं बहु बीर। तिनमें जानहु साहस धीर ॥
 तिनको आज्ञा प्रभुजी देहु। इहविधि अत्रतपुर तुम लेहु ॥ १२९ ॥
 तबै मोहनृप बीड़ा धरै। कौन सुभट आगे है लरै ॥
 तब बोले अप्रत्याख्यान। मैं जीतूँ अवके दलज्ञान ॥ १३० ॥
 कहै मोहनृप किहिविधि बीर। मोहि बतावहु साहस धीर ॥
 बोले अप्रत्याख्यान प्रकास। सुनहु प्रभू मेरी अरदास ॥ १३१ ॥
 मैं अत्रतपुरमें छिप जाऊँ। चेतन ज्ञान वसै जिह ठाऊँ ॥
 संग लेय अपने सब लोग। नानाविधि परकासों भोग ॥ १३२ ॥
 उनके उपसम वेदकभाव। क्षयउपसम वसुभेद लखाव ॥
 इनकैथिरताबहुकछुनाहिं। छिनसम्यकछिनमिथ्यामाहिं ॥ १३३ ॥
 क्षायक एक महा जे जोर। पहिले प्रगटै ना उहि ओर ॥
 तोलों देखहु मैं क्या करों। व्रतके भाव सर्वथा हराँ ॥ १३४ ॥
 अत्रतमें उपशम हट जाय। जिहँकर पापपुण्य मन लाय ॥
 जब वह मगन होय इहि संग। जीत लेहु तबही सरवंग ॥ १३५ ॥

(१) पंचमगुणस्थानमें। (२) विता। (३) अप्रत्याख्यानावणों कोष मान
 माया लोभ। (४) चेतनके, (५) श्रावकके व्रत।

इहिविधि जीतों परदल जाय । जो मोहि आज्ञा दीजे राय ॥
तवै मोहनृप चितै सही । यह तौ बात भली इन कही ॥ १३६ ॥
सिद्धि करहु अप्रत्याख्यान । लेहु सूर संग जे बलवान ॥
इहिविधि आयो पुरंके माहिं । ज्ञानीविन जानै कोउ नाहिं ॥ १३७ ॥
निजविद्या परकाशै सही । नानाविध क्रोधादिक लही ॥
ताके भेद अनेक अपार । कौलों कहिये बहु विस्तार ॥ १३८ ॥

दोहा.

इहिविधि सब ही सैन ले, आयो अप्रत्याख्यान ॥
अव्रतपुरमें पैठिके, करै व्रतनिकी हान ॥ १३९ ॥
ताके पीछें मोहनृप, आयो सब दल जोरि ॥
महासुभट संग सूर लै, चढ्यो सुमूँछ मरोरि ॥ १४० ॥
कुमन जसूस बुलायकें, मोह कहै यह बात ॥
तुम सुधि लावहु वेगही, कहां सुभट वे सात ॥ १४१ ॥
कुमन खबर पहिले दर्ई, वे मूर्छित उन पास ॥
कछु विद्या कीजे यहां, ज्यों वे लहैं प्रकास ॥ १४२ ॥
मोह करै विद्या विविध, रागद्वेष लै संग ॥
उनमें कछु चेतन भये, कछु रहे मूर्छित अंग ॥ १४३ ॥
सुमन दूत सब ज्ञानपै, कही मोहकी बात ॥
कहाँ रहे तुम बैठि वह, सुभट जिवावत सात ॥ १४४ ॥
जो वे सात जिये कहूं, तौ तुम सुनहो बात ॥
चेतनके सब सुभट को, करि है पलमें घात ॥ १४५ ॥
मोह जु फौजें जोरिके, आयो कर अभिमान ॥
तुमहू अपने नाथको, खबरि पठावहु ज्ञान ॥ १४६ ॥

तवै ज्ञान निजनाथपै, भेज्यो सम्यक वेग ॥

कहो बधाई जीतकी, अरु पुनि यह उद्वेग ॥ १४७ ॥

बहुरि मिले वे दुष्ट सब, आये पुरके माहिं ॥

लखिवेकी मनसा करै, भागनकी बुधि नाहिं ॥ १४८ ॥

इहि विधि सम्यकभाव सब, कही जीवपै जाय ॥

सुनिकें प्रबलप्रचंड अति, चढ्यो सुचेतनराय ॥ १४९ ॥

महा सुभट बलवंत अति, चढ्यो कटक दल जोर ॥

गुण अनंत सब संग है, कर्म दहनकी ओर ॥ १५० ॥

आय मिले सब ज्ञानसे, कीन्हों एक विचार ॥

अवकें युध ऐसो करहु, बहुरि न बचै गँवार ॥ १५१ ॥

चढे सुभट सब युद्धको, सूरवीर बलवंत ॥

आये अंतर भूमि महिं, चेतन दल सुअनंत ॥ १५२ ॥

सोरठा.

रोपि महारण थंभ, चेतन धर्म सुध्यानको ।

देखत लगहि अचंभ, मनहिं मोहकी फौजको ॥ १५३ ॥

दोहा.

दोऊ दल सन्मुख भये, मच्यो महा संग्राम ॥

इत चेतन योधा बली, उतै मोह नृप नाम ॥ १५४ ॥

करखा छंद.

मोहकी फौजसों नाल गोले चलें, आय चैतन्यके दलहि लागें ॥

आठ मल दोष सम्यक्त्व के जे कहे, तेहि अव्रतमें मोह दागें ॥ १५५ ॥

जीवकी फौजसों प्रबल गोले चलें, मोहके दलनिको आय मारें ॥

अंतर विरागके भाव बहु भावता, ताहि प्रतिभास ऐसो विचारें ॥ १५६ ॥

बहुरि पुनि जॉर कर अतिहि धन धोर कर, मोहनृपचंद्र बातें चलावै ॥
 दोष पद आय तन अतिहि उपजाय धन, जीवकी फाँज सन्मुख बगावै ॥
 हंसकी फाँजतें वान घमसानके, गाजतें वाजतें चले गाढ़े ॥
 मोहकी फाँजको मारि हलंकार करि, हेयोपादेयक भाव काढ़े ॥ १५८ ॥
 अष्टमद गजनिके हलंके हंकारि दे, मोहके सुभट सब बसत सूर ॥
 एकतें एक जोधा महा भिड़त हैं, अतिहि बलवंत मदमंत पूरे ॥ १५९ ॥
 जीवकी फाँजमें सत्य परतीतके, गजनिके पुंज बहु धसत माते ॥
 मारिके मोहकी फाँजको पलकमें, करत घमसान मदमत्त आते १६० ॥
 मार गादी मचै, सुभट कोउ ना बचे, धाव विन खाये, दुहुं दलनमाहीं ॥
 एक तें एक जोधा दुहुं दलनमें, कहते कहूँ उपमावनत नाहीं ॥ १६१ ॥
 सात जे सुभट मूर्छित पड़ते भये, मोहने मंत्रकरि सब जियाये ॥
 आय इहिं जुद्धमहिं तिनहुको रुद्ध करि, जीवको जीत पीछें हटाये ॥
 मिश्रं सासदंनहिं परसमिध्यातमहि, उमगिके बहुरि अत्रतंहि आयो ॥
 मारि घमसान अवसान खोये त्वरित, सातमें एक हूँह्यो न पायो १६३ ॥

सोरठा.

इहविधि चैतन राय, युद्ध करत हैं मोहसों ॥

आर मुनहु अधिकाय, अवहिं परस्पर भिड़त हैं ॥ १६४ ॥

मरहठा छंद.

रणसिंगे वज्रहिं, कोऊन भज्रहिं, करहिं महादोउ जुद्ध ॥

इत जीव हंकारहिं, निजपरवारहिं, करहु अरिनको रुद्ध ॥

इत मोह चलावे, तव दल धावे, चैतन पकरो आज ।

इहविधि दोऊ दल, में कल नहि पल, करहिं अनेक इलाज ॥ १६५ ॥

(१) लयकारकर । (२) तीसरे गुणस्थानमें । (३) दूसरे सासादनगुणस्थानमें । (४)

पदिनेमिव्यावगुणस्थानको भी स्वयंकरके । (५) चौथे गुणस्थानमें ।

चौपाई १५ मात्रा.

मोह सराग भावके वान । मारहिं खैंच जीवको तान ॥
 जीव वीतरागहिं निजध्याय । मारहिं धनुषवाण इहि न्याय १६६
 तबहिं मोहनृप खड्ग प्रहार । मारै पाप पुण्य दुइ धार ॥
 हंस शुद्ध वेदै निज रूप । यही खरग मारें अरि भूप १६७
 मोह चक्र ले आरत ध्यान । मारहि चेतनको पहिचान ॥
 जीव सुध्यान धर्मकी ओट । आप वचाय करै परचोट ॥१६८॥
 मोह रुद्र बैरछी गहि लेय । चेतन सन्मुख घाव जु देय ॥
 हंस दयालुभावकी ढाल । निजहिं वचाय करहि परकाल १६९
 मोह अविवेक गहै जमदाढि । घाव करै चेतन पर काढि ॥
 चेतन ले यमधर सुविवेक । मारि हरै बैरिनकी टेक ॥ १७० ॥
 चेतन क्षायक चक्र प्रधान । बैरिन मारि करहि घमसान ॥
 अप्रत्याख्यान मूरछित भये । मोह मारि पीछें हट गये ॥१७१॥
 जीत्यो चेतन भयो अनंद । बाजहिं शुभ बाजे सुखकंद ॥
 आयमिले अत्रतके भोग । दर्शनप्रतिमा आदि संयोग १७२
 व्रतप्रतिज्ञा दूजो भाव । तीजो मिल्यो सामायिक राव ॥
 प्रोषधव्रत चौथो बलवंत । त्यागसचित व्रत पंच महंत ॥१७३॥
 षष्ठम ब्रह्मचर्य दिन राय । सप्तम निशदिन शील कहाय ॥
 अष्टम पापारंभ निवार । नवमों दशपरिगह परिहार ॥१७४॥
 किंचित ग्राही परम प्रधान । महासुबुधि गुणरत्न निधान ॥
 दशमों पापरहित उपदेश । एकादशम भवनतजवेश ॥१७५॥
 प्राशुक लेय अहार सुजैन । कहिये उदंड विहारी ऐन ॥
 ये एकादश भूप अनूप । आय मिले श्रावकके रूप ॥१७६॥

(१) धर्मध्यान । (२) रौद्रध्यानकी वरछी ।

चैतन सबसों करै जुहार । परम धरम धन धारन हार ॥
निज बल हंस करहि आनंद । परम दयाल महा सुखकंद १७७
दोहा.

इहि विधि चेतन जीतकें, आयो व्रतपुरमाहिं ॥
आज्ञा श्रीजिनदेवकी, नेकु विराधै नाहिं ॥ १७८ ॥
जिहँ जिहँ थानक काजके, कीन्हें सब विधि आय ॥
अब भावै वैराग्यतहँ, सुनहु 'भविक' मन लाय ॥ १७९ ॥
दाल-पंचमहाव्रत मन धरो सुनि प्रानीरे, छांडि
गृहस्थावास आज सुनि प्रानीरे ॥ टेक ॥

तैं मिथ्यात्त्वदशा विपै सुन प्रानीरे, कीन्हें पाप अनेक आज,
सुनि प्रानीरे ॥ भव अनंत जे तैं किये सुनि प्रानीरे, रागद्वेष पर
संग, आज सुनि प्रानीरे ॥ १८० ॥ ज्ञान नेकु तोको नही सुनि०
तव कीने बहु पाप, आज सुनि प्रानीरे ॥ ते दुख तोको देय हैं सुनि०
जो चूको अब दाव, आज सुनि प्रानीरे ॥ १८१ ॥ तैं अव्रतमें
जे किये सुनि० व्रत विना बहु पाप, आज सुनि प्रानीरे ॥ देश
विरतमें पांच जे सुनि० थावरहिंसा लागि आज सुनि प्रानीरे ॥ १८२ ॥
किये कर्म तैं अतिघने सुनि० क्यों भुगते विन जाय, आज सुनि प्रानीरे ॥
मोह महाहितु तैं कियो, सुनि० वह तोको दुख देय आज सुनि प्रानीरे ॥
॥ १८३ ॥ जिहँ जिय मोह निवारियो सुनि० तिहँ पायो आनंद,
आज सुनि प्रा० ॥ मनवच काया योगसों सुनि० तैं कीने बहु
कर्म, आज सुनि प्रानीरे ॥ १८४ ॥ वे भुगते विन क्यों मिटै सुनि०
जे बांधे तैं आप, आज सुनि प्रानीरे ॥ जो तू संयम आदरै सुनि० करै
तपस्या घोर, आज सुनि प्रानीरे १८५ तौ सबकर्म खपायकें सुनि०

पावे परम अनंद आज सुनि प्राणीरे ॥ पूरव बांधे कर्म जो सुनि०
सब छिनमें खप जांहिं, आज सुनि प्राणीरे ॥ १८६ ॥ इहिविधि
भावन भावतै सुनि० आयो अति वैराग, आज सुनि प्रा० ॥ जिय
चाहै संयम गहों सुनि० अवै कोन विधि होय, आज सुनि
प्राणीरे ॥ १८७ ॥

दोहा.

जिय चाहै संयम गहों, मोह लेन नहिं देय ॥

बैठ्यो आगें रोकिकें, अव प्रमत्तपुर जेय ॥ १८८ ॥

सुभट जु प्रत्याख्यान को, करिकें आगें वान ॥

बैठ्यो घाटी रोकिकें, मोह महा अज्ञान ॥ १८९ ॥

केतक चाकर जोर जे, भेजे ब्रतहिं छिपाय ॥

ते चेतनके दलनमें, निशदिन रहैं लुकाय ॥ १९० ॥

कबहूँ परगट होय कछु, कबहूँ वे छिप जाहिं ॥

इहविधि सेना मोहकी, रहै सुइहि दल माहिं ॥ १९१ ॥

चौपाई.

मोह सकल दलसों पुरद्वार । आय अरयो संग ले परवार ॥

चेतन देश विरतपुर माहि । आगें पांव धरे कहुं नाहिं ॥ १९२ ॥

मोह किये परपंच अनेक । गहिवेको गहि बैठ्यो टेक ॥

जो चेतन आवै पुरें माहि । तौ राखों गहिकें निज पाहिं ॥ १९३ ॥

बहुर न निकसन छिन इक देहुं । डारि मिथ्यात्व वैर निज लेहुं ॥

यह चेतन मोसों युध करै । जो आवै अबके कर तरै ॥ १९४ ॥

तौ फिर याको ऐसे करों । सुधि बुधि शक्ति सबहि परिहरों

इहविधि मोह दगाकी बात । रचना करहि अनेक विख्याता ॥ १९५ ॥

(१) सुनिमत्त । (२) छठे गुणस्थानमें । (३) पांचवें गुणस्थानमें । (४) छठे गुणस्थानमें ।

सुमन खबर सब जियको दर्ई । एक बात सुन हो ! प्रभु नई ॥
 मोह रचै फंदा बहु जाल । तुम जिन भूलहु दीन दयाल ॥ १९६ ॥
 अवके जो पकरैगो तोहि । तौ फिर दोष न दीजो मोहि ॥
 मैं सब खबर नाथ तुम दर्ई । जैसी कछु हकीकत भई ॥ १९७ ॥
 तवै हंस इहपुरको पंथ । चल्यो उलंघि महा निर्ग्रथ ॥
 अप्रमत्तपुरकी लइ राह । जिहँ मारग पंथी बहु साह ॥ १९८ ॥
 रोके आय जु प्रत्याख्यान । जुद्ध करे विन देहुं न जान ॥
 चेतन कहै जाहु शठ दूर । छिनमें मारि करुं चकचूर ॥ १९९ ॥
 तवहिं जोर नाना विधिकरै । चेतन सन्मुख हैकें लरै ॥
 चेतन ध्यानधनुष कर लेय । मूर्छित कर आगें पग देय ॥ २०० ॥
 गिरियो जु प्रत्याख्यान कुमार । चेतन पहुँच्यो सप्तम द्वार ॥
 मोह कहै देखहु रे जोर । यह तो किये जातु है भोर ॥ २०१ ॥
 पकरहु सुभट दौरि इह जाहिं । ल्यावहु पकरि बेग मोहि पांहि ॥
 चल्यो धर्मराग बलवीर । विकथा वचन दूसरो धीर ॥ २०२ ॥
 निद्रा विषय कषाय सुपंच । पकरि हंस ले आये घंच ॥
 चेतन देखै यह कहा भई । मोहि पकरि ले आये दर्ई ॥ २०३ ॥
 यह परमत्त देश है सही । मोकों सुमन अगाउ कही ॥
 अब कछु ऐसो कीजे काज । जासों होय अप्रमत्त राज ॥ २०४ ॥
 अट्टाईस मूलगुण धरै । बारह भेद तपस्या करै ॥
 सहै परीसह वीसरु दोय । उभय दया पालै मुनि सोय ॥ २०५ ॥
 इहिविधि लहे अप्रमत्त आय । तवै मोह निज दास पठाय ॥

(१) छठे गुणस्थानको छोड़कर । (२) सातवें गुणस्थानकी राह पकड़ी । (३)

प्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ ये चार कषायें । (४) उपसमरूप करके ।

(५) प्रत्याख्यानावर्णी उपशम होगया । (६) सातवें गुणस्थानमें । (७) गला ।

पकरि भगावै करि बहु मान । तवै हंस चिंतै निज ज्ञान ॥ २०६ ॥

यह तौ मोह करै बहु जोर । मोको रहन न दे उहि ओर ॥

अब याको मैं भिष्टित करों । अप्रमत्तमें तव पग धरों ॥ २०७ ॥

तबहि हंस थिरता अभ्यास । कीन्हीं ध्यान अगनिपरकाश ॥

जारीं शक्ति मोह की कई । महा जोरतें निर्वल भई ॥ २०८ ॥

हंस लयो निजबल परकास । कीन्हों अप्रमत्त पुर वास ॥

सुभट तीन मोहके दरे । अरु परमाद सर्व अप हरे ॥ २०९ ॥

तज्यो अहार विहार विलास । प्रथम करण कीनो अभ्यास ॥

सप्तम पुरके अंत अनूप । करै कर्ण चारित्र्य स्वरूप ॥ २१० ॥

आवै संग मोह दल लेय । पै कछु जोर चलै नहि जेय ॥

अब जिय अष्टम पुर पग धरौ मोह जु संग गुप्त अनुसरै ॥ २११ ॥

करहि करण चेतन इह ठांव । दूजो कह्यो अपूरव नाव ॥

जे कबहुँ न भये परिणाम । ते इहि प्रगटे अष्टम ठाम ॥ २१२ ॥

अब चेतन नवमें पुर आय । जामें थिरता बहुत कहाय ॥

पूरव भाव चलहि जे कहीं । ते इह थानक हालै नहीं ॥ २१३ ॥

इहिविधि करण तीसरो करै । तवै मोह मन चिंता धरै ॥

यह तो जीते सब पुर जाय । मेरो जोर कछु न बसाय ॥ २१४ ॥

दोहा.

मोह सेन सब जोरिकें, कीन्हों एक विचार ॥

परगट भये बनै नहीं, यह मारै निरधार ॥ २१५ ॥

तातैं सुभट लुकाय तुम, रहो पुरनके मांहि ॥

जो कहूँ आवै दावमें, तो तुम तजियो नाहि ॥ २१६ ॥

(१) नरक तिर्यंच और देव आयुको । (२) उपसमित किये । (३) अनिवृत्त करन नामके नवमें गुण स्थानमें ।

हम हू शक्ति छिपायकें, रहैं दूरलों जाय ॥
 जो जीवत बचि हैं कहूं, तौ तुम मिलि हैं आय ॥२१७॥
 नगर ग्राम उपशांत पुर, तहां लों मेरो जोर ॥
 जो ऐहै मो दावमें, तो मैं करिहों भोर ॥ २१८ ॥
 तुम हू सब जन दौरिकें, आय मिलहुगे धाय ॥
 तब या हंसहिं पकरिके, देहैं भली सजाय ॥ २१९ ॥
 इह विचार सब सैनसों, कीन्हों मोह नरेश ॥
 रहे गुप्त दवि दवि सबै, कर कर उपसम भेश ॥२२०॥

चौपाई.

चेतन चर चलाय चहुं ओर । पकरहिं मूढ मोहके चोर ॥
 जन छत्तीस गहे ततकाल । मूर्छित करके चले दयाल ॥ २२१ ॥
 सूक्ष्म सांपरायके देश । आय कियो चेतन परवेश ॥
 तिहैं थानक इक लोभकुमाराजीत कियो मूर्छित तिहैं वारा ॥२२२॥
 आगे पांव निशंकित धरै । अब वैरी मोसों को लरै ॥
 मैं जीते सब कर्म कठोर । इहि विधि धस्यो निशंकित जोर ॥२२३॥
 जब उपशांत मोहके देश । हृद माहिं कीन्हो परवेश ॥
 तवै मोह जोर निज किया । चेतन पकरि उलटि इत दिया ॥२२४॥
 आये सुभट मोहके दौर । मूर्छित छिपे रहे जिहैं ठौर ॥
 पकरि हंस मिथ्यापुर माहिं । ल्याये क्रूर सबहि गहि बाँह ॥२२५॥
 इहां न कछु निहचै यह वात । उत्कृष्टे कहिये विख्यात ॥
 औरहु थानक है बहु जहां । चेतन आय बसत है तहां ॥ २२६ ॥
 उपशम समकित जाको होय । मिथ्यापुर लों आवे सोय ॥
 क्षायक सम्यकवंत कदाच । उपसम श्रेणि चढै जो राच ॥२२७॥

तौ वह चौथे पुरलों आय । गिरकर रहै इहां ठहराय ॥
 औरों धानक उपसम गहै । दोऊ सम्यकवंत जु रहै ॥२२८॥
 अब मिथ्या पुरमें दुख देय । मोह बली चेतनको जेय ॥
 नाना विध संकट अज्ञान । सहै परीपह यह गुणवान ॥२२९॥
 पंच मिथ्यात्व भेद विस्तार । कहत न सुरगुरु पावे पार ॥
 सादि मिथ्यात्व नाश जिय लहै । ताके उदै कौन दुख सहै २३०
 सो दुख जानहिं चेतनराम । कै जाने केवल गुणधाम ॥
 कहत न लहिये पारावार । दुख समुद्र अति अगम अपार २३१
 इहि विधि सहै करमकी मार । अब चेतन निज करै सम्हार ॥
 द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव । पंचहु मिले बन्धो सब दाव २३२
 दोहा.

ध्यान सुथिरता राखि के, मनसों कहै विचार ॥
 संगति इनकी त्यागिके, अब तू थिर हो यार ॥ २३३ ॥
 ढाल—चेत मन भाईरे ॥ एदेशी—

माया मिथ्या अग्र शौच, मन भाईरे, तीनों सत्य निवार, चेत
 मन भाईरे ॥ क्रोधमान माया तजो, मन० लोभ सबै परित्याग,
 चेत मन भाईरे ॥ २३४ ॥ झूठी यह सब संपदा, मन० झूठो
 सब परिवार, चेत मन भाईरे ॥ झूठी काया कारिमी, मन० झू-
 ठो इनसों नेह, चेत मन भाईरे ॥ २३५ ॥ यह छिनमें उपजै मि-
 टै, मन० तू अविनाशी ब्रह्म, चेत मन भाईरे ॥ काल अनंतहि
 दुख दियो; मन० इसही मोह अज्ञान, चेत मन भाईरे ॥ २३६ ॥
 जो तोको सुमरण कहूँ, मन० आवे रंचक मात्र, चेत मन भाई रे ॥
 तो कबहुँ संसारमें, मन० तू न विषय सुख सेव, चेत मन भाई रे ॥ २३८ ॥

(१) कर्मसे जो उत्पन्न होय.

को कहै कथा निगोदकी, मन० ताके दुखको पार, चेतमनभाई रे ॥
 काल अनंत तो तें लहे, मन० दुःख अनंती वार, चेतमनभाई रे ॥३९॥
 देव आयु पुनि तैं धरयो, मन० तामें दुःख अनेक, चेतमनभाई रे ॥
 लोभ महासुख है जहां, मन० प्रगट विरह दुख होय, चेतमनभाई रे ४०
 दुःख महा बहु मानसी मन० देखे अन्य विभूति, चेतमनभाई रे ॥
 तिर्यक् गतिमें तू फिरयो मन० संकट लहे अनेक, चेतमनभाई रे ४१
 अविवेकी कारज किये, मन० बांधे पाप अनेक, चेतमनभाई रे ॥
 नरदेही पाई कहूं, मन० सेये पंच मिथ्यात, चेतमनभाई रे ॥४२॥
 कहूं कारज को तो सरयो, मन० जनम गमायो व्यर्थ, चेतमनभा०
 भ्रमत भ्रमत संसारमें मन० कबहुं न पायो सुख, चेतमनभा० ४३
 अवके जो तोको भई, मन० कछु आतम परतीत, चेतमनभा० ॥
 धारिलेहुं निजसंपदा, मन० दर्शन ज्ञान चरित्र, चेतमनभाई रे २४४
 और सकल भ्रमजाल है, मन० तत्त्व इहै निज काज, चेतमनभा० ॥
 सुख अनंत यामें वसे, मन० निज आतम अवधार, चेतमनभा० ॥४५
 सिद्ध समान सुछंद है, मन० निश्चै दृष्टि निहारि, चेतमनभा० ॥
 इहिविधि आतम संपदा, मन० लहि करि आतमकाज चेतमनभा०
 दोहा.

इहि विधि भाव सुभाव तें, पायो परमानंद ॥

सम्यक दरश सुहावनो, लह्यो सु आतमचंद ॥ २४७ ॥

क्षायक भाव भये प्रगट, महा सुभट बलवंत ॥

कीन्हों जिह छिन एकमें, सुभट सार्तको अंत ॥ २४८ ॥

मोह तवै निर्वल भयो, अवके कछु विपरीत ॥

मेरे सुभट भये शिथल, लागहि उनकी जीत ॥ २४९ ॥

चेतन ध्यान कमान ले, मारे क्षायक वान ॥

मोह मूढ छिपतो फिरै, ज्ञान करै घमसान ॥ २५० ॥

देश विरत पुरमें चढ्यो, चेतन दल परचंड ॥

आज्ञा श्रीजिनदेवकी, पालै सदा अखंड ॥ २५१ ॥

सोरठा.

मोह भयो बलहीन, छिप्यो छिप्यो जित तित रहै ॥

चेतन महा प्रवीन, सावधान है चलत है ॥ २५२ ॥

अप्रमत्तपुरमाहिं, चेतन आयो बिधिसहित ॥

तहां न जोर बसाहिं, मोह मान मिष्टित भयो ॥ २५३ ॥

चेतन करि तहँ ध्यान, सुभट तीनँ औरहि हरे ॥

पुनि चारित्र प्रमान, करै न किये ससम पुरहि ॥ २५४ ॥

दोहा.

तजी अहार विहारविधि, आसन दृढ ठहराय ॥

छिन छिन सुख थिरता बढै, यों बोलै जिनराय ॥ २५५ ॥

अबहिं अपूरबँ करनमें, आयो चेतनराय ॥

कियो करै न दूजो जहाँ, थिरता है अधिकाय ॥ २५६ ॥

नैवमें पुरमें आयकें, तृतीय करन करि लेय ॥

हरिके सुभट छतीसँ तहँ, आगेंकों पग देय ॥ २५७ ॥

आयो दशमें पुरविषै, चेतन महा सचेत ॥

सुभट एक इतहू हरयो, तबै ज्ञान सुधि देत ॥ २५८ ॥

(१) सातवें गुणस्थानमें । (२) नरक, तिर्यंच देव आयु । (३) अधःप्रवर्तकरण प्रारंभ किया । (४) आठवें गुणस्थानमें । (५) दूजा अपूर्वकरण प्रारंभ किया । (६) नवमें अनिव्रतकरणनामक गुणस्थानमें तीसरा करन प्रारंभ किया । (७) दर्शनावरणीकी २ मोहिनीकी ४ नामकर्मकी ३० इसप्रकार छत्तीस प्रकृतियों । (८) सूक्ष्म लोभ ।

सावधान है नाथजी, रहियो तुम इह ठौर ॥

इहां मोहको जोर है, तुम जिन जानहु और ॥ २५९ ॥

पहिले हानि जो तुम लही, सो थानक इह आहि ॥

तातैं में विनती करों, प्रभू भूल जिन जाहि ॥ २६० ॥

तव चेतन कहै ज्ञान सुनि, अब यह पंथ न लेहिं ॥

चलहिं उलंघि उतावले, आगे धोंसा देहिं ॥ २६१ ॥

कहे बहुत संक्षेपसों, इहविधि ये गुणथान ॥

पूरव वरनन विधि सबैं, समझि लेहु गुणवान ॥ २६२ ॥

जो फिरकें वरनन करैं, हैं पुनरुक्ति प्रदोष ॥

तातैं थोरेमें कह्यो, महा गुणनिके कोष ॥ २६३ ॥

पद्धरिच्छंद.

जहँ चेतन करि सब करम छीन । उपशांत मोहपुर उलंघि लीन ।

आयो द्वादशमहि महमहंत । सब मोह कर्म छय करिय अंत ॥

जहँ यथाख्यात प्रगट्यो अनूप । सुखमय सब वेदै निजस्वरूप ।

जहँ अवधि ज्ञान पूरन प्रकास । केवल पुनि आयो निकट भास ॥

सो छीनमोहें पुर प्रगट नाम । तिहि थानक बिलसैं निजसुधाम ।

अब अंतराय कहुं करिय अंत । पौडेश सब प्रकृति खपाय तंत ६६

जहँ धातिया चारों कर्म नाश । सब लोकालोक प्रत्यक्ष भास ॥

प्रगट्यो प्रभु केवल अतिप्रकाश । जहँ गुण अनंत कीन्हों निवास ६७

प्रगटी निज संपति सब प्रतच्छ । विनशी कुलकर्म अज्ञान अच्छ ।

प्रगट्यो जहँ ज्ञान अनंत ऐन । प्रगट्यो पुनि दरश अनंत नैन ६८

(१) ग्यारहवाँ गुणस्थान. (२) क्षीणमोह बारहवें गुणस्थानमें (३) यथाख्यातचारित्र.

(४) बारहवाँ गुणस्थान. (५) ज्ञानावर्णकी ५ दर्शनवर्णकी ४ वशकीति १ ऊंच गोत्र १ व अंतराय ५ इसप्रकार १६ प्रकृति.

प्रगल्भो तहँ वीर्य अनंत जोरि । प्रगल्भो सुख शक्ति अनंत फोरि ॥
 तहँ दोष अठारह गये भाज । प्रभु लागे करन त्रिलोकराज ६९
 सब इन्द्र आय सेवहिं त्रिकाल । प्रभु जय जय जय जीवन दयाल ॥
 तहँ करत अष्टप्रतिहार्य देव । विधि भावसहित नित भविक सेव ॥
 प्रभु देत महा उपदेश ऐन । जिहँ सुनत लहत भवि परम चैन
 जहँ जनम जरा दुख नाश होय । प्रभु विद्यादेश बताय सोय ॥७१॥
 इह विधि सयोगपुर राज योग । प्रभु करत अनंत विलास भोग ॥
 तोष करम चार नहिं तजहिं संग । लगरहे पूर्व तिथिवंध अंग ॥७२॥
 प्रभु शुक्लध्यान आरूढ होय । अँतरीक्ष विराजहिं गगन सोय ॥
 तहँ आसन दृढ ठहराय एक । पद्मासन कायोत्सर्ग टेक ॥७३॥
 प्रभु डग नहिं भरहिं कदाच भूम । तऊ कर्म करत है कौन धूम ॥
 लिये लिये फिरत तिहुँ लोक माहिं । जिहँ थानक पूरव बंध आहिं ॥
 कहूँ राखहिं थिर कहूँ लै चलंत । कहूँ वानि खिरै कहूँ मौन वंत ।
 कहूँ समवशरण कहूँ कुटी होय । कहूँ चौदहराजु प्रमान लोय ॥७५॥
 इह विधि ये कर्म करंत जोर । नहिं जान देत शिववधू ओर ॥
 एतेपै निर्बल कहे बखान । मनु जरी जेवरीकी समान ॥७६॥
 तोष समय समयमें आय आय । चेतन परदेशन थित बधाय ॥
 यह एक समयमें करत त्याग । थिर होन देत नहिं दुतिय लाग ॥
 तऊ सुभट पचासी लगि रहंत । निजनिज थानक निजबल करंत ॥
 चेतन परदेश न घात होय । तातैं जगपूज्य जिनेश होय ॥७८॥

दोहा.

चेतन राय सयोगपुर, इह विधि विलसहिं राज ॥

अब चहुँ कर्मन हरनको, ठानहि एक इलाज ॥२७९॥

(१) तेरहवें गुणस्थानमें.

श्री सयोगपुर देशमें, चेतन करि परवेश ॥

लाग्यो हरण सुकर्मको, तजिके जोगकलेश ॥ २८० ॥

तब सुवेदनी कर्मने, दीनों रस निज आय ॥

दुहुमें एक भई प्रगट, जानहिं श्रीजिनराय ॥ २८१ ॥

हंस पयानो जगततैं, कीनो लघुथितिमांहि ॥

हरिके चारहिं कर्मको, सूधे शिवपुर जाहिं ॥ २८२ ॥

तहँ अनंत सुख शास्यते, विलसहिं चेतनराय ॥

निराकार निर्मल भयो, त्रिभुवन मुकुट कहाय ॥ २८३ ॥

चाँपई.

अविचल धाम वसे शिव भूप । अष्टगुणात्म सिद्ध स्वरूप ॥

चरमदेह परमित परदेश । किंचित ऊनो थित विनभेश ॥

पुरुपाकार निरंजन नाम । काल अनंतहि ध्रुव विश्राम ॥

भव कदाच न कबहू होय । सुख अनंत विलसै नित सोय ॥

लोकालोक प्रगट सब वेद । पट द्रव्य गुण पर्याय सुभेद ॥

ज्ञेयाकार सकल प्रतिभास । सहजहिं स्वच्छ ज्ञानजिहँ पास ॥

पद्गुणी हानि वृद्धि परनमैं । चेतन शुद्ध स्वभावहि रमैं ॥

उत्पत व्यय ध्रुव लक्षण जास । इहविधि थिते सबै शिवरास ८७ ॥

जगत जीत जिहि विरुद प्रमान । पायो शिवगढ रतननिधान ॥

गुण अनंत कहिये कत नाम । इहविध तिष्ठहि आत्मराम ८८ ॥

जिनप्रतिमा जगमें जहँ होय । सिद्ध निसानी देखहु सोय ॥

सिद्ध समान निहारहु आप । जातैं मिटहि सकल संताप ८९ ॥

निश्चय दृष्टि देख घटमांहि । सिद्ध रूतोमहिं अन्तर नाहिं ॥

ये सब कर्म हाँय जड़ अंग । तू 'भैया' चेतन सर्वंग ९० ॥

ज्ञान दरश चारित भंडार । तू शिवनायक तू शिवसार ॥
तू सब कर्मजीत शिव होय । तेरी महिमा वरनें कोय ॥ २९१ ॥

दोहा.

गुण अनंत या हंसके, किंहविधि कहैं बखान ॥
थोरेमें कछु वरनये, 'भक्तिक' लेहु पहिचान ॥ २९२ ॥
यह जिनवानी उदधिसम, कविमति अंजुलि मात्र ॥
तेती ही कछु संग्रही, जेतो हो निज पात्र ॥ २९३ ॥
जिनवानी जिहँ जिय लखी, आनी निजघटमाहिं ॥
तिहँ प्रानी शिवसुख लह्यो, यामें धोखो नाहिं ॥ २९४ ॥
चेतन अरु यह कर्मको, कह्यो चरित्र प्रकाश ॥
सुनत परम सुख पाइये, कहै भगवतीदास ॥ २९५ ॥
सत्रहसौ छत्तीसकी, जेष्ठ सप्तमी आदि ॥
श्रीगुरुवार सुहावनो, रचना कही अनादि ॥ २९६ ॥

इति चेतनकर्मचरित्र समाप्तः ।

अथ अक्षरवत्तीसिका लिख्यते ॥

दोहा.

गुण अपार ओंकारके, पार न पावै कोय ॥
सो सब अक्षर आदि ध्रुव, नमैं ताहि सिधि होय ॥ १ ॥

चौपाई.

कका कहै करन वश कीजे । कनक कामिनी दृष्टि न दीजे ॥
करिके ध्यान निरंजन गहिये । केवलपदइहविधिसों लहिये ॥ २ ॥

(१) इन्द्रियोंको ।

(२) कर्मरहित आत्मस्वरूपको ।

खक्खा कहै खबर सुनि जीवा । खबरदार है रहो सदीवा ॥
 खोटे फंद रचे अरिजाला । छिन इक जिनभूलहु वहख्याला ३
 गग्गा कहै ज्ञान अरु ध्याना । गहिकें थिर हूजे भगवाना ॥
 गुण अनंत प्रगटहिं ततकाला । गरिके जाहिं मिथ्यातम जाला ॥४॥
 घग्घा कहै स्वघर पहिचानों । घने दिवस भये फिरत अजानों ॥
 घर अपने आवो गुणवंता । घने कर्मको ज्यों हैं अंता ॥ ५ ॥
 नन्ना कहै नैनसों लखिये । नयनिहचै व्यवहार परखिये ॥
 निजके गुण निजमें गहि लीजे । निरविकल्प आतमरस पीजे ॥६॥
 चच्चा कहै चरचि गुण गहिये । चिन्मूरति शिवसम उर लहिये ॥
 चंचल मन थिर करधरि ध्याना । सीखसुगुरुसुन चेतन स्याना ७
 छच्छा कहै छांडि जगजाला । छहों काय जीवनप्रतिपाला ॥
 छांड अज्ञान भावको संगी । छकि अपने गुण लखि सर्वंगा ॥८॥

चौपाई १५ मात्रा.

जज्जा कहै मिथ्यामति जीत । जैनधरमकी गहु परतीत ॥
 जिहिसों जीव लगै निजकाज । जगत उलंघि होय शिवराजा ॥९॥
 झंझा कहै झूठ पर वीर ! । झूटे चेतन साहस धीर ॥
 झूठो है यह करम शरीर । झालि रहे मृगतृष्णानीर ॥१०॥
 नन्ना कहै निरंजन नैन । निश्चै शुद्ध विराजत ऐन ॥
 निज तजकें परमें नहिं जाय । निरावरण वेदहु जिनराय ॥११॥
 टट्टा कहै टेव निज गहो । टिककें थिर अनुभव पद लहो ॥
 टिकन न दीजे अरिके भाव । टुकटुकसुखको यही उपाव ॥१२॥

चौपाई १६ मात्रा.

ठठ्ठा कहै आठ ठग पाये । ठगत ठगत अवकैं कर आये ॥
 ठगको त्याग जलांजलि दीजे । ठाकुर हैकें तव सुखलीजे ॥१३॥

डड्डा कहै डंक विष जैसो । डसै भुजंग मोहविष तैसो ॥
 डारयो विष गुरु मंत्र सुनायो । डर सब त्याग मान समुझायो ॥ १४ ॥
 ढड्डा कहै ढील नहिं कीजे । ढूँढ ढूँढ चेतन गुण लीजे ॥
 ढिग तेरे है ज्ञान अनंता । ढकै मिथ्यात्व ताहि करि अंता ॥ १५ ॥
 दोहा.

नन्ना अक्षर जे लखो, तेई अक्षर नैन ॥
 जे अक्षर देखै नहीं, तेई नैन अनैन ॥ १६ ॥

चौपाई १५ मात्रा.

तत्ता कहै तत्त्व निज काज । ताको गहे होय शिवराज ॥
 ताको अनुभौ कीजे हंस । तावेदतहै तिमिर विध्वंस ॥ १७ ॥
 थत्था कहै इन्द्रिनको भूप । थंभन मन कीजे चिद्रूप ॥
 थाकहिं सकल कर्मके संग । थिरतासुख तहँ होय अभंग ॥ १८ ॥
 ददा कहै परगुणको दान । दीने थिरता लहो निधान ॥
 दया वहै सुदया जहँ होय । दया शिरोमणि कहिये सोय ॥ १९ ॥
 धद्धा कहै धरमको ध्यान । धरि चेतन ! चेतनगुण ज्ञान ॥
 धवल परमपद प्रापति होय । ध्रुवज्यों अटलटलै नहि सोय ॥ २० ॥
 नन्ना नव तत्त्वनसों भिन्न । नितप्रति रहै ज्ञानके चिन्न ॥
 निशदिन ताके गुण अवधारि । निर्मल होय करमअघटारि ॥ २१ ॥
 पप्पा कहै परमपद इष्ट । परख गहो चेतन निज दिष्ट ॥
 प्रतिभासहि सब लोकालोक । पूरण होय सकलसुख थोक ॥ २२ ॥
 फफ्फा कहै फिरहु कित हंस । फिर फिर मिलै न नरभव वंस ॥
 फंद सकल अरिके चकचूरि । फोरि शक्ति निज आनंद पूरि ॥ २३ ॥
 बब्बा कहै ब्रह्म सुनि बीर । बर विचित्र तुम परम गंभीर ॥

बोध बीज लहिये अभिराम । विधिसों कीजे आतमकाम ॥ २४ ॥
 भव्वा कहै भरमके संग । भूलि रहे चेतन सर्वग ॥
 भाव अज्ञाननको कर दूर । भेदज्ञानतें परदल चूर ॥ २५ ॥
 मग्गा कहै मोहकी चाल । मेदि सकल यह परजंजाल ॥
 मानहु सदा जिनेश्वरवन । मीठे मनहु सुधातें ऐन ॥ २६ ॥
 जज्जा कहै जैनवृष गहो । ज्यों चेतन पंचमि गति लहो ॥
 जानहु सकल आप परभेद । जिहँजानें हैं कर्म निखेद ॥ २७ ॥
 ररा कहै राम सुनि वैन । रमि अपने गुन तज परसन ॥
 रिद्ध सिद्ध प्रगटहि ततकाल । रतन तीन लख होहु निहाल ॥ २८ ॥
 लल्ला कहै लखहु निजरूप । लोकअग्र सम ब्रह्मस्वरूप ॥
 लीन होहु वह पद अवधारि । लोभकरन परतीत निवारि ॥ २९ ॥

सोरठा.

वज्वा बोले वैन, सुनो सुनोरे निपुण नर ॥
 कहा करत भव सैन, ऐसो नरभव पाय के ॥ ३० ॥

दोहा.

शिक्षा शिक्षा देत है, सुन हो चेतन राम ॥
 सकल परिग्रह त्यागिये, सारो आतम काम ॥ ३१ ॥
 खक्खा खोटी देह यह, खिणक माहि खिर जाय ॥
 खरी सुआतम संपदा, खिरै न थिर दरसाय ॥ ३२ ॥
 सस्सा सजि अपने दलहि, शिवपथ करहु विहार ॥
 होय सकल सुख सास्त्रते, सत्यमेव निरधार ॥ ३३ ॥
 हहा कहै हित सीख यह, हंस बन्यों है दाव ॥
 हरिलैं छिनमें कर्मको, होय बैठि शिवराव ॥ ३४ ॥

क्षक्ष क्षायकपंथ चढि, क्षय कीजे सब कर्म ॥

क्षण इकमें वसिये तहां, क्षेत्र सिद्धि सुख धर्म ॥ ३५ ॥

यह अक्षर वत्तीसिका, रची भगवती दास ॥

बाल ख्याल कीनो कह्य, लहि आतमपरकाश ॥ ३६ ॥

इति अक्षर वत्तीसिका.

अथ श्रीजिनपूजाष्टकं लिख्यते ॥

दोहा.

जल चंदन अरु सुमन लै, अक्षत शुचि नैवेद ॥

दीप धूप फल अर्घ विधि, जिनपूजा वसुभेद ॥ १ ॥

जलपूजा—कवित्त.

नीर क्षीरसागरको निर्मल पवित्र अति, सुंदर सुवास भरयो-
सुरपै अनाइये । गंगकी तरंगनके स्वच्छ सुमनोज्ञ जल, कंचन
कलश बेग भरकें मगाइये ॥ और हू विशुद्ध अंबु आनिये उछा-
हसेती, जानिये विवेक जिन चरन चढाइये । भौदुख समुद्रजल
अंजुलिको दीजे इहां, तीन लोक नाथकी हजूर ठहराइये ॥ २ ॥

चंदन पूजा.

परम सुशीतल सुवास भरपूर भरयो, अतिही पवित्र सब
दूषन दहतु है । महावनराजनके वृक्षन सुगंध करै, संगतिके
गुण यह विरद बहतु है ॥ वावन जुचंदन सुपावन करन जग,
चढै जिनचर्ण गुण ताहीतें लहतु है । मोहदुखदाहके निवारिवेको
महा हिम, चंदनतैं पूजौ जिन चित्त यों कहतु है ॥ ३ ॥

अक्षतपूजा.

शशिकीसी किर्ण कैधों रूपाचलवर्ण कैधों, मेरुतट किर्ण

(१) क्षपकश्रेणी मांद.

कैधों फटिकप्रमाने हैं ॥ दूधकेसे फैन कैधों चित्तामणि रेणु कैधों,
मुक्ताफल ऐन कैधों, हीरा हेरि आने हैं ॥ ऐसे अति उज्ज्वल है
तंदुल पवित्र पुंज, पूजत जिनेश पाद पातक पराने हैं । अच्छे
गुण प्रापति प्रकाशतेज पुंज होय, अच्छे जिन देखे अच्छ इच्छते
अघाने हैं ॥ ४ ॥

पुष्पपूजा.

जगतके जीव जिन्हें जीतके गुमानी भयो, ऐसो कामदेव एक
जोधा जो कहायो है । ताके शर जानियत फलनिके वृंद बहु,
केतकी कमल कुंद केवरा सुहायो है ॥ मालती सुगंध चारु बेलिकी
अनेक जाति, चंपक गुलाब जिनचरण चढायो है । तेरी ही
शरण जिन जोर न वसाय याको, सुमनसों पूजे तोहि मोहि
ऐसो भायो है ॥ ५ ॥

नैवेद्यपूजा.

परम पुनीत जान मेवनके पुंज आन, तिन्हें पुनि पहिचान
जिनयोग्य जानिये । अन्न ओ विशुद्ध तोय ताको पकवान होय,
कहिये नैवेद्य सोई शुद्ध देख आनिये ॥ पूजत जिनन्द्रपाय पातक-
पराने जाय, मोक्षलच्छि ठहराय सत्य यों बखानिये । क्षुधाको न
दोष होय ज्ञानतनपोष होय, परम संतोष होय ऐसी विधि
ठानिये ॥ ६ ॥

दीपकपूजा.

दीपक अनाये चहुं गतिमै न आवे कहूं, वर्तिका बनाये कर्म-
वर्ति न बनत है । धृतकी सनिग्धतासों मोहकी सनिग्ध जाय,
ज्योतिके जगाये जगाजोतिमें सनत है ॥ आरती उतारतें आरत

सब जाय टर, पांय ढिग धरे पाप पंकति हनत है । वीतराग देव
जूकी सेव कीजे दीपकसों, दीपत प्रताप शिवगामी यों भनत है॥७॥

धूपपूजा.

परम पवित्र हेम आनिये अधिक प्रेम, जाति धूपदान जिमि
शुद्ध निपजाइकैं । वहि जे विशुद्ध बनी तेज पुंज महाघनी,
मानो धरी रत्न कनी ऐसी छवि पाइकैं ॥ तामें कृष्णागरुकी जु-
कनिकाहू खेव कीजे, वहै कर्मकाठनिके पुंजगहि ताइकैं । पूजिये
जिनेन्द्र पांय धूपके विधान सेती, तीनलोकमाहिं जो सुवास वा-
स छायकैं ॥ ८ ॥

फलपूजा.

श्रीफल सुपारी सेव दाड़िम वदाम नेव, सीताफल संगतरा
शुद्धसदा फल है । विही नासपाती ओ विजोरा आम अमृतसे,
नारंगी जँभीरी कर्ण फल जे कमल है ॥ ऐसे फल शुद्ध आनि
पूजिये जिनंद जान, तिहूँ लोकमधि महा सुकृतको थल है । फ-
ल सेती पूजे शुद्ध मोक्षफल प्राप्ति होय, द्रव्य भाव सेये सुखसं-
पति अचल है ॥ ९ ॥

अर्घविधिपूजा.

जल सुविशुद्ध आन चंदन पवित्र जान, सुमन सुगंध ठान.
अक्षत अनूप है । निरखि नैवेद्यके विशेष भेद जान सब, दीपक
सँवारि शुद्ध और गंध धूप है ॥ फल ले विशेष भाय पूजिये जि-
नंद पाय, वसु भेद ठहराय अरथ स्वरूप है । कमल कलंक पंक
हरिके भयो अटंक, सेवक जिनंद 'भैया' होत शिव भूप है॥१०॥
दोहा.

शुचि करेकें निज अंगको; पूजहु श्रीजिन पाय ॥

दर्वित भावतविधि सहित, करहु भक्ति मन लाय ॥ ११ ॥

जिन पूजाके भेद बहु, यहविधि अष्टप्रकार ॥

प्रतिपूजा जल धारसों, दीजे अर्घ सुधार ॥ १२ ॥

इति श्रीजिनपूजाष्टक.

अथ फुटकर कविता मात्रिक कवित्त.

प्रथम अशोक फूलकी वर्षा, वानी खिरहि परम सुख कार ।

चामर छत्र सिंहासन शोभित, भामंडलद्युति दिपै अपार ॥

दुंदुभि नाद वज्रत आकाशहिं, तीन भवनमें महिमा सार ।

समवशरण जिन देव सेवको, ये उत्तकृष्ट अष्टप्रतिहार ॥ १३ ॥

सवैया सुन्दरी.

काहेको देशदिशांतर धावत, काहे रिझावत इंद नरिंद ।

काहेको देवि औ देव मनावत, काहेको शीस नवावत चंद ॥

काहेको सूरजसों कर जोरत, काहे निहोरत मूढमुनिंद ।

काहेको शोच करै दिनरैन तूं, सेवत क्यों नहि पार्श्वजिनंद ॥ १४ ॥

वीतरागकी स्तुति छप्पय.

देव एक जिनचंद नाव, त्रिभुवन जस जपै ।

देव एक जिनचंद, दरश जिहँ पातक कपै ॥

देव एक जिनचंद, सर्व जीवन सुखदायक ।

देव एक जिनचंद, प्रगट कहिये शिवनायक ॥

देव एक त्रिभुवन मुकुट, तास चरण नित वंदिये ॥

गुण अनंत प्रगटहि तुरत, रिद्धिवृद्धि चिरनंदिये ॥ १५ ॥

कवित्त.

आतमा अनूपम है दीसै राग द्वेष विना, देखो भविजीवो !
तुम आपमें निहारकें । कर्मको न अंश कोऊ भर्मको न वंश को-

ऊ, जाकी शुद्धताईमें न और आप टारकें ॥ जैसो शिवखेत वसै
तैसो ब्रह्म यहां लसै, यहां वहां फेर नाही देखिये विचारकें । जोई
गुण सिद्धमाहिं सोई गुण ब्रह्ममांहि, सिद्धब्रह्म फेर नाहिं निश्चै-
निरधारकें ॥ १६ ॥

प्रश्नोत्तरदोहा.

कोन ज्ञान विन आवरन, कौन देव विनराग ॥
कौन साधु निर्ग्रन्थ है, कौन ब्रती जिहँ त्याग ॥ १७ ॥

एकाक्षरी दोहा.

नानी नानी नानमें, नानी नानी नान ॥
नन नानी नन नाननै, नन नैनानन नान ॥ १८ ॥

द्व्यक्षरी दोहा.

मानन मानों मानमें, मान मान मै मान ॥
मनु ना मानै मानमें, मान मानुमें मान ॥ १९ ॥

त्र्यक्षरी दोहा.

चेतन चेतो चेतना, तो चेते चित चैन ॥
तातें चेतन चेत तू, चेतनता नित नैन ॥ २० ॥

चतुरक्षरी दोहा.

अध्यातममें आतमा, मम अध्यातम धाम ॥
आतम अध्यातम मतै, धू मम आतम ताम ॥ २१ ॥

अथ वर्त्तमानचतुर्विंशति जिनस्तुति लिख्यते ।

श्रीआदिनाथजिनस्तुति छप्पय.

आदिनाथ अरहंत, नाभिराजा कुलमंडन ।

नगर अयोध्या जनम, सर्व मिथ्यामति खंडन ॥

केवल दर्शन शुद्ध, वृषभ लक्षण तन सोहै ।
धनुष पांच सौ देह, इन्द्र शतके मन मोहै ॥
मरुदेवि मात नंदन सुजिन, तिहूंलोक तारनतरन ।
मनभाव धारि इक चित्तसों, भव्यजीव बंदत चरन ॥१॥

श्रीअजितजिनस्तुति. मात्रिक कवित्त.

जितशत्रुसुत विजयानंदन, गजलच्छन तेरै अभिराम ।
अष्टमहा मद सब जिनजीते, नगरअजोध्या तज धन धाम॥
केवल ज्ञान किये नर केते, पंचमि गति पहुंचे शुभ ठाम ।
ऐसे अजित नाथ तीर्थकर, तिनको नित कीजे परनाम ॥२॥

श्रीसंभवजिनस्तुति-मात्रिक कवित्त.

संभवनाथ सकल सुखदायक, सावस्ती नगरी अवतार ।
राय जथारथ सेना जननी, केवल दर्शन रूप अपार ॥
हय लच्छनतनस्वामी शोभत, अरि सब जीततरे निरधार ।
भव्यजीव परणाम करत है, हे प्रभु भवदधिपार उतार ॥३॥

श्रीअभिनंदनजिनस्तुति.

अभिनंदन चंदनसों पूजों, समरस राजाकुल अवतार ।
नगर अजोध्या जन्म लियो जिन, कपिलच्छन जगमें विस्तार
सिद्धारथ माता कुलमंडन, पापविहंडन परम उदार ।
तातैं जगत जीव नित बंदत, भवसागर प्रभु पार उतार ॥४॥

श्रीसुमतिजिनस्तुति.

सुमति नाथ सुमरे सुखसंपत, दुख दरिद्र दूर सबजाय ।
नगरसुकोशल जन्मलियो जिन, पिता मेघ अरु मंगला माय॥
चल अनंत भगवंत विराजै, लच्छन कोक नित सेवै पाय ।
मनवचभाव नित्य भवि वंदै, श्रीजिन चर्णन शीस नवाय ॥५॥

श्रीपद्मप्रभजिनस्तुति.

पद्मप्रभ धरराजानंदन, मात सुसीमा जगतजगीस ।
कोसंबी नगरी जिन जन्मे, इन्द्रादिक प्रणमहि निशदीस ॥
लच्छन कमल विराजै प्रभुकै, शोभत तहँ अतिशय चौतीस।
चरणकमल प्रभुके नित वंदै, भव्यत्रिकाल नाय निजशीस ॥६॥

श्रीसुपार्श्वजिनस्तुति.

श्री सुपास जिन आश जु पूरै, सेवहु नित भविजन चरन ।
पयड्वराजा सीव सुलच्छन, पोहमिकुश प्रभु अवतरन ॥
केवल वयन देशना देते, भविजनमन अम्रत झरन ।
नगर बनारसि नित जन वंदै, भव्य जीव सब तुम शरन ॥७॥

श्रीचन्द्रप्रभजिनस्तुति.

चन्द्रप्रभ चंदेरी उपजे, मंगला मात पिता महंसेन ।
शशिलच्छन सेवै चरनादिक, समकित शुद्धदेत तिहँ ऐन ॥
लोकालोक प्रगट घट अंतर, वानि खिरै अम्रत मुख जैन ।
ताके चरण भव्य नितवंदित, अविचलरिद्ध देत प्रभु चैन ॥८॥

श्रीसुविधिजिनस्तुति.

सेवहु सुविधि नाथ तीर्थकर, जसु सुमरे सुखसंपति होय ।
काकंदी नगरी जिन उपजे, मगर लछ प्रभुके तन जोय ॥
रामा मात जगत सब जाने, अरिकुल व्याप सकै नहिं कोय ।
अदनीपति सुग्रीव कहावत, ताके सुत वंदत तिहुं लोय ॥९॥

श्रीशीतलजिनस्तुति—कवित्त.

कंचन वरन तन रंचन डिगत मन, तिहुंलोक नाथ जिन
इन्द्रमुख भासई। नंदाजूकी कूख धन दढरथ राजा तन, अष्टकुल

(१) सेही । (२) "जितसेन" ऐसा भी पाठ है।

मदहन, ज्ञानको प्रकाशई ॥ लच्छन श्रीवृच्छपाव शीतल श्री-
नाथ नाव, भदल जिनंद गांव रवि ज्यों उजासई । देशना सुदेह
सार होंहि तहाँ जैजैकार, भव्यलोक पावे पार मिथ्याको वि-
नाशई ॥ १० ॥

श्रीश्रेयांसजिनस्तुतिमात्रिक कवित्त.

श्रीपुर नगर जगत सब जानै, विघ्नराय विसनार्के नंद ।
समवशरनमधि जिनवर शोभत, मोहत है नृपके कुलवृंद ॥
लच्छन खग सेवै चरणादिक, तीर्थकर श्रेयांस जिनंद ।
तिनके चरणन चित्तलायकें, वंदत हैं नित इंदनरिंद ॥ ११ ॥

श्रीवासुपूज्यजिनस्तुति.

श्रीवासुपूज्य चंपा नगरी पति, महिपी लच्छ मही सब जानै ।
वासुपूज राजाकुल मंडन, जायासुत सब जगत बखानै ॥
सुरपति आय सीस नित नावे, प्रभुसेवा निजमनमें आनै ।
सम्यकदृष्टि नितप्रति सेवहिं, जिनके वचन अखंडित मानै ॥ १२ ॥

श्रीविमलजिनस्तुति—छप्पय.

विमलनाथ इकदेव, सिद्धसम आप विराजै ।
त्रिभुवनमाहिं जिनंद, जासु धुनि अंबरगाजै ॥
कंपिलपुर जिन जन्म, शुक्र लच्छन महि मानै ।
सुरपति सेवहिं पांय, जगत्रयमाझ बखानै ॥
कृतवर्म भूप स्यामाजननि, केवलज्ञान दिवाकरन ।
तस चरन कमल वंदत 'भविक' जयजिनवर तारनतरन ॥ १३ ॥

श्रीअनन्तजिनस्तुति—मात्रिक कवित्त.

अनंत नाथ सीचाना लच्छन, सुजसा मात कहै सब कोय ।

पिता जास श्रीसैन नरेश्वर, नगर अजोध्या जन्म सोय ॥
गुण अनंत बलरूप विराजै, सिद्धभये अरिके कुल खोय ।
भावसहित भविप्रानी वंदत, हे प्रभु शिवपद हमको होय ॥१४॥

श्रीधर्मजिनस्तुति.

लच्छन बज्र रतनपुर उपजे, धर्मनाथ तीर्थकर धीर ।
भानुमहीपतिके कुलमंडन, सुवृता मात बडे बलवीर ॥
समवशरनमें देशना देते, प्रभुधुनि जिम सागर गंभीर ।
चरन सदा भवि प्रानी वंदत, जैजै जिनवर चरमशरीर ॥ १५ ॥

श्रीशान्तिजिनस्तुति—सिंहावलोकन छप्पय.

जिनवर ताराचंद, चंदतारा नित वंदे ।
वंदै सुरनर कोटि कोटि, सुरवंद अनंदे ॥
आनंद मगन जु आप, आप हस्तिनपुर आये ।
आये शांति जिनदेव, देव सबही सुख पाये ॥
पाये सुमात ऐरारतन, तन कंचन विश्वसेन गिन ।
गिन सु कोष गुणको वन्यो, वन्यो सुतारन तरन जिन ॥१६॥

श्रीकुंथुजिनस्तुति. मात्रिक कवित्त.

पदमासन भगवंत विराजहिं, केवल वयन देशना देहिं ।
गजपुर नगर सूरसिंह भूपति, ताके नंद अभयपद देहिं ॥
कुंथुनाथ तीर्थकर जगमें, सब प्रानिनको आनंद देहिं ।
जस श्रीवत्सक लच्छन सो है, भव्य त्रिकालहि वंदन देहि ॥१७॥

श्रीअरःजिनस्तुति.

नंदावर्त्त सुलच्छन सोहै, सुरपति सेव करै नित आय ।
संघ चतुर्विध देशना सुनते, वैरभाव नहिं रहै सुभाय ॥

अर्जुनमात मही सब जानै, पिता जामु हैदक्षिण राय ।

श्रीअरनाथ नगर गजपुरवर, वंदे भव्य जिनेश्वर पाय ॥ १८ ॥

श्रीमल्लिजिनस्तुति.

मल्लिनाथ मिथुलानगरीपति, अद्भुत रूप जिनेन्द्र विराजै ।

कुंभराय परभाषति जननी, लच्छन कलश चरण सो छाजै ॥

सुरपति आय शीश नित नावै, कंचन कमल धरें प्रभु काजै ।

समोदरण गह गह जिनेसुर, वानी सुन मिथ्यातम भाजै ॥ १९ ॥

श्रीमुनिमुव्रतजिनस्तुति-सिंहावलोकन छप्पय.

मुनिमुव्रत जिन नाव, नाव त्रिभुवन जस जंपै ।

जंपै सुरनर जाप, जाप जपि पाप जु कंषै ॥

कंषै अरिक्कुल रीति, रीति जिन नीति प्रकासै ।

परकाशै घट सुमति, सुमति राजग्रह वासै ॥

वासै जिनवर सिद्ध चित, चितवत कूरम चरण तन ।

तन पदमावति पूजजिन, जिनसेवक वंदै सुमुनि ॥ २० ॥

श्रीनमिजिनस्तुति-मात्रिक कवित्त.

नम्यनाथ नीलोत्पललच्छन, मिथुलानाथ नगर परमिद्ध ।

विजय राय परभावति जननी, मुमिरे पावै अविचलरिद्ध ।

केवल ज्ञान जिनेश्वर बंदत, होत सदा समकितकी वृद्धि ।

भावसहित जो जिनको पूजै, तिन घरहोय सदानवनिद्धि ॥ २१ ॥

श्रीनेमिजिनस्तुति कवित्त.

नेमिनाथ नाथ नेमि काहूसों न राखै प्रेम, मनवच सदा एम

रहै दशा जोगकी । समुद्रके सुत धीर सिंधुज्यों गंभीर वीर, सं-

ख रहै चर्ण तीर लिप्सा नाही भोगकी ॥ सारिपुर शिवामाय ज-

ग जिननाथ राय नीलरत्न जामु काय, लखै वात लोगकी । अनं-

त बलधारी है सो सदा ब्रह्मचारी है, ऐसे जिन वंदत रहै न दशा
रोगकी ॥ २२ ॥

श्रीपार्श्वनाथजिनस्तुति छप्पय.

अमृत जिनमुख झरै, द्वार सुरदुंदुभि बाजै ।
सेवहिं सुरनर इंद्र, नाग फन शीश विराजै ॥
नगर बनारसि नाम, तात अससेन कहिजे ।
वामा मात विख्यात, जगत जिन पूजा किजे ॥
सुअनंत ज्ञान बल रूपधर, आप जगत तर सिद्धहुव ।
वंदै सुभव्य नर लोकके, जय जय पास जिनंद तुव ॥ २३ ॥

श्रीवीरजिनस्तुति.

जिनवर श्रीमहावीर, इन्द्र सेवा नित सारहिं ।
सुरनर किन्नर देव तेहु, मिथ्या मत टारहिं ॥
क्षत्रिय कुल जिन जन्म, राय सिद्धारथ नंदन ।
त्रिशला उर अवतार, सिंह पद पाप निकंदन ॥
विधिचार संघ सुन देशना, केवल वचन विशाल अति ।
जिनप्रभु वंदत सम भावधर, जय जय दीनदयाल मति ॥ २४ ॥

दोहा.

जिन चौबीसी जगतमें, कलपवृक्षसम मान ॥
जे नर पढ़ैं विवेकसों, ते पावहिं शिवथान ॥ २५ ॥

इति चतुर्विंशतिजिनस्तुतिः ।

अथ विदेहक्षेत्रस्थ वर्तमानजिनविंशतिका.

श्रीसीमंधरजिनस्तुति—छप्पय.

सीमंधर जिनदेव, नगर पुंडरिगिर सोहै ।
वंदहि सुरनर इंद्र, देखि त्रिभुवन मन मोहै ॥

वृष लच्छन प्रभु चरन सरन, सबहीको राखहिं ।
 तरहु तरहु संसार सत्य, सत यहै जु भाखहिं ॥
 श्रेयांस रायकुल उद्धरन, वर्त्तमान जगदीश जिन ॥
 समभावसहित भविजननमहिं, चरण चारु संदेह विन ॥ १ ॥

श्रीयुगमंधरजिनस्तुति-कवित्त.

केवल कलप वृच्छ पूरत है मन इच्छ, प्रतच्छ जिनंद जुगमंधर
 जुहारिये । दुंदुभि सुद्वार वाजै, सुनत मिथ्यात्व भाजै, विराजै
 जगमें जिनकीरति निहारिये ॥ तिहुं लोक ध्यान धरै नामलिये पा-
 पहरै, करै सुर किन्नर तिहारी मनुहारिये । भूपति सुदृढराय वि-
 जया सु तेरी माय, पाय गज लच्छन जिनेशके निहारिये ॥ २ ॥

श्रीबाहुजिनस्तुति सवैया-द्रुमिल.

प्रभु बाहु सुग्रीव नरेश पिता, विजया जननी जगमें जिनकी ।
 मृगचिह्न विराजत जासुधुजा, नगरी है सुसीमा भली जिनकी ॥
 शुभकेवल ज्ञान प्रकाश जिनेश्वर, जानतु है सबही जिनकी ।
 गनधार कहै भविजीव सुनो, तिहुं लोकमें कीरति है जिनकी ॥ ३ ॥

श्रीसुबाहु जिनस्तुति सवैया.

श्रीस्वामि सुबाहु भयोदधि तारन, पार उतारन निस्तारं ।
 नगर अजोध्या जन्म लियो, जगमें जिन कीरति विस्तारं ॥
 निशदिल पिता सुनंदा जननी, मरकटलच्छन तिस तारं ।
 सुरनरकिन्नर देव विद्याधर, करहि वंदना शशि तारं ॥ ४ ॥

श्रीसुजातिजिनस्तुति कवित्त.

अलिका जु नाम पावै इन्द्रकी पुरी कहावे, पुंडरगिरि सरभर नावे
 जो विख्यात है । सहसकिरनधार तेजतैं दिपै अपार, धुजापै विरा-

जै अंधकारहू रिझात है॥ देवसेन राजासुत जाकी छवि अदभुत,
देवसेना मातु जाकै हरप न मात है। श्रीसुजाति स्वामीको प्रणाम,
नित्य भव्य करै जाके नामलिये कुल पातक विलात है ॥ ५ ॥

श्रीस्वयंप्रभुजिनस्तुति सवैया. (मात्रिक)

श्रीस्वयंप्रभु शशिलंछन पति, तीनहु लोकके नाथ कहावैं ।
मित्रभूतभूपतिके नंदन, विजया नगर जिनेश्वर आवैं ॥
धन्य सुमंगला जिनकी जननी, इन्द्रादिक गुण पार न पावैं ।
भव्यजीव परणाम करतु है, जिनके चरन सदा चित लावैं ॥ ६ ॥

श्रीऋषभाननजिनस्तुति छप्पय.

ऋषभानन अरहंत, कीर्तिराजाके नंदन ।
सुरनरकरहिं प्रणाम, जगतमें जिनको वंदन ॥
वीरसेनसुतलशाय, सिंहलच्छन जिन सोहै ।
नगर सुसीमा जन्म देखि, भविजनमननमोहै ॥
अमलान ज्ञान केवलप्रगट, लोकालोक प्रकाशधर ।
तस चरनकमल वंदनकरत, पापपहार परांहिं पर ॥ ७ ॥

श्रीअनंतवीर्यजिनस्तुति कवित्त.

श्रीअनंतवीर्यसेव कीजिये अनेक भेव, विद्यमान येही देव
मस्तक नवाइये । तात जासु मेघराय मंगला सुकही माय, नगरी
अजोध्याके अनेक गुण गाइये ॥ ध्वजापै विराजै गज पैलै पाप
जाय भज, त्रिकोटनकी महिमा देखे न अघाइये । तिहूं लोकमध्य
ईस अतिशै चौतीस लसै, ऐसे जगदीश 'भैया' भलीभांति-
ध्याइये ॥ ८ ॥

श्रीसूरप्रभजिनस्तुति—सिंहावलोकन छप्पय.

सूरप्रभ अरहंत, हंत करमादिक कीन्हें ।
कीन्हें निज सम जीव, जीव बहु तार सु दीन्हें ॥

दीन्हें रविपद वास, वास विजयामहि जाको ।
जाको तात मुनाग, नाग भय माने ताको ॥
ताको अनंतवलज्ञानधर, धर भद्रा अवतार जी ।
जिहँभावधारि भवि सेवही, वहि नरिंद लहिं मुकतिश्री ॥९॥

श्रीविशालजिनस्तुति सवैया.

नाथ विशाल तात विजयापति, विजयावति जननी जिनकी ।
धन्य सु देश जहां जिन उपजे, पुंडरगिरि नगरी तिनकी ॥
लच्छन इंदु वसहि प्रभु पायें, गिनै तहां कोन सुरगनकी ।
मुनिराज कहै भविजीव तरै, सो है महिमा महिमें इनकी ॥ १० ॥

श्रीवज्रधरजिनस्तुति कवित्त.

अहो प्रभु पदमरथ राजाके नंदनसु, तेरोई सुजस तिहंपुर गाइ-
यतु है। केई तव ध्यान धरै, केई तव जापकरै, केई चर्णशर्णतरै, जीव-
पाइयतु है । नगर सुसीमा सिधि ध्वजायें विराजै शंख, मातुसर-
स्वतिके आनंद वधायतु है । वज्रधरनाथ साथ शिवपुरी करो कहि,
तुम दास निशदीस शीस नाइयतु है ॥ ११ ॥

श्रीचन्द्राननजिनस्तुति छप्पय.

चन्द्राननजिनदेव, सेव सुर करहिं जासु नित ।
पदमासन भगवंत, डिगत नहिं एक समयचित ॥
पुंडरिनगरी जनम, मातु पदमावति जाये ।
वृषलच्छन प्रभुचरण, भविक आनंद जु पाये ॥
जस धर्मचक्र आगें चलत, ईतिभीति नासंत सब ।
सुत वाल्मीक विचरंत जहँ, तहँतहँ होत सुभिक्ष तव ॥१२॥

श्रीचन्द्रबाहुजिनस्तुति मात्रिककवित्त.

लक्षण पद्मेणुका जननी ; नगर विनीता जिनको गांव ।

तीन लोकमें कीरति जिनकी, चन्द्रबाहु जिन तिनको नांव ॥
 देवानंद भूमिपतिके सुत, निशिवासर बंदहिं सुर पांव ।
 भरत क्षेत्रतैं करहि बंदना, ते भविजन पावहिं शिवठांव ॥ १३ ॥
 श्रीभुजंगमजिनस्तुति सवैया.

महिमा मात महाबलराजा, लच्छन चंद धुजा पर नीको ।
 विजय नग्र भुजंगम जिनवर, नाव भलो जगमें जिनहीको ॥
 गणधर कहै सुनो भविलोको, जाप जपो सबही जिनजीको ।
 जास प्रसाद लहै शिवमारग, वेग मिलैं निजस्वाद अमीको ॥ १४ ॥

श्रीईश्वरजिनस्तुति मात्रिक कवित्त.

ईश्वरदेव भली यह महिमा, करहि मूल मिथ्यातमनाश ।
 जस ज्वाला जननी जगकहिये, मंगलसैन पिता पुनि पास ॥
 नगरी जास सुसीमा भनिये, दिनपति चर्ण रहै नित तास ।
 तिनको भावसहित नित बंदै, एक चित्त निहचै तुम दास ॥ १५ ॥

श्रीनेमप्रभुजिनस्तुति कवित्त.

लच्छन वृषभ पाँय पिता जास वीरराय, सेना पुनि जिनमाय सुंदर
 सुहावनी । नगरी अजोध्या भली नवनिधि आवैं चली, इन्द्रपुरी
 पाँय तली लोकमें कहावनी ॥ नेमि प्रभु नाथ वानी अघत समान
 मानी, तिहूं लोक मध्यजानी दुःखको बहावनी । भविजीव पांयलागै
 सेवा तुम नित मागै, अवैं सिद्धि देहु आगै सुखको लहावनी ॥ १६ ॥

श्रीवीरसेनजिनस्तुति सवैया.

महा बलवंत बडे भगवंत, सबै जिय जंत सुतारनको ।
 पिता भुवपाल भलो तिनभाल, लह्यो निजलाल उधारनको ॥
 पुंडरी सुवासहि रावन पास, कहै तुम दास उवारनको
 वीरसेन राय भली भानुमाय, तारोप्रभु आय विचारनको ॥ १७ ॥

श्रीमहाभद्रजिनस्तुति. सवैया.

महाभद्र स्वामी तुम नाम लिये, सीझै सब काम विचारनके।
पिता देवराज उमादे माय, भली विजया निसतारनके ॥
शशि सेवै आय लगै, तुम पाय भले जिनराय उधारनके।
किरपाकरि नाथ गहो हम हाथ, मिलै जिनसाथ तिहारनके ॥१८

श्रीदेवजसजिनस्तुति. छप्पय.

जिन श्रीदेवजस स्वामी, पिताश्रवभूत भनिजै ।
लच्छन स्वस्तिक पांव, नांव तिहुं लोक गुणिजै ॥
पावहि भविजन पार, मात गंगा सुखधारहिं ।
नगर सुसीमा जन्म आय, मिथ्यामति टारहिं ॥
प्रभु देहिं धरम उपदेश नित, सदा बैन अमृत झरहिं ।
तिन चरणकमल वंदन करत, पापपुंज पंकति हरहिं ॥१९॥

श्रीअजितवीर्यजिनस्तुति. छप्पय.

वर्तमानजिनदेव पद्म, लच्छन तिन छाजै ।
अजितवीर्य अरहंत, जगतमें आप विराजै ॥
पद्मासन भगवंत, ध्यान इक निश्चय धारहि ।
आवहि सुरनखवृंद, तिन्है भवसागर तारहि ॥
नगर अजोध्याजन्मजिन, मात कननिका उरधरन ।
तस चरन कमल वंदत 'भविक' जै जै जिन आनंद करन ॥२०॥

दोहा.

वर्तमान वीसी करी, जिनवर वंदन काज ॥
जे नर पढ़ै विवेकसों, ते पावहि शिवराज ॥ २१ ॥

समुच्चयवर्त्तमानवीसतीर्थकरकवित्त—

सीमंधर जुगमंद्र बाहु ओ सुबाहु संजात स्वयंप्रभु नाव तिहुं
पन ध्याइये । ऋषभानन अनंतवीर्य विशालसूरप्रभ, वज्रधरनाथके
चरण चितलाइये ॥ चंद्रानन चन्द्रबाहु श्रीभुजंगमईश्वर, नेमि-
प्रभुवीरसेन विद्यमान पाइये । महाभद्र देवजस अजितवीरज भैया,
वर्त्तमानवीसको त्रिकाल सीस नाइये ॥ २२ ॥

इति वर्त्तमानजिनविंशतिका.

अथ परमात्माकी जयमाला लिख्यते ।

दोहा.

परम देव परनाम कर, परमसुगुरु आराधि ।

परम सुधर्म चितार चित, कहूं माल गुणसाधि ॥ १ ॥

चौपाई.

एकहि ब्रह्म असंखप्रदेश । गुण अनंत चेतनता भेश ॥
शक्ति अनंतलसै जिह माहिं । जासम और दूसरो नाहिं ॥२॥
दर्शन ज्ञान रूप व्यवहार । निश्चय सिद्ध समान निहार ॥
नहि करता नहिं करि है कोय । सदा सर्वदा अविचल सोय ॥३॥
लोकालोक ज्ञान जो धरै । कबहुं न मरण जनम अवतरै ॥
सुख अनंत मय जाससुभाव । निरमोही बहु कीने राव ॥ ४ ॥
क्रोध मान माया नहिं पास । सहजै जहाँ लोभको नास ॥
गुण थानक मारगना नाहिं । केवल आपु आपुही माहिं ॥५॥
परका परस रंच नहिं जहां । शुद्ध सरूप कहावै तहां ॥
अविनाशी अविचल अविकार । सो परमात्म है निरधार ॥६॥

दोहा.

यह निश्चय परमात्मा, ताको शुद्ध विचार ॥
जामें पर परसैं नहीं, 'भैया' ताहि निहार ॥ ७ ॥

इति परमात्माकी जयमाला ।

अथ तीर्थकरजयमाला ।

दोहा.

श्रीजिनदेव प्रणाम कर, परम पुरुष आराध ॥
कहाँ सुगुण जयमालिका, पंच करणरिपु साध ॥ १ ॥

पद्धरिछंद.

जयजय सु अनंत चतुष्टनाथ । जयजय प्रभुमोक्ष प्रसिद्ध साथ ॥
जय जय तुम केवल ज्ञानभास । जयजय केवल दर्शन प्रकाश ॥ २ ॥
जय जय तुम बल जु अनंत जोरा । जयजय सुख जास न पार ओरा ॥
जय जय त्रिभुवन पति तुम जिनंद । जय जय भवि कुमदनि
पूर्णचंद ॥ ३ ॥ जय जय तम नाशन प्रगट भान । जय जय
जित इंद्रिन तू प्रधान ॥ जय जय चारित्र सु यथाख्यात ।
जय जय अधनिशि नाशन प्रभात ॥ ४ ॥ जय जय तम मोह-
निवार वीर । जय जय अरिजीतन परम धीर ॥ जय जय म-
नमथमर्दन मृगेश । जय जय जम जीतनको रसेश ॥ ५ ॥ ज-
य जय चतुरानन हो प्रतक्ष । जय जय जग जीवन सकल रक्ष ॥
जय जय तुम क्रोध कषाय जीता । जय जय तुम मान हरयो अजीत ६ ॥
जय जय तुम मायाहरन सूर । जय जय तुम लोभनिवार मूर ॥
जय जय शत इंद्रन बंदनीक । जय जय अरि सकल निकंद ॥

नीक ॥ ७ ॥ जय जय जिनवर देवाधिदेव । जय जय तिहुंपन
भवि करत सेव ॥ जय जय तुम ध्यावहिं भविक जीव । जय जय
सुख पावहिं ते सदीव ॥ ८ ॥

घत्ता.

ते निजरसरत्ता तज परसत्ता, तुम सम निज ध्यावहि घटमें ॥
ते शिवगति पावैं बहुर न आवैं, वसैं सिंधुसुखके तटमें ॥ ९ ॥

इति तीर्थकर जयमाला.

अथ श्रीमुनिराज जयमाला ।

दोहा.

परमदेव परनाम कर, सतगुरु करहुं प्रणाम ॥

कहूं सुगुणं मुनिराजके, महा लब्धिके धाम ॥ १ ॥

ढाल-मुनीश्वर बंदो मनधर भाव, ए देशी ।

पंच महाव्रत आदरैजी, समति धरै पुनि पंच ॥

पंचहु इन्द्रिय जीतकैजी, रहै विना परपंच, मुनीश्वर० ॥ २ ॥

षट आवश्यक नित करैजी, जीव दया प्रतिपाल ॥

सोवैं पश्चिम रयनमेंजी, शुद्ध भूमि लघुकाल, मुनीश्वर० ॥ ३ ॥

स्नान विलेपन ना करैजी, नग्न रहै निरधार ॥

कचलोंचै हित भावसोंजी, एकहि बेर अहार, मुनीश्वर० ॥ ४ ॥

थिर हैं लघु भोजन करैजी, तजैं दंतवन काज ॥

ये पालैं निरदोषसोंजी, सो कहिये ऋषिराज, मुनीश्वर० ॥ ५ ॥

दोष लगे प्रायश्चित करैजी, धरै सु आतम ध्यान ॥

सोधै नित परिणामको जी, सो संयम परवान, मुनीश्वर० ॥ ६ ॥

दोष छियालीस टालकैं जी, लेवहिं शुद्ध आहार ॥

श्रावकको कुल जानकैजी, जल अचवैं तिहँवार, मुनीश्वर०॥७॥

महा तपस्या व्रत करैजी, सहै परीसह घोर ॥

वीस दोय बहु भेदसोंजी, काय कसैं अतिजोर, मुनीश्वर०॥८॥

निर्मल कर निज आतमाजी, चढैं श्रेणि शुध ध्यान ।

‘भैया’ ते निहचै सहीजी, पावहिं पद निर्वान, मुनीश्वर० ॥९॥

दोहा.

यह श्रीमुनिगुणमालिका, जो पहिरे उरमाहिं ॥

तिनको शिवसंपति मिलै, जनममरनभय नाहिं ॥ १० ॥

इति मुनिश्वर जयमाला.

अथ अहिक्षिति पार्श्वनाथजिनस्तुति.

दोहा.

अश्वसेन अंगज विमल, वामाके कुलचंद ॥

तिहँ केवल कल्याण भवि, पूजिये पार्श्वजिनंद ॥ १ ॥

छंद.

पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्रीअहि छत्तये ।

जिहँ थान प्रभुजू ध्यान धरिये, आत्मरस महुँ रत्तये ॥

उपसर्ग कमठ अज्ञान कीन्हों, क्रोधसों अगिनत्तये ।

बहु बाघ सिंह पिशाच व्यंतर, गजादिक मदमत्तये ॥ २ ॥

कोऊ रुंडमाला पहिरि कंठहि, अगनि जाल मुकंत्तये ।

महाकाल रूप त्रिकाल सूरति, भय दिखावत गत्तये ॥

महि वरप वरपा क्रूर थाक्यो, भव समुद्रहिं पत्तये ।

पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्री अहिछत्तये ॥ ३ ॥

धरणीन्द्र औ पदमावती तहँ, आय जिन सेवंतये ।
 सुअनंत बल जुत आप राजत, मेरु ज्यों अचलत्तये ।
 करि कर्म चार विनाश ताछिन, लह्यो केवल तत्तये ।
 पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्री अहिछित्तये ॥४॥
 शत इंद्र मिल कल्याण पूजा, आय विविध रचत्तये ।
 तिहँ काजतैं यह भूमि महिमा, जगतमें प्रगटत्तये ॥
 भवि जानि आवैं जिनहि ध्यावैं, निजातम सर्दहत्तये ।
 पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्रीअहिछित्तये ॥५॥
 दोहा.

सावधान मन राखिकें, जे जिनगुण गावंत ॥
 संपत्ति सुख तिनको सदा, गनत न आवैं अंत ॥ ६ ॥
 सत्रहसौ इकतीसकी, सुदि दशमी गुरुवार ॥
 कार्तिकमास सुहावनो, पूजे पार्श्वकुमार ॥ ७ ॥

इति श्रीअहिक्षितिपार्श्वनाथजिनस्तुति.

अथ शिक्षा छंद.

दोहा.

देह सनेह कहा करै, देह मरन को हेत ॥
 उत्तम नरभवपायकें, मूढ अचेतन चेत ॥ १ ॥

मरहठा छंद.

हे मूढ अचेतन, कछुइक चेतो, आखिर जगमें मरना है ।
 नरदेही पाई, पूर्व कमाई, तिससों भी फिर टरना है० ॥ टेक ॥ २ ॥
 क्यों धर्म विसारो, पापचितारो, इन बातन क्या तरना है ॥
 जो भूप कहाये, हुकुम चलाये, तौ भी क्या ले करना है, हे मूढ ॥३॥

धन यौवन आये, रह अरुझाये, सो संध्याका चरना है ॥
 विषयारस रातो, रहे सुमातो, अंतअगनिमें जरना है, हेमूढ० ॥ ४ ॥
 कैदिनको जीवो, विपैरस पीवो, बहुरि नरकमें परना है ॥
 जैसी कछु करनी, तैसी भरनी, बुरे फैलसों डरना है ॥ हेमूढ० ॥ ५ ॥
 छिन छिन तन छीजै, आयु न धीजै, अंजुलि जल न्यों झरना है ॥
 जमकी असवारी, रहैतयारी, तिनसों निशदिन लरना है, हेमूढ० ॥ ६ ॥
 कै भौ फिर आयो, अंत न पायो, जन्म जरा दुख भरना है ॥
 क्या देख भुलाने, भरम विराने, यह स्वपनेका छरना है, हेमूढ० ॥ ७ ॥
 दुरगतिको परिवो, दुखको भरिवो, काल अनंतहु सरना है ॥
 परसों हित मानै, मूढ न जाने, यह तन नाहिं उबरना है, हेमूढ० ॥ ८ ॥
 मिथ्यामत लीन्हें, आप न चीन्हें, कर्म कलंकन हरना है ॥
 जिनदेव चितारो, आपु निहारो, जिनसों जीव उधरना है, हेमूढ० ॥ ९ ॥

दोहा.

जनम मरनतैं नाथ क्यों, जीव चतुर्गति माहिं ॥
 पंचमि गति पाई नही, जो महिमा निजमाहिं ॥ १० ॥
 निज स्वभावके प्रगटतैं, प्रगट भये सब दुर्व ॥
 जनम मरन दुख त्यागकैं, जानन लागौ सर्व ॥ ११ ॥
 'भैया' महिमा ज्ञानकी, कहै कहां लों कोय ॥
 कै जानै जिन केवली, कै समदृष्टी होय ॥ १२ ॥

इतिशिक्षावली ।

अथ परमार्थपदपंक्ति.

१ । राग भैरव.

या देहीको शुचि कहाकीजे, जासों धोइये सोईपै छीजै, या

देहीको॥टेक॥ जो जो धोइये सो सो भरी, देखहु दृष्टि विचारके
खरी, या देहीको० ॥ २ ॥ दशों द्वार निशिवासर वहनी, कोटि
जतन किये थिर नहिं रहनी, या देहीको० ॥ ३ ॥ तत्त्व यहै
आतम रसपीजे, परगुण त्याग जलंजलि दीजे, या देहीको० ॥४॥

२ राग देव गंधार ।

अब मैं छाड्यो पर जंजाल, अब मैं ० टेक ।

लग्यो अनादि मोह भ्रम भारी, तज्यो ताहि तत्काल अबमैं० ॥१॥
आतम रस चाख्यो मैं अदभुत, पायो परमदयाल, अबमैं० ॥२॥
सिद्ध समान शुद्ध गुण राजत, सोमरूप सुविशाल, अबमैं० ॥३॥

३ । राग विलावल ।

या घटमैं परमात्मा चिन्मूरति भइया ॥
ताहि विलोकि सुदृष्टिसों पंडित परखैया, या घटमें० ॥१॥
ज्ञान स्वरूप सुधामयी, भवसिंधु तरैया ॥
तिहूं लोकमें प्रगट है, जाकी ठकुरैया, या घटमें० ॥ २ ॥
आप तरै तारें परहिं, जैसें जल नइया ॥
केवल शुद्ध स्वभाव है, समुझै समुझैया, या घटमें ॥ ३ ॥
देव वहै गुरु हैं वहै, शिव वहै वसइया ॥
त्रिभुवन मुकुट चहै सदा, चेतौ चितवइया, या घटमें० ॥४॥

४ । पुनः राग विलावल.

नरदेही बहु पुण्यसों, चेतन तैं पाई ॥
ताहि गमावत वावरे, यह कौन बड़ाई नरदेही० ॥ १ ॥
जप तप संयम नेम व्रत, करि लेहुरे भाई ॥
फिर तोको दुर्लभ महा, यह गति ठकुराई, नरदेही० ॥२॥

५ । राग रामकली.

अरे तैं जु यह जन्म गमायोरे, अरे तैं० टेक ।

पूरव पुण्य किये कहुं अतिही, तातैं नरभव पायोरे ॥

देव धरम गुरु ग्रंथ न परखै, भटकिभटकि भरमायोरे अरे० ॥१॥

फिर तोको मिलिबो यह दुर्लभ, दश दृष्टान्त बतायोरे ॥

जो चेतैं तो चेतरे 'भैया' तोको कहि समुझायोरे, अरे० ॥ २ ॥

६ । पुनः राग रामकली.

जीयको मोह महादुखदाई, जीयको० टेक ॥

काल आनादि जीति जिहँ राख्यो, शक्ति अनंत छिपाई ॥

क्रम क्रम करकैं नरभव पायो, तऊन तजत लराई. जीयको० ॥१॥

मात तात सुत बन्धव बनिता, अरु परवार बडाई.

तिनसों प्रीति करै निशिवासर, जानत सब ठकुराई जीयको० ॥२॥

चहुं गति जनममरनके बहुदुख, अरु बहु कष्ट सहाई ॥

संकट सहत तऊ नहि चेतत, भ्रममदिरा अति पाई, जीयको० ॥३॥

इह बिन तजे परम पद नाहीं, यों जिनदेव बताई ॥

तातैं मोह त्याग लै भइया, ज्यों प्रगटे ठकुराई, जीयको० ॥ ४ ॥

७ । राग काफी.

जाको मन लागो निजरूपहिं, ताहि और क्योँ भावैं ।

ज्यों अटूट धन लहै रंक कहुं, और न काहु दिखावैं ॥ १ ॥

गुण अनंत प्रगटैं जिहं थानक, तापटतर को आवैं ॥

इहिविधि हंस सकल सुखसागर, आपुहि आप लखावैं ॥ २ ॥

(१) मनुष्यभवकी दुर्लभतादिखानेकेलिये जिनमतमें दश दृष्टान्तरूपकथायें हैं उन के द्वारा ।

८ । राग सारंग.

जगतगुरु कवनिज आतम ध्याऊं जगत० टेक ॥

नगदिगंबरमुद्राधरिकैं कव निज आतम ध्याऊं ॥

ऐसी लब्धि होइ कव मोको, हौं वा छिनको पाऊं, जगत० ॥१॥

कव घर त्याग होऊं बनवासी, परम पुरुष लौं लाऊं ॥

रहौं अडोल जोड पदमासन, करम कलंक खपाऊं, जगत० ॥२॥

केवल ज्ञान प्रगट कर अपनों, लोकालोक लखाऊं ॥

जन्म जरा दुख देय जलांजलि, हौं कव सिद्ध कहाऊं, जगत० ॥३॥

मुख अनंत विलसों तिहूँ थानक, काल अनंत गमाऊं ॥

“मानसिंह” महिमा निज प्रगटै, बहुर न भवमें आऊं, जगत० ॥४॥

९ । राग धमाल गौडी.

गौडीप्रभु पारस पूजिये हो, मनधर परम सनेह, गौडी० टेक ।

सकल करम भय भंजनो हो, पूरै वंछित आश ।

तास नाम नित लीजिये हो, दिन दिन लीला विलास, गौडी० ॥२॥

केवलपद महिमा लखो हो, धरहु सुथिरता ध्यान ॥

ज्ञानमाहिं उर आनिये हो, इहिविधि श्रीभगवान, गौडी० ॥३॥

और सकल विकल्प तजो हो, राखहु प्रभुसों प्रीति ॥

आप सरवर ए करें हो, यहै जिनंदकी रीति, गौडी, ॥ ४ ॥

जाके बदन विलोकते हो, नाशौ दूर मिथ्यात ॥

ताहि नमहुं नित भावसों हो, पास जगत विख्यात, गौडी० ॥५॥

१० । पुनः

कहा परदेशीको पतियारो, कहा-टेक० ।

मनमाने तब चलै पंथको, सांज गिनै न सकारो ।

सबै कुटुंब छाँड इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो, कहा० ॥ १ ॥

(१) मानसिंह मैया भगवतीदासजीका परम मित्र था ।

दूर दिसावर चलत आपही, कोऊ न राखन हारो ।
 कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अंत होयगो न्यारो, कहा०॥ २ ॥
 धनसों राचि धरमसों भूलत, झूलत मोहमझारो ।
 इहि विधि काल अनंत गमायो, पायो नहि भवपारो, कहा०॥ ३ ॥
 सांचे सुखसों विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो ।
 चेतहु चेत सुनहरे भइया, आपही आप संभारो, कहा०॥ ४ ॥

११ । पुनः

ते गंहिले भाई ते गहिले, जंगराते अवके पहिले ।
 आपा पर जिहँ भेद न जान्यो, ते वूड़े भवभ्रमवहले, ते गहले॥ १ ॥
 धन धन करत फिरत निशिवासर, तिनको जनम गयो अहले ।
 भ्रममें मगन लगन पुदगलसों, ते नर भवसागर टहले, ते गहले॥ २ ॥
 क्रोध मान माया मद माते, विषयनके रस माहिं रले ।
 'भैया' चेत चतुर कछु अवकें, नहि तो नरक निगोद हिले, ते ग० ३ ॥

१२ । राग केदारो.

छांड़िदे अभिमान जियरे छांड़िदे० ॥ टेक-
 काको तू अरु कौन तेरे, सबही हैं महिमान ॥
 देख राजा रंक कोऊ, थिर नहीं यह थान, जियरे० ॥ १ ॥
 जगत देखत तोरि चलत्रो, तूभी देखत आन ॥
 घरी पलकी खबर नाहीं, कहां होय विहान, जियरे० ॥ २ ॥
 त्याग क्रोधरु लोभ माया, मोह मदिरापान ॥
 राग दोषहिं टार अन्तर, दूर कर अज्ञान, जियरे० ॥ ३ ॥
 भयो सुरपुर देव कवहुं, कवहुं नरक निदान ।
 इम कर्मवश बहु नाच नाचे, भैया आप पिछान, जियरे०॥ ४ ॥

१३। राग सौरभ.

अरे सुन जिनशासनकी बतियाँ, जातें होय परम सुखि
छतियां, अरे० टेक । निजपर भेद करहु दिन रतियां, ज्यों प्रग-
टहिं शिवशक्तिअनँतियां, अरे० ॥ १ ॥ सुख अनंत सब होय
निकतियां, मिटहि सकल भव भ्रमकी धतियां, अरे० ॥ २ ॥
परम ज्योति प्रगटै परभतियां, 'भैया' निजपद गहु निज
मतियां, अरे० ॥ ३ ॥

१४। राग कान्हरो.

देखो मेरी सखीये आज चेतन घर आवै ॥
काल अनादि फिरयो परवशही, अब निज सुधहिं चितावै, दे० ॥ १ ॥
जनमजनमके पाप किये जे, ते छिन माहि बहावै ॥
श्रीजिनआज्ञा शिरपर धरतो, परमानंद गुण गावै, देखो० ॥ २ ॥
देत जलांजुलि जगत फिरनको, ऐसी जुगति बनावै ॥
विलसै सुख निज परम अखंडित, भैया सब मनभावै, देखो० ॥ ३ ॥

१५। राग केदारो.

कैसें देखं करमन दोष कैसें० ॥ टेक ॥
मगन हैं हैं आप कीने, गहे रागरु दोष ॥
विषयोके रस आप भूल्यो, पापसों तन पोस, कैसे० ॥ १ ॥
देवधर्म गुरु करी निंदा, मिथ्या मदके जोस ॥
फल उदै भई नरकपदवी, भजोगे कै कोस, कैसें० ॥ २ ॥
किये आपसु बनै भुगतै, अब कहा अफसोस ।
दुखित तो बहु काल बीते, लही न सुख जल ओस, कैसें० ॥ ३ ॥

क्रोध मानरु लोभ माया, भरयो तन घट ठोस ॥
चेत चेतन पाय नरभव, मुक्ति पंथ सुधोष, कैसैं० ॥ ४ ॥

१६ । राग केदारो.

कहो परसों प्रीति कीन्हीं, कहा गुण तुम जान ।
चतुर चेतन चितविचारो, कहहुँ पुनि पहिचान ॥ १ ॥
वे अचेतन तुम सुचेतन, देखि दृष्टि विनान ।
परहिं त्याग स्वरूप गहिये, यहै वात प्रमान ॥ २ ॥

१७ । राग, अडानो

रे मन ऐसा है जिनधर्म, रे मन० टेक ॥
जाके दरस सरस सुख उपजत, मिटत सकल भव भर्म ॥
शुद्धस्वरूप सहज गुणसागर, जानत सबको भर्म, रे मन० ॥ १ ॥
ज्ञान दरस चारित कर राजत, परसत नाहीं कर्म ॥
निश्चय ध्यान धरो वा प्रभुको; ज्यों प्रगटै पद परम, रे मन० ॥ २ ॥

१८ । दोहा (विहाग.)

श्रीजिन चरणांबुज प्रते, वंदत भवि धर भाव ।
केवल पद अवलंबि निज, करत भगत व्यवसाव ॥ १ ॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल में, श्री जिनबिंब अनूप ॥
तिहँ प्रति वंदत भविक नित, भावसहित शिवरूप ॥ २ ॥

१९ । राग अडानो.

भविक तुम बंदहु मनधर भाव, जिन प्रतिमा जिनवरसी कहिये, भ० ॥
जाके दरस परमपद प्रापति, अरु अनंत शिवसुख लहिये, भविक ॥ १ ॥
निज स्वभाव निरमल हैं निरखत, करम सकल अरि घट दहिये ॥
सिद्ध समान प्रगट इह थानक, निरख निरख छवि उर गहिये, भ० २ ॥

अष्ट कर्म दल भंज प्रगट भई, चिन्मूरति मनु वन रहिये ।
 इहि स्वभाव अपनो पद निरखहु, जो अजरामर पद चाहिये, भविक०
 त्रिभुवन माहिं अकृत्रिम कृत्रिम, वंदन नितप्रति निरवहिये ।
 महा पुण्यसंयोग मिलत है, भइया जिन प्रतिमा सरदहिये, भविक०

२० । पुनः

हो चेतन तो मति कौन हरी, चेतन० टेक ॥
 कै लै गयो मिथ्यामति मूरख, कै कहुं कुमति धरी ॥
 कै कहुं लोभ लग्यो तोहि नीको, कै विष प्रीतिकरी, हो चे० ॥ १ ॥
 कै कहुं राग मिल्यो हितकारी, रीति न समुझि परी ॥
 अब हूं चेत परमपद अपनो, सीख सु धार खरी, होचे० ॥ २ ॥

२१ । पुनः

हो चेतन वे दुःख विसरि गये ॥ टेक ॥
 परे नरकमें संकट सहते, अब महाराज भये ।
 सूरी सेज संवै तन वेदत, रोग एकत्र ठये ॥ हो चे० ॥ १ ॥
 करत पुकार परम पद पावत, कर मन आनंदये ।
 कहूं शीत कहूं उष्ण महाभुवि, सागर आयु लये, होचे० ॥ २ ॥

२२ । राग मारु.

जो जो देख्यो वीतरागने सो सो होसी वीरारे ।
 बिन देख्यो होसी नहिं क्योंही, काहे होत अधीरा रे ॥ १ ॥
 समयो एक बढ़ै नहिं घटसी, जो सुख दुखकी पीरा रे ।
 तू क्यों सोच करै मन कूड़ो, होय वज्र ज्यों हीरा रे ॥ २ ॥
 लगै न तीर कमान वान कहूं, मार सकै नहिं मीरा रे ।
 तूं सम्हारि पौरुष बल अपनो, सुख अनंत तो तीरा रे ॥ ३ ॥

निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभुको, जो तारै भव भीरा रे ।
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारै भव नीरा रे ॥४॥

२३ । राग धनाश्री ।

जिनवाणी को को नहिं तारे, जिन० ॥ टेक ॥
मिथ्यादृष्टी जगत निवासी, लहि समकित निज काज सुधारे ।
गांतम आदिक श्रुतिके पाठी, सुनत शब्द अघ सकल निवारे, जिन०
परदेशी राजा छिन वादी, भेद सुतत्त्व भरम सब तारे ।
पंचमहाव्रत धरतू 'भैया' मुक्तिपंथ मुनिराज सिधारे, जिन ॥२॥

२४ । पुनः ।

जिनवाणी सुनि सुरत संभारे जिन० ॥ टेक ॥
सम्यग्दृष्टी भवननिवासी, गह वृत केवल तत्त्व निहारे, जिन० १॥
भये धरणेन्द्र पदमावति पलमें, जुगलनाग प्रभु पांस उवारे ॥
बाहूवलि बहुमान धरत है, सुनत वचन शिव सुख अवधारे, जिन० २॥
गणधर सबै प्रथम धुनि सुनिके, दुविध परिग्रह संग निवारे ॥
गजसुकुमाल बरस वसुहीके, दिक्षाग्रहत करम सब तारे, जिन० ३॥
मेघकुंवर श्रेणिकको नंदन, वीरवचन निजभवहिं चित्तारे ॥
और हु जीव तरे जे भैया, ते जिनवचन सबै उपगारे, जिन० ॥४॥

२५ । पुनः ।

चेतन परे मोह वश आय, चेतन ॥ टेक ॥
मानत नाहिं कहुं समुझायो, विषयन रहे लुभाय ॥
नरक निगोद भ्रमन बहु कीन्हो, सो दुख कह्यो न जाय, चेतन० १॥
नरभव पाय धरम नहिं पायो, आगेको न उपाय ॥
जैसे डारि उदधि चिंतामणि, मूरख फिर पछताय, चेतन० ॥२॥

सतगुरु वचन धारिले अबके, जार्ते मोह विलाय ॥
तब प्रगटै आत्म रस भैया, सो निश्चय ठहराय, चेतन० ॥ ३ ॥

॥ इति परमार्थ पदपंक्ति ॥

अथ गुरु शिष्य प्रश्नोत्तर,

दोहा.

कहुं दिव्यध्वनि शिष्य सुनि, आयो गुरुके पास ॥
पूज्य सुनहु इक बीनती, अचरजकी अरदास ॥ १ ॥
आज अर्चभौ मैं सुनो, एक नगरके बीच ॥
राजा रिपुमें छिप रह्यो, राग करें सब नीच ॥ २ ॥
नीचसु राज्य करै जहां, तहां भूप बलहीन ॥
अपनो जोर चलै नहीं, उनहीके आधीन ॥ ३ ॥
वे याको मानें नहीं, यह वासों रसलीन ॥
सत्तर कोड़ाकोड़िलों, बंदीखानें दीन ॥ ४ ॥
बंदीवान समान नृप, कर राख्यो उहि ठौर ॥
वाको जोर चलै नहीं, उनहींके सिरमौर ॥ ५ ॥
वे जो आज्ञा देत हैं, सोइ करै यह काम ॥
आप न जानें भूप मैं, ऐसो है चित आम ॥ ६ ॥
उनकी चेरीसों रचे, तजि निज नारि निधान ॥
कहो स्वामि सो कौन वह, जिनको ऐसो ज्ञान ॥ ७ ॥
कौन देश राजा कवन, को रिपु को कुल नारि ॥
को दासी कहु कृपाकर, याको भेद विचारि ॥ ८ ॥

गुरुवाच.

गुरु बोलै समकित बिना, कोऊ पावै नाहिं ॥

सवैं ऋद्धि इक ठौर है, काया नगरीमाहिं ॥ ९ ॥

काया नगरी जीव नृप, अष्ट कर्म अति जोर ॥

भाव अज्ञानदासी रचे, पगे विषयकी ओर ॥ १० ॥

विषयबुद्धि जहां है नहीं, तहां सुमतिकी चाह ॥

जो सुमती सो कुल त्रिया, इहि याको निरवाह ॥ ११ ॥

आप पराये वश परे, आपा डारयो खोय ॥

आपा आपु न जानहीं, कहो आपु क्यों होय ॥ १२ ॥

आप न जानें आपको, कौन बतावनहार ॥

तबहिं शिष्य समकित लह्यो, जान्यों सबहिं विचार ॥

इहि गुरु शिष्य चतुर्दशी, सुनहु सबै मनलाय ॥

कहै दास भगवंतको, समताके घर आय ॥ १४ ॥

इति गुरुशिष्यचतुर्दशी.

अथ मिथ्यात्वविध्वंसनचतुर्दशी.

छप्पय.

वन्दहुं ऋषभ जिनेन्द्र, अजित संभव अभिनन्दन ।

सुमति सु पद्म सुपार्श्व, बहुरि चन्द्रप्रभ वंदन ॥

सुविधि शीतल श्रेयांश, वासुपूजहिं सुखदायक ।

विमल अनंत रु धर्म, शान्ति कुंथ जु शिवनायक ॥

अर मल मुनसुव्रत नमत, पाप पुंज पंकति हरिय ।

नमि नेम पार्श्व जिन वीर कहँ, भवित्रिकाल वंदन करिय ॥ १ ॥

कवित्त मनहर.

मिथ्या गढ़ भेद भयो अन्धकारनाश गयो, सम्यक प्रकाश-
लयो, ज्ञानकला भासी है । अणुव्रत भाव धरें महाव्रत अंगी करें,

श्रेणीधारा चढ़े केई प्रकृत विनासी है ॥ मोहको पसारो डारि

घातियासु कर्म टारि, लोकालोकको निहारि भयो सुखरासी है ।
सर्वही विनाश कर्म, भयो महादेव परम, वंदै भव्य ताहि नित लोक
अग्रवासी है ॥ २ ॥

नेकु राग द्वेष जीत भये वीतराग तुम, तीनलोक पूज्यपद येहि
त्याग पायो है । यह तो अनूठी बात तुम ही बताय देहु, जानी हम
अबहीं सुचित्त ललचायो है ॥ तनिकहू कष्ट नाहिं पाइये अनन्त
सुख, अपने सहजमाहिं आप ठहरायो है । यामें कहा लागत है, परसं-
ग त्यागतही, जारि दीजे भ्रम शुद्ध आपुही कहायो है ॥ ३ ॥

वीतराग देव सो तो वसत विदेहक्षेत्र, सिद्ध जो कहावै शिव-
लोकमध्य लहिये । आचारज उवझाय दुहीमें न कोऊ यहां, साधु
जो बताये सो तो दक्षिणमें कहिये ॥ श्रावक पुनीत सोऊ विद्यमान
यहां नाहिं, सम्यकके संत कोऊ जीव सरदहिये ॥ शास्त्रकी
शरधा तामें बुद्धि अति तुच्छ रही, पंचम समैमें कहो कैसे
पंथ गहिये ॥ ३ ॥

तूही वीतराग देव राग द्वेष टारि देख, तूही तो कहावै सिद्ध
अष्ट कर्म नासतैं । तूही तो आचारज है आचरै जु पंचाचार, तूही उ-
वझाय जिनवाणीके प्रकाशतैं ॥ परको ममत्त्व त्याग तूही है सो ऋषि
राय, श्रावक पुनीत व्रत एकादश भासते । सम्यक स्वभाव तेरो शा-
स्त्र पुनि तेरी वाणी, तूही भैया ज्ञानी निज रूपके निवासतैं ४ ॥

मात्रिक सवैया.

आलस कहै उद्यम जिन ठानों, सोवहु सदन पिछोरी तान ।
काहे रैन दिना शठ धावत, लिख्यो ललाट मिलै सोइ आन ॥
आवत जात मरे जिय केतक, ऐसेही भेद हिये पहिचान ।
तातैं इकान्तगहो उरअन्तर, सीख यहै धरिये सुख मान ॥ ५ ॥

उद्यम कहै अरे शठ आलस, तू सरवर क्यों करै हमारि ॥
हम मिथ्यात तजें गहें सम्यक, जो निजरूप महा हितकारि ॥
श्रावक धर्म इकादश भेदसों, श्री मुनिपंथ महाव्रत धारि ।
चंद्र गुण थान विलोक ज्ञेय सब, त्यागहिं कर्म वरैं शिवनारि ॥६॥

कवित्त-मनहरन.

मिथ्याभाव नाश होय तबै ज्ञान भास होय, मिथ्याके मिला-
पसों अशुद्धता अनादिकी । मिथ्याके सँयोग सेती मोक्षको वि-
योग रहै, मिथ्याके वियोग बात जानें मरजादिकी ॥ मिथ्याकी
मगनतासों संकट अनेक सहै, मिथ्याके मिटाये भव भाँवरि लै
वादिकी । ऐसी मिथ्या रीतिकी प्रतीतिको निवारै संत, करै निज
प्रगट शक्ति तोर कर्मादिकी ॥ ७ ॥

मोहके निवारें राग द्वेषहू निवारें जाहिं, राग द्वेष टारें मोह
नेक हू न पाइये । कर्मकी उपाधिके निवारिवेको पेंच यहै, जड़के
उखारें वृक्ष कैसे ठहराइये ॥ डार पात फल फूल सबै कुम्हलाय
जाय, कर्मनके वृक्षनको ऐसे के नसाइये । तबै होय चिदानन्द
प्रगट प्रकाश रूप, विलसै अनन्त सुख सिद्धमें कहाइये ॥ ८ ॥

जबै चिदानंद निज रूपको संभार देखे, कौन हम कौन कर्म
कहांको मिलाप है । रागद्वेष भ्रमने अनादिके भ्रमाये हमें, तार्तेहम
भूल परे लाग्यो पुण्य पाप है ॥ रागद्वेष भ्रम ये सुभाव तो
हमारे नाहिं, हम तो अनंत ज्ञान, भानसो प्रताप है । जैसो शिव
खेत वसै तैसो ब्रह्म यहां लसै, तिहूं काल शुद्ध रूप 'भैया' निज
आप है ॥ ९ ॥

जीव तो अकेलो है त्रिकाल तीनोंलोकमध्य, ज्ञान पुंज प्राण

जाके चेतना सुभाव है । असंख्यात परदेश पूरित प्रमान वन्यो, अपने सहज माहिं आप ठहराव है ॥ राग द्वेष मोह तो सुभाव में न याके कहूं, यह तो विभाव पर संगति मिलाव है । आतम सुभावसों विभावसों अतीत सदा, चिदानन्द चेतवेको ऐसे में उपाव है ॥ १० ॥

राग द्वेष भ्रम भाव लग्यो है अनादिहीको, जाके परसाद परभावनि बहतु है । बंधत अनेक कर्म इनको निमित्त पाय, तिनहीके फल सब यह पै सहतु है ॥ चहुंगति चौरासीमें जनम जराके दुःख, मरन मिथ्यात भाव यहै तो लहतु है । याही क्रम काल तो अनन्त वीत गयो तहां, अजहुंलों चिदानंद चेतो न बहतु है ॥ ११ ॥

मिथ्या भाव जालों तोलों भ्रमसों न नातो दूटै, मिथ्याभाव जौलों तौलों कर्म सों न छूटिये । मिथ्याभाव जौलों तोलों सम्यक न ज्ञान होय, मिथ्या भाव जौलों तोलों अरि नाहिं कूटिये ॥ मिथ्या भाव जौलों तौलों मोक्षको अभाव रहै, मिथ्या भाव जौलों तौलों परसंग जूटिये । मिथ्याको विनाश होत प्रगटै प्रकाश जोत, सूधौ मोक्ष पंथ सूधै नेकु न अहूटिये ॥ १२ ॥

छप्पय.

ऊरध मध अध लोक, तासुमें एक तिहूं पन ।
 किसिहि न कोउ सहाय, याहि पुनि नाहिं दुतिय जन ॥
 जो पूरव कृत कर्म भाव, निज आप बंध किय ।
 सो दुख सुख द्वयरूप, आय इहि थान उदय दिय ॥
 तिहि मध्य न कोऊ रख सकति, यथा कर्म विलसंत तिम ।
 सब जगत जीव जगमें फिरत ज्ञानवंत भाषंत इम ॥ १३ ॥

दोहा.

भैयां सुख सागर परखि, निरखि ज्योति निजचन्द ।
मिथ्या नाशन चतुर्दशि, पढ़त बढ़त आनन्द ॥ १४ ॥
इति मिथ्यातविध्वंसनचतुर्दशी ।

अथ जिनगुणमाला लिख्यते.

दोहा.

तीर्थकर त्रिभुवन तिलक, तारक तरन जिनंद ॥
तास चरन वंदन करौं, मनधर परमानंद ॥ १ ॥
गुण छीयालिस संयुगत, दोष अठारह नाश ॥
ये लक्षण जा देवमें, नित प्रति वंदौं तास ॥ २ ॥

चौपई.

दश गुण जासु जनमत्तैं होय । प्रस्वेदादिक दोष न कोय ॥
निर्मलता मलरहित शरीर । उज्ज्वल रुधिर वरण जिम खीर ॥ ३ ॥
वज्र वृषभ नाराच प्रमान । सम सु चतुर संस्थान बखान ॥
शोभन रूप महा दुतिवन्त । परम सुगन्ध शरीर वसंत ॥ ४ ॥
सहस अठोत्तर लच्छन जास । बल अनंत वपु दीखै तास ॥
हितमित वचन सुधासे झरै । तास चरन भवि वंदन करै ॥ ५ ॥
दश गुण केवल होत प्रकाश । परम सुभिक्ष चहुं दिश भास ॥
द्वयसौ जोजन मान प्रमान । चलत गगनमें श्रीभगवान ॥ ६ ॥
वपुत्तैं प्राणि घात नहिं होय । आहारादिक क्रिया न कोय ॥
विन उपसर्ग परम सुखकार । चहुं दिश आनन दीखहिं चार ॥ ७ ॥
सब विद्या स्वामी जग वीर । छाया वर्जित जासु शरीर ॥
नख अरु केश बढ़ै नहिं कहीं । नेत्र पलक पल लागै नहीं ॥ ८ ॥

चौदह गुण देवन कृत होय । सर्व मागधी भाषा सोय ॥
 मैत्री भाव जीव सब धरै । सर्वकाल तरु फूल न फरै ॥ ९ ॥
 दर्पणवत निर्मल है मही । समवशरण जिन आगम कही ॥
 शुद्ध गंध दक्षिण चल पौन । सर्व जीव आनंद अनुभौन ॥ १० ॥
 धूलिरु कंटक वर्जित भूमि । गंधोदक वरपत है झूमि ॥
 पद्म उपरि नित चलत जिनेश । सर्व नाज उपजहि चहुं देश ॥ ११ ॥
 निर्मल होय अकाश विशेष । निर्मल दशा धरतु है भेष ॥
 धर्म चक्र जिन आगे चलै । मंगल अष्ट पाप तम दलै ॥ १२ ॥
 प्राति हार्य वसु आनंदकंद । वृक्ष अशोक हरै दुख द्वंद ॥
 पुहुप वृष्टि शिव सुखदातार । दिव्य ध्वनि जिन जै जै कार ॥ १३ ॥
 चौसठ चवर ढरहिं चहुं ओर । सेवहिं इंद्र मेघ जिम मोर ॥
 सिंहासन शोभन दुतिवंत । भारंडल छवि अधिक दिपंत ॥
 वेदी माहि अधिक दुति धरै । दुंदुभि जरा मरण दुख हरै ॥
 तीन छत्र त्रिभुवन जयकार । समवशरणको यह अधिकार ॥ १५ ॥

दोहा.

ज्ञान अनंत मय आत्मा, दर्शन जासु अनंत ॥
 सुख अरु वीर्य अनंत बल, सो वंदौ भगवंत ॥ १६ ॥
 इन छयालीसन गुणसहित, वर्तमान जिनदेव ॥
 दोष अठारह नाशतै, करहिं भविक नितसेव ॥ १७ ॥

चौपाई.

क्षुधा त्रिषा न भयाकुलजास । जनम न मरन जरादिक नाश ॥
 इन्द्रीविषय विषाद न होय । विस्मय आठ मदहि नहिं कोय ॥ १८ ॥
 रागरु दोष मोह नहि रंच । चिंता श्रम निद्रा नहि पंच ॥
 रोग विना पर स्वेद न दीस । इन दूषन विन है जगदीश ॥ १९ ॥

दोहा.

गुण अनंत भगवन्तके, निहचै रूप बखान ॥

ये कहिये व्यवहारके, भविक, लेहु उर आन ॥ २० ॥

‘भैया’ निजपद निरखतैं, दुविधा रहै न कोय ॥

श्रीजिनगुणकी मालिका, पढ़ें परम सुख होय ॥ २१ ॥

इति श्रीजिनगुणमालिका.

अथसिञ्जाय लिख्यते.

करखा छंद.

जहँ कर्मके वंश, सों अंश नहिं लसै, सिद्ध सम आतमा ब्रह्म ज्ञानी ॥

मोह मिथ्यात्वमद, पान दूरहिं नशै, राग अरुद्वेषहू जास थानी ॥ १ ॥

नहि क्रोध नहिंमान धानभासै कहुं, माय नहिं लोभ जहँ दूरदीखै चहुं।

प्रकृति परद्रव्यकी सर्व मानी, भली सिद्ध सम आतमा ब्रह्म ज्ञानी ॥ २ ॥

जामैं ज्ञान अरु दर्श चारित गुणराजही, शक्ति अनंत सबै

ध्रुवछाजही ॥ परम पद पेख निजराजधानी, सिद्ध सम आत्मा

ब्रह्म ज्ञानी ॥ ३ ॥ अतीत अनागत वर्तमानहिं जिते, दरब गुण

परजय सर्व भासहिं तिते ॥ शुद्ध नय सिद्ध जिम जानिप्रानी,

सिद्ध सम आत्मा ब्रह्म ज्ञानी ॥ ४ ॥

अथ पंचपरमेष्ठिनमस्कार ।

दोहा.

प्रातसमय श्रीपंच पद, वंदन कीजे नित ॥

भाव भगति उर आनिकै, निश्चय कर निजचित्त ॥ १ ॥

चौपाई १६ मात्रा.

प्रातहिं उठि जिनवर प्रणमीजै । भावसहित श्रीसिद्ध नमीजै ॥

आचारज पद वंदन कीजै । श्रीउवझाय चरणचित्तदीजै ॥ २ ॥

साधु तणा गुण मन आणीजै । पटद्रव्य भेद भला जानीजै ॥
 श्रीजिनवचन अमृतरस पीजै । सब जीवनकी रक्षा कीजै ॥ ३ ॥
 लग्यो अनादि मिथ्यात्व वसीजै । त्रिभुवन माही जिम न पसीजै ॥
 पाचौ इन्द्री प्रवल दमीजै । निज आतमरस माहिरमीजै ॥ ४ ॥
 परगुण त्याग दान नित कीजै । शुद्ध स्वभाव शील पालीजै ॥
 अष्ट करम तज तप यह कीजै । शुद्धस्वभाव मोक्ष पामीजै ॥ ५ ॥

दोहा.

इहविधि श्रीजिन चरण नित, जो वंदत धर भाव ॥
 ते पावहिं सुख शास्वते, 'भैया' सुगम उपाव ॥ ६ ॥
 इति पंचपरमेष्ठि नमस्कार.

अथ गुणमंजरी लिख्यते.

दोहा.

परम पंच परमेष्ठिको, वंदौ सीस नवाय ॥
 जस प्रसाद गुण मंजरी, कहूं कथन गुणगाय ॥ १ ॥
 ज्ञान रूप तरु ऊगियो, सम्यकधरतीमाहिं ॥
 दर्शन दृढ शाखासहित, चारित दल लहकाहिं ॥ २ ॥
 लगी ताहि गुण मंजरी, जस स्वभाव चहुं ओर ॥
 प्रगटी महिमा ज्ञानमें, फल है अनुक्रम जोर ॥ ३ ॥
 जैसे वृक्ष रसालके, पहिले मंजरी होय ॥
 तैसें ज्ञान तमालके, गुणमंजरिका जोय ॥ ४ ॥
 दया सुवत्सल सुजनता, आतम निंदा रीति ॥
 समता भक्ति विरागविधि, धर्म रागसों प्रीति ॥ ५ ॥
 मनप्रभावना भाव अति, त्याग न ग्रहन विवेक ॥
 धीरज हर्ष प्रवीनता, इम मंजरी अनेक ॥ ६ ॥

तिनके लच्छन गुण कहूं, जिन आगम परमान ॥

इह क्रम शिव फल लागि है, देख्यो श्री भगवान ॥ ७ ॥

चौपाई.

दया कही द्वय भेद प्रकाश । निजपरलच्छन कहूं विकाश ॥

प्रथम कहूं निज दया बखान । जिहमें सब आतमरस जान ॥ ८ ॥

शुद्ध स्वरूप विचारहिं चित्त । सिद्ध समान निहारहिं नित्त ॥

धिरता धर आतमपदमाहिं । विषयसुखनकी बांछा नाहिं ॥ ९ ॥

रहै सदा निजरसमें लीन । सो चेतन निजदया प्रवीन ॥

अब दूजो परदया विचार । जो जानै सगरो संसार ॥ १० ॥

छहों कायकी रक्षा होय । दयाशिरोमणि कहिये सोय ॥

पृथिवी अप तेऊ अरु वाय । वनस्पती त्रिस भेद कहाय ॥ ११ ॥

मन वच काय विराधै नाहि । सो परदया जिनागममाहिं ॥

अव्रतमें भावनितैं टलै । यथाशक्ति कछु दर्शित पलै ॥ १२ ॥

ज्यां कपायकी मंदित ज्योत । त्यों त्यों दया अधिक तिहूँ होत ॥

त्रसकी रक्षा निश्चय करै । देशविरत थावर कछु टरै ॥ १३ ॥

सर्वदया छट्टे गुणथान । आगें ध्यान कह्यो भगवान ॥

और कहूं परदया बखान । ताके लक्षण लेहु पिछान ॥ १४ ॥

कष्टित देख अन्य जियकोय । जाके हिरदै करुणा होय ॥

शक्ति समान करै उपकार । सो परदया कही संसार ॥ १५ ॥

दोहा.

कही दया द्वय भेदसों, थोरेमें समुझाय ॥

याके भेद अपार हैं, जानै श्रीजिनराय ॥ १६ ॥

अब बत्सलता गुण कहूं, जो रुचिवंत सदीव ॥

लन्यो रहै जिनधर्ममें, सो सम दृष्टी जीव ॥ १७ ॥

चौपाई.

जैसे बच्छा चूधै गाय । तैसें जिनवृष याहि सुहाय ॥
 लग्यो रहै निशदिन तिहँ माहिं । और काजपर मनसा नाहिं १८
 सुनै जिनागमके विरतंत । त्योंत्यों सुख तिहँ होत महंत ॥
 जो देख्यो केवल भगवान । सो निहचै याकै परमान ॥ १९ ॥
 द्वादश अंग प्ररूपहि जोय । सो याके घट अविचल होय ॥
 रहै सदा जिनमतको ध्यान । सो वत्सलता गुण परमान २०
 अब तीजी सज्जनता कहूं । जाके भेद यथारथ लहूं ॥
 देखै जो जिनधर्मी जीव । ताकी संगति करै सदीव ॥ २१ ॥
 सब प्राणीपर सज्जन भाव । मित्र समान करै चित चाव ॥
 जहां सुनै जिनधर्मी कोय । तहँ रोमांचित हुलसित होय ॥
 देखत ही मन लहै अनंद । सो सज्जनता है गुणवृंद ॥
 अब अपनी निंदा अधिकार । कहूं जिनागमके अनुसार ॥ २३ ॥
 जब जिय करै विषयसुख भोग । निंदित ताहि रहै उपयोग ॥
 अघकी रीति करै जिय जहां । अश्रित रहै रैन दिन तहां ॥ २४ ॥
 देह कुटुंबादिकसे नेह । जब है तब निंदै निज देह ॥
 व्रत पचखान करै नहिं रंच । तब कहै रे मूरख तिरजंच ॥ २५ ॥
 जब कहू जियको हिंसा होय । तब धिक्कार करै निज सोय ॥
 जब परिणाम बहिर्मुख जाय । तब निज निंदा करै सुभाय २६
 इहविधि निज निंदहि जे जीव । ते जिन धर्मी कहे सदीव ॥
 धर्म विषे उद्यम नहिं होय । तब निज निंदहिं धर्मी सोय ॥

दोहा.

आतमनिंदा पाठ इस । करत भविक निशदीस ॥

अब समता लक्षण कहूं । जो भाषित जगदीश ॥ २८ ॥

चौपाई.

समताभाव धरहि उरमाहिं । वैर भाव काहूसौं नाहिं ॥
 निज समान जाने सब हंस । क्रोधादिक तव करै विध्वंस ॥२९॥
 उत्तम क्षमा धरहि उर आन । सुखदुख दुहुमें एकहि वान ॥
 जो कोउ क्रोध करै इह आय । तबहु याके समता भाय ॥३०॥
 उपजै क्रोध कपाय कदाच । तव तहँ रहै आपसों राच ॥
 सो समतादिक लच्छन जान । थोरेमें कछु कह्यो वखान ॥३१॥
 अब कहुं भगति भाव जो होय । सेवहि पंच पदहिं नित सोय ॥
 देव गुरु जिन आगम सार । इनकी भक्ति रहै निरधार ॥३२॥
 जिनप्रतिमा जिन सरखी जान । पूजै भाव भगति उर आन ॥
 सांधर्मी जिय देखै कोय । ताकी भगति करै पुनि सोय ॥३३॥
 जामहिं गुण देखै अधिकाय । ताकी भगति करहि मन लाय ॥
 भक्ति भावतै नाहिं अघाय । समदृष्टीको यहै स्वभाय ॥३४॥
 अब कहुं गुण वैराग वखान । उदासीन सबसों तिहँ जान ॥
 जोपै रहै गृहस्थावास । तोहू मन तिह रहै उदास ॥३५॥
 जानै कबहुं चारित लेउँ । परिग्रह सबै त्यागकर देउँ ॥
 क्षणभंगुर देखहि संसार । तातैं राग तजै निरधार ॥ ३६ ॥
 निजशरीर विषलेपण करै । अशुचि देख ममता परिहरै ॥
 यह जड़मय चेतन सरवंग । कैसैं राग करुं इहि संग ॥३७॥
 मन लाग्यो आतम रस माहिं । तातैं वैरवासना नाहिं ॥
 इम वैराग्य धरहिं जे संत । ते समदृष्टि कहै सिद्धंत ॥३८॥
 अब कहुं धर्मरागकी बात । समदृष्टी जिय सबै सुहात ॥
 पंच परम परमेष्ठी जान । तिनमें रागधरहिं उर आन ॥३९॥

जिन आगम जो कह्यो सिधंत । तिनपै राग धरत हैं संत ॥
 ज्यों देखहि जिनधर्म उद्योत । त्यों तिहिं राग महा उर होत ४०
 जहां सुनै जिनधर्मी कोय । तिहिं मिलिवेकी इच्छा होय ॥
 धर्म राग धर्मीपै जोय । सम्यक लच्छन कहिये सोय ४१
 दोहा.

कही आठ गुणमंजरी, सम्यक लक्षण जान ॥
 पंच भेद पुनि और है, तेहू कहूं बखान ॥ ४२ ॥
 मन प्रभावना भाव धर, हेय उपादेय वंत ॥
 धीरज हर्ष प्रवीनता, इम मंजरी वृत्तंत ॥ ४३ ॥

चौपाई.

चित प्रभावना भावहिं धरै । किहि विधि जैनधर्म विस्तरै ॥
 संघ चलावहि खरचै दाम । प्रगट करै जिन शासननाम ४४
 जिनमंदिरकी रचना करै । तामें विंव अनोपम धरै ॥
 करै प्रतिष्ठा विविध प्रकार । सो जिनधर्मी चित्त उदार ॥ ४५ ॥
 साधू साध्वी श्रावक वर्ग । इनके दूर करहिं उपसर्ग ॥
 पोषै संघ चतुर्विधि जान । सो जिनधर्मी कहे बखान ॥ ४६ ॥
 इह विधि करै उद्योत अनेक । जाके हिरदै परम विवेक ॥
 जिनशासनकी महिमा होय । नितप्रतिकाज करत है सोय ४७
 जब कोउ जीव महाव्रत धरै । ताके तहां महोत्सव करै ॥
 खरचहि द्रव्य देय बहु दान । सो प्रभावना अंग बखान ॥ ४८ ॥
 अब कहूं हेय उपादेय भेद । जाके लखे मिटै सब खेद ॥
 प्रथमहिं हेय कहतहूँ सोय । जामे त्याग कर्मको होय ॥ ४९ ॥
 पुद्गल त्याग योग्य सब तोहि । इनकी संगति मगन न होहि ॥
 ऐसैं जो वरतै परिणाम । हेय कहत है ताको नाम ॥ ५० ॥

अब कहूं उपादेयकी बात । जामें ग्रहण अर्थ विख्यात ॥
 निज स्वरूप जो आतमराम । चिदानंद है ताको नाम ॥५१॥
 ज्ञान दरश चारित भंडार । परमधरम धन धारन हार ॥
 निराकार निरभय निररूप । सो अविनाशी ब्रह्म स्वरूप ५२
 ताकी महिमा जानहिं संत । जाकी सकति अपार अनंत ॥
 ताहि उपादेय जानहिं जोय । सम्यकदृष्टी कहिये सोय ॥५३॥
 निज स्वरूप जो ग्रहण करेय । परसत्ता सब त्यागे देय ॥
 ऐसे भाव धरहि जो कोय । हेय उपादेय कहिये सोय ॥५४॥
 अब धीरज गुण कहूं बखान । जिनके ते सम दृष्टी जान ॥
 धर्मविषै जो धीरज धरै । कष्टदेख सरधा नहि टरै ॥५५॥
 सहै उपसर्ग अनेक प्रकार । सबहू धीरज है निरधार ॥
 मिथ्यामत जो देखै कोय । चमत्कार तामें बहु होय ॥५६॥
 तबहू ताहि लखहि अज्ञान । सो धीरजधर सम्यकवान ॥
 अब कहूं हरप गुणहिं समुझाय । समदृष्टी यह सहज सुभाय ॥५७॥
 निज स्वरूप निरखहिं जो कोय । ताके हर्ष महा उर होय ॥
 सुख अनंतको पायो ईस । तिहूँ निरखै हरपै निसदीस ॥५८॥
 छहों द्रव्यके गुण परजाय । जाने जिन आगम सुपसाय ॥
 निज निरखै सु विनाशी नाहिं । यातैं हर्ष महा उर माहिं ॥५९॥
 तीर्थकर देवनके देव । ताकी प्रभुताके सब भेव ॥
 अनंत चतुष्टय आदि विचार । हपैं ते निज माहिं निहारा ॥६०॥
 जन्म जरादिक दुख बहु जान । तिहूँतैं भिन्न अपनपो मान ॥
 सिद्धसमान विचारहि चित्त । तातैं हर्ष महा उर नित्त ॥६१॥
 अब गुण कहूं प्रवीन बखान । जिनके ते समदृष्टी मान ॥
 स्वपरविवेकी परम सुजान । प्रगट्योबोधमहा परधान ॥६२॥

जानन लाग्यो सब विरतंत । जैसो कछु देख्यो भगवंत ॥
 जिन आगमके वचन प्रमान । तामहिं बुद्धि अहै परधान ॥६३॥
 धर्म महागुण जाके होय । तातैं निपुण न दूजो कोय ॥
 जाके हृदय भयो परकाश । ताकी कुमति गई सवनाश ॥६४॥
 चौदह विद्यामें जो आदि । ब्रह्मज्ञान सो कह्यो मरजाद ॥
 तातैं जो परवीन प्रधान । सो समदृष्टीविन नहिं आन ६५
 मिथ्याती जिय भ्रममें रहै । सो प्रवीनता कैसें गहै ॥
 तातैं कथा यहै परमान । है प्रवीन जिय सम्यकवान ॥६६॥
 इहि विधि मंजरी लगी अनेक । ज्ञानवंत धर देख विवेक ॥
 जैसैं दुम शोभै सहकार । तैसैं ज्ञान गुणनके भार ॥६७॥
 यातैं प्रथम मंजरिका कही । इहि दुम शिवफल लागहि सही ॥
 जाके घट समकित परकाश । ताके ये गुन होंहि निवास ॥६८॥
 सम्यग्दर्श लहै जो जीव । सो शिवरूपी कह्यो सदीव ॥
 तातैं सम्यक ज्ञान प्रमान । जातैं शिवफल होय निदान ६९

दोहा.

कही ज्ञानगुण मंजरी, जिनमतके अनुसार ॥
 जो समुझहिं ओ सरदहैं, ते पावहिं भवपार ॥ ७० ॥
 यामें निज आतम कथा, आतमगुण विस्तार ॥
 तातैं याहि निहारिये, लहिये आतम सार ॥ ७१ ॥
 जो गुण सिद्ध महंतके, ते गुण निजमहिं जान ॥
 भैया निश्चय निरखतें, फेर रंच जिनमान ॥ ७२ ॥
 सत्रहसो चालीसके, उत्तम माघ हिमंत ॥
 आदि पक्ष दशमी सुदिन, मंगल कह्यो सिद्धंत ॥ ७३ ॥

इति गुणमंजरिका.

अथ लोकाकाशक्षेत्रपरिमाणकथन लिख्यते ।

चौपाई.

प्रणमूं परमदेवके पाय । मन वच भावसहित शिर नाय ॥
 लोक क्षेत्रकी गिनती कहूं । राजू भेद जहाँतें लहूं ॥ १ ॥
 घनाकार सब कह्यो वखान । त्रयशत अरु तेतालिस मान ॥
 ताके भेद कहूं समुझाय । श्री जिन आगमके जु पसाय ॥ २ ॥
 सिद्ध शिलातक गिनती करी । ऊपरकी हद इह संग धरी ॥
 अहमिंदर नवग्रीव विमान । तिहँ ऊपरके सबही जान ॥ ३ ॥
 राजू ग्यारह घन आकार । देख्यो जिनवर ज्ञानमझार ॥
 ताके तरहिं सुरग वसु जान । द्विकचतुकी संख्या उर आन ॥ ४ ॥
 ऊपरितें तरको दृग देहु । गनती भेद समझ कर लेहु ॥
 साढे अठ रज्जू द्विक एक । घनाकार सब लहहु विशेष ॥ ५ ॥
 दूजो द्विक साढे दश होय । तीजो साढे बारह सोय ॥
 चौथो साढे चउदह कह्यो । द्विकचतु भेद जिनागम लह्यो ६
 दू द्विक और कहूं विस्तार । ते राजू तेतीस निहार ॥
 साढे शोरह इक इक जान । इम तेतीस दुहं द्विक मान ॥ ७ ॥
 सनत्कुमार महेन्द्र सुदीस । इन दुहुके साढे सैंतीस ॥
 अव सुधर्म ईशान विमान । तिर्यक् लोक याहि महिजान ॥ ८ ॥
 मेरु चूलिकातें गन लही । राजू साढे उनइस कही ॥
 सब गिनती ऊपरकी दीस । राजू इक सो सैंतालीस ॥ ९ ॥
 अव नीचें कहूं क्रमसैं गुनो । जाके भेद जथारथ सुणो ॥
 मेरु तलवासैं गण लेह । सात नरकको वरणन जेह ॥ १० ॥

पहिली रतनप्रभा ते जान । दशराजू तिह कही बखान ॥
 दूजी शोलह राजू कही । तीजी नरक वीसद्वै लही ॥११॥
 चौथी नरक अठाइस राजु । तिह निकस्यो जिय सारे काजु ॥
 पंचमि नरक राजु चौतीश । छट्टी चालिस कही जगदीश ॥१२॥
 नरक सातवींकी मरजाद । कही छियालिस कथन अनाद ॥
 लोक अन्त सबतैं जो तरैं । सो सब नर्क सातवीं धरैं ॥१३॥
 सात नरककी गिनती जान । शतइक और छयानवें मान ॥
 सब राजू देखे जगदीस । भये तीनसैं तैंतालीस ॥१४॥
 घनाकार सब भुवनहिं जान । जंचौ राजू चवदह मान ॥
 सागर स्वयंभुरमणहिं जोय । तिहँवानहि राजूइक होय ॥१५॥
 पुरुषाकार कह्यो सब लोक । ताके परैं सु और अलोक ॥
 इहि मधि त्रसनाड़ी इक जान । ताके भेद कहूं उर आन ॥१६॥
 चवदह राजू कही उत्तंग । राजू इक पोली सरवंग ॥
 तामहिं त्रसथावरको थान । याके परैं सु थावर मान ॥१७॥
 इहविधि कही जिनागमभाख । ग्रंथ त्रिलोकसारकी साख ॥
 धर्म ध्यानको जानहु भेद । चर्णचतुर्थ लखहु विन खेद ॥१८॥
 इतनो है यो लोकाकाश । छहों दरवको यामें वास ॥
 चेतन ज्ञान दरश गुण धरै । और पंथ जड़ता अनुसरै ॥१९॥
 रहै सदा इहि लोकमझार । तू 'भैया' निजरूप निहार ॥
 सत्रहसौ चालीसै सही । पौष सुदी पूनम रवि कही ॥२०॥

इति लोकाकाशक्षेत्रपरिमाणकथनं ॥

अथ मधुविन्दुककी चौपाई लिख्यते ।

दोहा.

वंदों जिनवर जगत गुरु, वंदों सिद्ध महंत ॥
 वंदों साधू पुरुष सब, वंदों शुद्ध सिद्धंत ॥ १ ॥
 मधु विन्दुककी चौपाई, कहूं ग्रन्थ अनुसार ॥
 दुख अरु सुखके उदधिको, लहिये पारावार ॥ २ ॥
 काल अनादि गयो इहां, वसत यही जगमाहिं ॥
 दुख अरु सुखसों भिन्नता, जानी कवहूं नाहिं ॥ ३ ॥
 विषयसुखनको सुख लख्यो, तिहूँ दुख लख्यो अपार ॥
 सो जानै जिन केवली, हूँ अनंत विस्तार ॥ ४ ॥

चौपाई.

इक दिन भविजन मिले सुभाय । आवत देख्यो श्रीमुनिराय ॥
 अट्टाईश मूल गुण धरै । तास चरण भवि बंदन करै ॥ ५ ॥
 विनती करहि दूहंकर जोर । हे प्रभु भवबंधनतैं छोर ॥
 तव मुनिराज धरमहित जान । जिन आगमकछु कहहिं बखान ६

दोहा.

भविक सुनहु उपदेश तुम, मन वच दृढकर काय ॥
 ज्यों पावहु निज सम्पदा, संशय वेग विलाय ॥ ७ ॥
 इक दृष्टांत विचारिकें, कहैं सुगुरु उपदेश ॥
 सुनहु भविक थिरतासहित, तज अज्ञान कलेश ॥ ८ ॥

चौपाई.

एक पुरुष वन भूल्यो परयो । दूंदत दूंदत सब निशि फिरयो ॥
 चहुं दिश अटवी झंझाकार । हीड़त कहूं नहिं पावै पार ॥ ९ ॥

महा भयानक सब वनराय । भटकत फिरै कछू न वसाय ॥
 जित देखहि क्षित कानन जोर । परयो महा संकट तिहँ घोर ॥ १० ॥
 सोचत बाघ सिंह जिनिं खाय । जिनिं कहुं वैरी पकर न जाय ॥
 इहि विधि दुखित महावन धाय । तिहँ थानक गजनिकस्यो आय ॥ ११ ॥
 ताकी दृष्टि परयो नर जहां । ता पकरन गज दोरयो तहां ॥
 यह भाग्यो आगेको जाय । पाछैं गज आवत है धाय ॥ १२ ॥
 जो यह देखै दृष्टि निहार । यह तो रह्यो डगन द्वै चार ॥
 अब मैं भागि कहां लों जाउँ । देख्यो कूप एक तिहँ ठाउँ ॥ १३ ॥
 परयो कूप मधि यहै विचार । गज पकरै तो डारै मार ॥
 कूप मध्य बड़ ऊग्यो एक । ताकी शाखा फली अनेक ॥ १४ ॥
 तामहिं मधुमक्षिनको थान । छत्ता एक लग्यो पहचान ॥
 बरकी जटा लटकै तहँ रही । कूप मध्य गिरते कर गही ॥ १५ ॥
 दोउकर पकर रह्यो तिहँ जोर । नीचें देखै दृष्टि मरोर ॥
 कूप मध्य अजगर विकराल । मुह फारे वैठ्यो जिम काल ॥ १६ ॥
 वह निरखहि आवै मुख मांहि । तो फिर भाजि कहां लों जाहि ॥
 चार कौनमें नाग जु चार । बैठे तहां तेहु मुखफार ॥ १७ ॥
 कब यह नर गिर है इह ठौर । गिरतें याको कीजे कौर ॥
 नीचें पंच सर्प लखि डरयो । तब ऊपरको मस्तक करयो ॥ १८ ॥
 देखै बटकी जटै कहँ दोय । ऊँदैंरजुग काटत है सोय ॥
 इक उज्ज्वल इक श्याम शरीर । काटहि जटानही तिहँ पीर ॥ १९ ॥
 कूप कंठ गज शुंड प्रकार । झकझोरै वरकी बहु डार ॥
 पकर निशुंड चलावै ताहि । यह तो रह्यो दूर द्रुम साहि ॥ २० ॥

वरकी शाखा हाली सबै । मधुकी बूंद गिरी इक तबै ॥
 इह राख्यो तवहीं मुखफार । आवत ग्रहण करी निरधार ॥ २१ ॥
 झकझोरत माखी उड़ि जेह । आय लगी सब याकी देह ॥
 काँटै तन पै वेदै नाहिं । मन लाग्यो मधु छत्ता माहिं ॥ २२ ॥
 एक बूंद जव मुख महिं परै । तव दूजीपै मनसा करै ॥
 लगी दृष्टि छत्तासों जाय । दुख संकटसों नहिं अकुलाय ॥ २३ ॥
 सोरठा.

तव तिहँ थानक कोय, विद्याधर आकाशमें ॥
 जाहिं पुरुष तिय दोय, बैठे निजहि विमानमें ॥ २४ ॥
 तिय निरख्यो तिहँ वार, कोउ पुरुष संकट परयो ॥
 हे पिय ! दुखहिं निवार, निराधार नर कूपमें ॥ २५ ॥
 दुख अपार अति घोर, परयो पुरुष संकट सहै ॥
 कछु न चलत है जोर, हे प्रभु याहि निवारिये ॥ २६ ॥
 कहै विद्याधर वैन, सुनहु प्रिया तुम सत्य यह ॥
 यह मानें इत चैन, निकसनको क्योंही नहीं ॥ २७ ॥
 दोहा.

प्रिया कहै प्रियतम सुनो, किहँ सुख मान्यो चैन ।
 यह अटवी यह कूप गज, अहि मखि मूसा ऐन ॥ २८ ॥
 कहै विद्याधर प्रिये सुनो, मधु विंदव रस लीन ॥
 यह सुख मान रच्यो यहां, दुख अंगीकृत कीन ॥ २९ ॥
 ए सब दुखहिं विचारके, मधुविंदवके स्वाद ॥
 लग्यो मूढ संकट सहै, कहियो सबही बाद ॥ ३० ॥
 बहुर प्रिया कहै सुनहु प्रिय, ऐसी कबहुँ न होय ॥
 एते संकट जो सहै, सो सुख मानै कोय ॥ ३१ ॥

तातैं याको काढियें, कहै तिया समुझाय ॥
 विद्याधर कहै हट तजहु, पंथ अकारथ जाय ॥ ३२ ॥
 तीय कहै चलवो नहीं, इहि विन काढे आज ॥
 स्वामि बडो उपकार है, कीजे उत्तम काज ॥ ३३ ॥
 तिय हटविद्याधर तहां, उतरयो निजहिं विमान ॥
 आय कह्यो तिहँ नर प्रतैं, निकसि निकसि अज्ञान ॥ ३४ ॥
 आवै तो हम बांह गहि, तोकों लेय निकासि ॥
 निज विमान वैठायकें, पहुंचावैं तो वास ॥ ३५ ॥

चौपाई.

ऐसे वचन सुनत निज कान । बोलैं पुरुष सुनहु हितवान ॥
 एक बूंद छत्तासो खिरै । सो अवके मेरे मुख गिरै ॥ ३६ ॥
 ताको अवहीं चख सरवंग । तब मैं चलूं तुमारे संग ॥
 जब वह बूंद परी मुख माहिं । तब दूजीपरमन ललचाहिं ॥ ३७ ॥
 अब यह जो आवैगी सही । तो चलहूं कछु धोको नही ॥
 दूजी बूंद परी मुख जान । तब तीजीपर करी पिछान ॥ ३८ ॥
 इह विधि बूंद स्वादके काज । लाग रह्यो नहिं कछु इलाज ॥
 विद्याधर दै हाँक पुकार । निकसै नहीं चल्यो तब हारा ॥ ३९ ॥
 आय विमान भयो असवार । निज थानक पहुंच्यो तिहँवार ॥
 तबही भवि मुनिके नमि पांय । कहा कही प्रभु कह समुझाय ४०
 हम नहिं समुझे यह दृष्टांत । कहहु प्रगट प्रभु सब विरतांत ॥
 को नर को गज को वनकूप । को अहिको बट जटा अनूपा ॥ ४१ ॥
 को ऊंदर को मधुकी बुंद । को माखी जो दे दुखदुंद ॥
 कौन विद्याधर कहो समुझाय । जातैं सब संशय मिट जाय ॥ ४२ ॥

(१) हितैषी.

दोहा.

तव मुनिवर दृष्टांत विधि, कहै भविक समुझाय ॥
सावधान है सुनहु तुम, कहूं कथन गुणगाय ॥ ४३ ॥

चौपाई.

यह संसार महा वन जान । तामहिं भवभ्रम कूप समान ॥
गज जिम काल फिरत निशदीस । तिहँ पकरन कहूं विस्वावीस ४४
वटकी जटा लटकि जो रही । सो आवर्दा जिनवर कही ॥
तिहँ जर काटत मूसा दोय । दिन अरु रैन लखहु तुमसोय ४५
मांखी चूटत ताहि शरीर । सो बहुरोगा दिककी पीर ॥
अजगर परयो कूपके बीच । सो निगोद सवतैं गतिनीच ॥ ४६ ॥
याकी कछु मरजादा नाहिं । काल अनादि रहै इह माहिं ॥
तातैं भिन्न कही इहि ठौर । चहुं गति महितैं भिन्न और ४७
चहुं दिश चारहु महा भुजंग । सो गति चार कही सरवंग ॥
मधुकी बूद विपै सुख जान । जिहँ सुख काजरह्यो हितमान ४८
ज्यों नर त्यों विषयाश्रित जीव । इह विधि संकट सहै सदीव ॥
विद्याधर तहँ सुगुरु समान । दै उपदेश सुनावत कान ॥ ४९ ॥
आवहु तुमहिं निकाशहिं वीर । दूर करहिं दुख संकट भीर ॥
तबहु मूरख मानै नाहिं । मधुकी बूदविपै ललचाहिं ५०
इतनो दुख संकट सह रहै । सुगुरुवचन सुन तज्यो न चहै ॥
तैंसैं ज्ञानहीन जियवंत । ए दुख संकट सहै अनंत ॥ ५१ ॥
विपै सुखन मधुविंदव काज । मानत नाहिं वचन जिनराज ॥
सहत महा दुख संकट घोर । निकसन चलत बधू शिवओर ५२

जिहँ धानक सुख सागर भरे । काल अनंतहु विलसहु खरे ॥
जन्मजरादिक दुख मिट जाय । प्रगटै परमधरम अधिकाय ॥ ५३ ॥
बहुरन कवहु संकट होय । सुख अनंत विलसहु ध्रुवसोय ॥
यह उपदेश कहै मुनिराज । भव्य जीव चेतहु निजकाज ॥ ५४ ॥

दोहा.

सुनके वचन मुनीन्द्रके, भवि चिंत मन माहिं ॥
विषयसुखनसों मगनता, कवहुं कीजे नाहि ॥ ५५ ॥
विषयसुखनकी मगनसों, ये दुख होंहि अपार ॥
तातैं विषय विहंडिये, मन वच क्रम निरधार ॥ ५६ ॥
यह विचार कर भविकजन, वंदत मुनिके पाय ॥
धन्य धन्य तारन तरन, जिन यह पंथ बताय ॥ ५७ ॥
एतो दुख संसारमें, एतो सुख सब जान ॥
इम लखि भैया चेतिये, सुगुरु वचन उरआन ॥ ५८ ॥
सत्रहसौ चालीसके, मारगसिर शित पक्ष ॥
तिथि द्वादशी सुहावनी, भोमवार परतक्ष ॥ ५९ ॥
मधुविंदवकी चौपई, कही ग्रंथ अनुसार ॥
जे समुझै वा सरदहै, ते पावहिं भवपार ॥ ६० ॥

इति मधुविंदवकी चौपई.

अथ सिद्धचतुर्दशी लिख्यते ।

दोहा.

परमदेव परणाम कर, परम सुगुरु आराध ॥
परम ब्रह्म महिमा कहूं, परम धरम गुण साध ॥ १ ॥

कवित्त.

आतम अनोपम है दीसै राग द्वेप विना, देखो भव्यजीव ! तुम
आपमें निहारकैं । कर्मको न अंश कोऊ भर्म को न वंश कोऊ,
जाकी सुद्धताई मैं न और आप टारकैं ॥ जैसो शिव खते वसै तेसो
ब्रह्म इहां लसै, इहां उहां फेर नाहि देखिये विचारकैं । जेई गु-
सिद्धमाहि तेई गुण ब्रह्मपांहि, सिद्ध ब्रह्म फेर नाहि निश्च-
य निरधारकैं ॥ २ ॥ सिद्धकी समान है विराजमान चिदानंद
ताहीको निहार निजरूप मान लीजिये । कर्मको कलंक अंग
पंक ज्यों पखार हरयो, धार निजरूप परभाव त्याग दीजिये ॥
थिरताके सुखको अभ्यास कीजे रैन दिना, अनुभोके रसको सु-
धार भले पीजिये । ज्ञानको प्रकाश भास मित्रकी समान दीसै,
चित्र ज्यों निहार चित ध्यान ऐसो कीजिये ॥ ३ ॥ भाव कर्म
नाम रागद्वेपको बखान्यो जिन, जाको करतार जीव भर्म संग
मानिये । द्रव्यकर्म नाम अष्टकर्मको शरीर कह्यो, ज्ञानावर्णी
आदिसव भेद भलैं जानिये । नोकरम संज्ञातैं शरीर तीन पावत
है, औदारिक वैकीय आहारक प्रमानिये ॥ अंतरालसमै जो अ-
हारविना रहैं जीव, नो करम तहां नाहि याहीतैं बखानिये ॥४॥

सवैया.

लोपहि कर्म हरै दुख भर्म सुधर्म सदा निजरूप निहारो ।
ज्ञानप्रकाश भयो अधनाश, मिथ्यात्व महातम मोह न हारो ॥
चेतनरूप लखो निजमूरत, सूरत सिद्धसमान विचारो ।
ज्ञान अनंत वहै भगवंत, वसै अरि पंकतिसों नित न्यारो ॥५॥

छप्पय छंद.

त्रिविधि कर्मतें भिन्न, भिन्न पररूप परसतें ॥
 विविधि जगतके चिह्न, लखैं निज ज्ञान दरसतें ॥
 वसै आपथल माहिं, सिद्ध समसिद्ध विराजहि ।
 प्रगटहि परम स्वरूप, ताहि उपमा सब छाजहि ॥
 इह विधि अनेक गुणब्रह्ममाहिं, चेतनता निर्मल लसैं ॥
 तस पद त्रिकाल वंदत भविक', शुद्ध स्वभावहि नित वसैं ॥६॥
 अष्टकर्मतें रहित, सहित निज ज्ञान प्राण धर ॥
 चिदानंद भगवान, बसत तिहुं लोक शीसपर ॥
 विलसत सुखजु अनंत, संत ताको नित ध्यावहि ॥
 वेदहि ताहि समान, आयु घट माहिं लखावहि ॥
 इमध्यान करहि निर्मल निरखि, गुणअनंत प्रगटहिं सरव ॥
 तस पद त्रिकाल वंदत भविक', शुद्ध सिद्ध आत्म दरव ॥७॥
 ज्ञान उदित गुण उदित, मुदित भई कर्म कपायें ।
 प्रगटत परम स्वरूप, ताहिं निज लेत लखायें ॥
 देत परिग्रह त्याग, हेत निहचै निज मानत ।
 जानत सिद्ध समान, ताहि उर अंतर ठानत ॥
 सो अविनाशी अविचल दरव, सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम ।
 निर्मल विशुद्ध शास्वत सुधिर, चिदानंद चेतन धरम ॥८॥

कवित्त.

अरे मतवारे जीव जिन मतवारे होहु, जिनमत आन गहो
 जिनमत छोरेकैं । धरम न ध्यान गहो धरमन ध्यान गहो, धरम
 स्वभाव लहो, शक्ति सुफोरकैं ॥ परसों सनेहकरो, परम सनेह

करो, प्रगट गुण गेह करो मोहदल मोरकैं। अष्टा दशदोष हरो, अष्ट कर्म नाश करो, अष्ट गुण भास करो, कहूं कर जोरकैं ॥९॥

वर्णमें न ज्ञान नहि ज्ञान रस पंचनमें, फर्समें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूं गंधमें। रूपमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूं ग्रथनमें, शब्दमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कर्म बंधमें ॥ इनतैं अतीत कोऊ आतम स्वभाव लसै, तहाँ बसै ज्ञान शुद्ध चेतनाके खंधमें ॥ ऐसो वीतरागदेव कह्यो है प्रकाशभेद, ज्ञानवंत पावै ताहि मूढ़ धावै ध्वंधमें ॥१०॥

वीतराग वैन सो तो ऐनसे विराजत है, जाके परकाश निजभास पर लहिये। सूझै पट दर्ब सर्व गुण परजाय भेद, देवगुरु ग्रंथ पंथ सत्य उर गहिये ॥ कर्मको नाश जासैं आतम अभ्यास कह्यो, ध्यानकी हुतास अरिपंकतिको दहिये। खोल दृग देखि रूप अहो अविनाशी भूप, सिद्धकी समान सब तोषैं रिद्ध कहिये ॥११॥

रागकी जु रीतसु तो बड़ी विपरीत कही, दोषकी जु बात सु तो महादुख दात है। इनहीकी संगतिसों कर्मबन्ध करै जीव, इनही संगतिसों नरक निपात है ॥ इनहीकी संगतिसों बसिये निगोद बीच, जाके दुखदाहको न थाह कह्यो जात है। येही जगजाल के फिरावनको बडे भूप, इनहीके त्यागे भव भ्रम न विलात है ॥ १२ ॥

मात्रिक कवित्त.

असी चार आसन मुनिवरके, तामें मुक्ति होनके दोय। पद्मासन खड्गासन कहिये, इनविन मुक्ति होय नहिं कोय ॥ परम दिगम्बर निजरस लीनो, ज्ञान दरश थिरतामय होय। अष्ट कर्मको थान भ्रष्टकर, शिवसंपति विलसत है सोय ॥ १३ ॥

दोहा.

जैसो शिवखेतहि वसै, तैसो या तनमाहिं ॥
निश्चय दृष्टि निहारतैं, फेर रंच कहुं नाहिं ॥ १४ ॥

इति सिद्धचतुर्दशी.

अथ निर्वाणकांडभाषा लिख्यते ।

दोहा.

बीतराग वंदौ सदा, भावसहित शिरनाथ ।
कहूं कांड निर्वाणकी, भाषा विविध वनाय ॥ १ ॥

चौपई.

अष्टापद आदीश्वर स्वामि । वासुपूज्य चंपापुरि नामि ॥
नेमिनाथ स्वामी गिरनार । वंदौ भावभगति उर धार ॥ २ ॥
चर्म तिर्थकर चर्म शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥
शिखरसमेद जिनेश्वर वीस । भावसहित वंदो जगदीस ॥ ३ ॥
वरदत्त औ वर इंद मुनिंद । सायरदत्त आदि गुणवृंद ॥
नगर तारवर मुनि उठे कोड़ । वंदौ भावसहित करजोड़ ॥ ४ ॥
श्रीगिरनार शिखर विख्यात । कोटि बहत्तर अरु सौ सात ॥
संबु प्रद्युम्न कुमार द्वै भाय । अनुरुद्ध आदि नमूं तसपाय ॥ ५ ॥
रामचंद्रके सुत द्वै वीर । लाड नरिंद आदि गुणधीर ॥
पंचकोड़ मुनि मुक्तिमझार । पावागिर वंदौ निरधार ॥ ६ ॥
पांडव तीन द्रविड़ राजान । आठकोड मुनि मुक्तिप्रमान ॥
श्रीशत्रुंजयगिरिके शीस । भावसहित वंदो निशदीस ॥ ७ ॥

(१) साढे तीन करोड़.

जो बलिभद्र मुक्तिमें गये । आठ कोड़ि मुनि औरहिं भये ॥
 श्री गजपंथ शिखर सुविशाल । तिनके चरण नमूं तिहुं काल ॥८॥
 राम हनू सुग्रीव सुडील । गवगवाख्य नील महानील ॥
 कोड़ि निन्याणव मुक्तिप्रमान । तुंगी गिर वंदों धर ध्यान ॥९॥
 नंग अनंग कुमार सुजान । पंचकोड़ि अरु अर्द्ध प्रवान ॥
 मुक्ति गये शिहुनागिरशीस । ते वंदों त्रिभुवनपति ईश ॥१०॥
 रावनके सुत आदि कुमार । मुक्ति भये रेवातट सार ॥
 कोटि पंच अरु लाखपचास । ते वंदो धर परम हुलास ॥११॥
 रेवानदी सिद्धवर कूट । पश्चिम दिशा देह जहँ छूट ॥
 द्वै चक्री दश काम कुमार । औठकोड़ि वंदों भवपार ॥१२॥
 बड़वानी बड़नगर सुचंग । दक्षिण दिशि गिर चूल उत्तंग ॥
 इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण । ते वंदों भवसागर तर्ण ॥१३॥
 सुवरणभद्र आदि मुनि चार । पावागिरिवर शिखरमझार ॥
 चलना नदीतीरके पास । मुक्ति गये वंदों नित तास ॥१४॥
 फलहोड़ी बड़गाम अनूप । पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप ॥
 गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहां । मुक्ति गये वंदों नित तहां ॥१५॥
 बाल महाबाल मुनि दोय । नाग कुमार मिले त्रय होय ॥
 श्रीअष्टापद मुक्ति मझार । ते वंदों नित सुरतसंभार ॥१६॥
 अचला पुरकी दिशा ईशान । तहाँ मेढगिरि नाम प्रधान ॥
 साढे तीन कोटि मुनिराय । तिनके चरणनमूं चितलाय ॥१७॥
 वंशस्थल वनके ढिग होय । पश्चिम दिश कुंथलगिरि सोय ॥
 कुल भूषण देश भूषण नाम । तिनके चरणानि करहुं प्रणाम ॥१८॥

जसरथ राजाके सुत कहे । देश कलिंग पांचसो लहे ॥
 कोटि शिला मुनि कोटि प्रमान । वंदन करों जोर जुग पान ॥१९॥
 समवधारण श्रीपार्श्वजिनंद । रिशंदेह गिरि नयनानंद ॥
 वरदत्तादि पंच ऋषिराज । ते वंदों नित धरम जिहाज ॥२०॥
 तीन लोकके तीरथ जहां । नित प्रति वंदन कीजे तहां ॥
 मन वच भाव सहित शिर नाय । वंदन करें भविक गुण गाय ॥२१॥
 संवत् सत्रहसो इकताल । अश्विन सुदि दशमी सुविशाल ॥
 'भैया' वंदन करहि त्रिकाल । जय निर्वाणकांड गुण माल ॥२२॥
 इति निर्वाणकांडभाषा.

अथ एकादशगुणस्थानपर्यन्तपंथवर्णन लिख्यते ॥

दोहा.

कर्म कलंक खपायकें, भये सिद्ध भगवान ॥
 नित प्रति वंदों भाव धर, जो प्रगटै निज ज्ञान ॥ १ ॥
 कहों पंथ इह जीवके, किहूँ मग आवै जाय ॥
 गुण थानक दश एकलों, धरै जनम मृत भाय ॥ २ ॥
 भव्य राशितैं निकसिकैं, मुक्ति होनके काज ॥
 चढ़हि गिरहि इम पंथमें, अंत होंहि महाराज ॥ ३ ॥

चौपाई.

प्रथम मिथ्यांत नाम गुण थान । उभय भेद ताके परवान ॥
 एक अनादि नाम मिथ्यात । दूजो सादि कह्यो विख्यात ॥४॥
 प्रथम अनादि मिथ्याती जीव । पंथ तीनको धरै सदीव ॥
 चौथे पंचम सप्तम जाय । गिरैतो फिर मिथ्यापुर आया ॥५॥
 सादि मिथ्यात्व जीव जो धरै । पंथ चार ताके विस्तरै ॥

तीजै चौथे पंचम जाय । सप्तम पुरलों पहुँचै धाय ॥ ६ ॥
 अब दूजो सासादन नाम । ताके एक गिरनको धाम ॥
 मिथ्यापुरलों आवै सही । दूजो वाट न याकी कही ॥ ७ ॥
 तीजो मिश्रनाम गुण थान । पंथ दोय याके परमान ॥
 गिरै तो पहिले पुरके माहिं । चढै तो चौथे थानक जाहिं ॥ ८ ॥
 चौथो है अत्रतपुर थान । पंथ पंच भाखे भगवान ॥
 गिरै तो तीजै दूजै जाय । मिथ्यापुरलों पहुँचै आय ॥ ९ ॥
 चढै तो पंचम सप्तम सही । ऐसी महिमा याकी कही ॥
 पंचम देशविरतपुर जान । पंथ पंच ताके उर आन ॥ १० ॥
 गिरै तो चौथे तीजै जाय । अथवा दूजै पहिले भाय ॥
 चढै तो सप्तम पुरके माहिं । इहि थानक अधिके कछु नाहिं ११
 अब षष्ठम परमत्त वखान । ताके पंथ छहों पहिचान ॥
 गिरै तो पंचम चौ त्रिय जाय । दूजै पहिले धरै सुभाय ॥ १२ ॥
 चढै तो सप्तम पुरलों आय । ऐसे भेद कहे जिनराय ॥
 सप्तम अप्रमत्त पुर नाम । पंथ तीन ताके अभिराम ॥ १३ ॥
 गिरै तो छठे पुरलों जाहिं । चढै तो अष्टम पुरके माहिं ॥
 मरन करै चौथे पुर आय । ऐसे भेद कहे समुझाय ॥ १४ ॥
 अष्टम नाम अपूर्व करण । शिवलोचन मधि ताकी धरण ॥
 गिरै तो सप्तम पुरहि अखंड । चढै तो नवमें पुर परचंड ॥ १५ ॥
 मरन करै तो चौथे जाय । ऐसे कथन कह्यो मुनिराय ॥
 नवमों नाम अनिव्रतकर्ण । पंथ तीन ताके विस्तर्ण ॥ १६ ॥
 गिरै तो अष्टम पुरके संग । चढै तो दशमें होय अभंग ॥
 मरन करै चौथे पुर वीच । तोहू भवथिति रहै नगीच ॥ १७ ॥
 सूक्ष्म सांपराय दश कहै । पंथ तीन ताके इम लहै ॥

गिरै तौ नवमें पुरकी वाट । चढै इकादश उपशम घाट ॥१८॥
 मरन करै चौथै पुर सही । ऐसी रीति जिनागम कही ॥
 एकादशम मोह उपशांत । पंथ दोयतिहँ कहै सिद्धांत ॥१९॥
 गिरै तो दशमें पुर निरधार । मरन करै तो चौथै सार ॥
 ऐसे भेद जिनागममाहिं । गोमठसार ग्रंथकी छांहि ॥२०॥
 भाषा करहिं 'भविक' इह हेत । याके पढ़त अर्थ कह देत ॥
 बाल गुपाल पढ़हिं जे जीव । 'भैया' ते सुखलहहिं सदीव ॥२१॥
 इति एकादशगुणस्थानकथनम् ।

अथ कालाष्टक लिख्यते ।

दोहा.

तिहुं पुरके पुरहृत सब, वंदत शीस नवाय ॥
 तिहँ तीर्थकर देवसों, वचत नाहिं यमराय ॥ १ ॥
 जिनकी भ्रूके फरकतें, कंपत सुरनरवृन्द ॥
 तेहु काल छिनमें लये, जो योधा सुर इन्द्र ॥ २ ॥
 जाकी आज्ञामें रहैं, छहों खंडके भूप ॥
 ता चक्रीधरको ग्रसै, काल महा भयरूप ॥ ३ ॥
 नारायण नरलोकमें, महा शूर बलवंत ॥
 तीन खंड आज्ञा वहै, तिनैहु काल ग्रसंत ॥ ४ ॥
 औरहु भूप बलिष्ट जे, वसत याहि जगमाहिं ॥
 तेहु कालकी चालसों, वचत रंच कहुं नाहिं ॥ ५ ॥
 तातैं काल महाबली, करत सवनपै जोर ॥
 धन धन सिधपरमात्मा, जिहँ कीनों इहि भोर ॥ ६ ॥

ऐसे काल बलिष्टको, जो जीतै सो देव ॥
 कहत दास भगवंतको, कीजे ताकी सेव ॥ ७ ॥
 काल वसत जगजालमें, नूतन करत पुरान ॥
 'भैया' जिहँ जग त्यागियो, नमहुं ताहि धर ध्यान ॥ ८ ॥
 इतिकालाष्टक.

अथ उपदेशपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

वीतरागके चरनयुग, बंदो शीस नवाय ॥
 कहुं उपदेशपचीसिका, श्रीगुरुके सुपसाय ॥ १ ॥

चौपाई.

वसत निगोद काल बहु गये । चेतन सावधान नहिं भये ॥
 दिन दश निकस बहुर फिर परना । एते पर एता क्या करना ॥ २ ॥
 अनंत जीवकी एकहि काया । उपजन मरन इकत्र कहाया ॥
 स्वास उसास अठारह मरना । एते पर एता क्या करना ॥ ३ ॥
 अक्षरभाग अनंतम कह्यो । चेतन ज्ञान इहां लों रह्यो ॥
 कौन सकति कर तहां निकरना । एते पर एता क्या करना ॥ ४ ॥
 पृथिवी अप तेऊ अरु वाय । वनस्पतीमें वसै सुभाय ॥
 ऐसी गतिमें दुख बहु भरना । एते पर एता क्या करना ॥ ५ ॥
 केतो काल इहां तोहि गयो । निकसि फेर विकलत्रय भयो ॥
 ताका दुख कछु जाय न बरना । एते पर एता क्या करना ॥ ६ ॥
 पशुपक्षीकी काया पाई । चेतन रहे तहाँ लपटाई ॥
 विना विवेक कहो क्यों तरना । एते पर एता क्या करना ॥ ७ ॥
 इम तिरजंच माहिं दुख सहे । सो दुख किनहुं जाहि न कहे ॥

पाप करमतैं इह गति परना । एते पर एता क्या करना ॥८॥
 फिरहू परे नरकके माहीं । सो दुख कैसें बरनें जाहीं ॥
 क्षेत्र गंधतैं नाक जु सरना । एते पर एता क्या करना ॥९॥
 अग्निसमान भूमि जहँ कही । कितहू शील महा बन रही ॥
 सूरी सेज छिनक नहिं टरना । एते पर एता क्या करना ॥१०॥
 परम अधमीं देव कुमारा । छेदन भेदन करहिं अपारा ॥
 तिनके बसतैं नाहि उवरना । एते पर एता क्या करना ॥११॥
 रंचक सुख जहँ जियको नाहीं । वसत याहि गति नाहिं अघाहीं
 देखत दुष्ट महा भय डरना । एते पर एता क्या करना ॥१२॥
 पुण्ययोग भयो सुर अवतारा । फिरत फिरत इह जगतमझारा ॥
 आवत काल देख थर हरना । एते पर एता क्या करना ॥१३॥
 सुरमंदिर अरु सुखसंयोगा । निशदिन सुख संपतिके भोगा ॥
 छिनइक माहिं तहांति टरना । एते पर एता क्या करना ॥१४॥
 बहु जन्मांतर पुण्य कमाया । तव कहुं लही मनुष परजाया ॥
 तामें लग्यो जरा गद मरना । एते पर एता क्या करना ॥१५॥
 धन जोबन सबही ठकुराई । कर्म योगतैं नौनिधि पाई ॥
 सो स्वपनांतरकासा बरना । एते पर एता क्या करना ॥१६॥
 निशदिन विषय भोग लपटाना । समुझै नाहिं कौन गति जाना ॥
 है छिन काल आयुको चरना । एते पर एता क्या करना ॥१७॥
 इन विषयन केतो दुख दीनों । तबहू तू तेही रस भीनों ॥
 नेक विवेक हूदै नहिं धरना । एते पर एता क्या करना ॥१८॥
 परसंगति केतो दुख पावै । तबहू तोकों लाज न आवै ॥
 वासन संग नीर ज्यों जरना । एते पर एता क्या करना ॥१९॥
 देव धर्म गुरु ग्रंथ न जानें । स्वपरविवेक हूदै नहिं आनें ॥
 क्यों होवै भवसागर तरना । एते पर एता क्या करना ॥२०॥

पांचों इन्द्री अति बटपोरे । परम धर्म धन मूसन हारे ॥
 खांहिं पियहि एतो दुख भरना । एते पर एता क्या करना ॥२१॥
 सिद्ध समान न जाने आपा । तातैं तोहि लगत है पापा ॥
 खोल देख घट पटहिं उधरना । एते पर एता क्या करना ॥२२॥
 श्रीजिनवचन अमल रस वानी । पीवहिं क्यों नहिं मूढ अज्ञानी ॥
 जातैं जन्म जरा मृत हरना । एते पर एता क्या करना ॥२३॥
 जो चेतै तो है यह दावो । नाही बैठे मंगल गावो ॥
 फिर यह नरभव वृक्षन फरना । एते पर एता क्या करना ॥२४॥
 'भैया' विनवहि वारंवारा । चेतन चेत भलो अवतारा ॥
 हूँ दूल्ह शिव नारी वरना । एते पर एता क्या करना ॥२५॥

दोहा.

ज्ञानमयी दर्शन नमयी, चारितमयी स्वभाय ॥
 सो परमात्म ध्याइये, यहै सु मोक्ष उपाय ॥ २६ ॥
 सत्रहसो इकतालके, मारगशिर शितपक्ष ॥
 तिथि शंकर गन लीजिये, श्रीरविवार प्रतक्ष ॥ २७ ॥
 इति उपदेशपचीसिका.

अथ नंदीश्वरद्वीपकी जयमाला ।

दोहा.

बंदों श्रीजिनदेवको, अरु बंदों जिन वैन ॥
 जस प्रसाद इह जीवके, प्रगट होय निज नैन ॥ १ ॥
 श्रीनंदीश्वर द्वीपकी, महिमा अगम अपार ॥
 कहूं तास जय मालिका, जिनमतके अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई.

एक अरब अरु त्रेसठ कोड़ि । लख चौरासी तापरि जोड़ि ॥
 एते योजन महा प्रमान । अष्टमद्वीप नंदीश्वर जान ॥३॥
 तामहि चहुं दिशि शिखरि उत्तंग । तिनको मान कहुं सरवंग ॥
 दिशि पूरव गिरि तेरह सही । ताकी उपमा जाय न कही ॥४॥
 मध्य एक अंजनके रंग । शिखरि उत्तंग वन्यो सरवंग ॥
 सहस चौरासी योजन मान । धूपरवत देख्यो भगवान् ॥ ५ ॥
 ताके चहुं दिशि परवत चार । उज्ज्वल वरन महा सुखकार ॥
 चौसठि सहस उत्तंग जु होय । दधिमुख नाम कहावे सोय ६
 इक इक दधि मुखपरवत तास । द्वै द्वै रतिकर अचल निवास ॥
 इक इक अरुण वरन गिरि मान । सहस चवालिस ऊर्ध्व प्रमान ॥७॥
 इहविधि तेरह गिरिवर गने । ता परि चैत्य अकृत्रिम वने ॥
 इक इक गिरिपर इक प्रासाद । ताकी रचना वनी अनाद ॥ ८ ॥
 इक जिनमंदिरको विस्तार । सुनहु भविक परमागम सार ॥
 गिरिको शिखर वरत तिहिरूप । रत्नमयी प्रासाद अनूप ॥ ९ ॥
 इक चैत्यालय विंव प्रमान । इकसो आठ अनूपम जान ॥
 रत्नमणी सुंदर आकार । धनुष पंचसो ऊर्ध्व उदार ॥१०॥
 इम तेरह पूरव दिशि कहे । ताके भेद जिनागम लहे ॥
 छप्पनसो सोरह विंव सबै । ताकी भावन भाऊ अवै ॥ ११ ॥
 अनंत ज्ञान जो आतमराम । सो प्रगटहि इह मुद्रा धाम ॥
 लोक अलीक विलोकन हार । ता परदेशनि यह आकार ॥१२॥
 अनंत काललों यही स्वरूप । सिद्धालय राजै चिद्रूप ॥

सुख अनंत प्रगटै इहि ध्यान । तातैं जिनप्रतिमा परधान ॥ १३
जिनप्रतिमा जिनवरणे कही । जिन सादृशमें अंतर नहीं ॥
सब सुरवृंद नंदीश्वर जाय । पूजहि तहां विविध धर भाय १४
'भैया' नितप्रति शीस नवाय । वंदन करहि परम गुण गाय ॥
इह ध्यावत निज पावत सही । तौ जयमाल नंदीश्वर कही १५
इति नंदीश्वरजयमाला.

अथ वारहभावना लिख्यते ।

चौपाई.

पंच परम पद वंदन करों । मनवचभावसहित उरधरों ॥
वारह भावन पावन जान । भाऊं आतम गुण पहिचान ॥ १ ॥
थिर नहिं दीखहि नैननि वस्त । देहादिक अरु रूप समस्त ॥
थिर विन नेह कौनसों करों । अधिर देख ममता परिहरों ॥ २ ॥
असरन तोहि सरन नहिं कोय । तीन लोकमहिं दृगधर जोय ॥
कोऊ न तेरो राखन हार । कर्मनवस चेतन निरधार ॥ ३ ॥
अरु संसार भावना एह । परद्रव्यनसों कीजे नेह ॥
तू चेतन वे जड़ सरवंग । तातैं तजहु परायो संग ॥ ४ ॥
एक जीव तूं आप त्रिकाल । ऊरध मध्य भवन पाताल ॥
दूजो कोऊ न तेरी साथ । सदा अकेलो फिरहि अनाथ ॥ ५ ॥
भिन्न सदा पुद्गलतैं रहै । भर्मबुद्धितैं जड़ता गहै ॥
वे रूपी पुद्गलके खंध । तू चिनमूरत सदा अवंध ॥ ६ ॥
अशुचि देख देहादिक अंग । कौन कुवस्तु लगी तो संग ॥
अस्थी मांस रुधिर गद गेह । मलमूतन लखितजहु सनेह ॥ ७ ॥

आस्रव परसों कीजे . प्रीत । तातैं बंध बढहि विपरीत ॥
 पुद्गल तोहि अपनपो नाहिं । तू चेतन वे जड़ सब आंहि ॥ ८ ॥
 संवर परको रोकन भाव । सुख होवेको यही उपाव ॥
 आवे नहीं नये जहां कर्म । पिछले रुकि प्रगटै निजधर्म ॥ ९ ॥
 धिति पूरी है खिर खिर जाहिं । निर्जरभाव अधिक अधिकाहिं ॥
 निर्मल होय चिदानंद आप । मिटै सहज परसंग मिलाप ॥ १० ॥
 लोकमांहि तेरो कछु नाहिं । लोक आन तुम आन लखाहिं ॥
 वह पट दर्शनको सब धाम । तू चिनमूरति आतम राम ॥ ११ ॥
 दुर्लभ पर दर्बनिको भाव । सो तोहि दुर्लभ है सुनि राव ॥
 जो तेरो है ज्ञान अनंत । सो नहिं दुर्लभ सुनो महंत ॥ १२ ॥
 धर्म सुआप स्वभावहि जान । आप स्वभाव धर्म सोई मान ॥
 जब वह धर्म प्रगट तोहि होय । तब परमातम पद लखि सोय ॥ १३ ॥
 येही बारह भावन सार । तीर्थकर भावहिं निरधार ॥
 है वैराग महाव्रत लेहिं । तब भवभ्रमन जलांजुलि देहिं ॥ १४ ॥
 'भैया' भावहु भाव अनूप । भावत होहु चरित शिवभूप ॥
 सुख अनंत विलसहु निशदीस । इम भाख्यो स्वामी जगदीस ॥ १५ ॥

इति बारह भावना.

अथ कर्मबंधके दशभेद लिख्यते ।

दोहा.

श्री जिनचरणाम्बुजप्रतै, वंदहुं शीस नवाय ॥

कहुं कर्मके बंधको, भेद भाव समुझाय ॥ १ ॥

एक प्रकृति दश विधि बंधै, भिन्नभिन्न तंस नाम ॥

गुण लच्छन वरनन सुने, जागहिं आतम राम ॥ २ ॥
 बन्धसमुच्चय भेद ये, उत्कर्षण जु बढाय ॥
 शंकरमन औरहि लसै, अपकर्षण घट जाय ॥ ३ ॥
 लावै निकट उदीरणा, सत्ता उदय करंत ॥
 उपसम और निधत्त लखि, कर्म निकांचित अंत ॥ ४ ॥

चौपाई.

मिथ्या अव्रत योग कपाय । बंध होय चहुं परतैं आय ॥
 धिति अनु भाग प्रकृति परदेश । ए बंधन विधि भेद विशेष ॥ ५ ॥
 प्रथमहि बंध प्रकृति जो होय । समुचैबन्ध कहावै सोय ॥
 दूजो उत्कर्षण बंध एह । धितहिं बढाय करै बहु जेह ॥ ६ ॥
 तीजो संकरमण जु कहाय । औरकी और प्रकृति हो जाय ॥
 गतिविन और करमपैं कही । बंध उदय नाना विधि लही ॥ ७ ॥
 चौथो अपकर्षण इम थाय । बंध घटै अथवा गल जाय ॥
 पंचम करन उदीरण हेर । ल्यावै निकट उदयमें घेर ॥ ८ ॥
 सत्ता अपनी लिये वसंत । पष्ठम भेद यहै विरतंत ॥
 सप्तम भेद उदय जे देय । धिति पूरी कर बंध खिरेय ॥ ९ ॥
 अष्टम उपसम नाम कहाय । जहां उदीरन बल न बसाय ॥
 नवमों भेद निधत्त जु सोय । उदीरन संक्रमणन होय ॥ १० ॥
 दशमों बंध निकांचित जहां । धिति नहीं बढै घटै नहिं तहां ॥
 उदीरण संक्रमणन और । जिम बंध्यो रस दै तिन ठौर ॥ ११ ॥
 ए दश भेद जिनागम लहे । गोमठसार ग्रंथमें कहे ॥
 समझै धारै जे उर माहिं । तिनके चित्त बिकलता नाहिं ॥ १२ ॥
 गुण थानक पै जहां जो होय । आगम देख विलोकहु सोय ॥
 सब संशय जियके मिट जाय । निर्मल होय चिदात्मराय ॥ १३ ॥

बंध सकल पुद्गल परपंच । चेतन माहिं न दीसै रंच ॥
 लोक अलोक विलोकनवंत । 'भैया' वह पद प्रगट करंत ॥ १४ ॥
 दोहा.

ये दश भेद लखे लखहिं, चिदानंद भगवान ॥
 जामें सुख सब सास्वते, वेदहु सिद्ध समान ॥ १५ ॥
 इति कर्मबंधके दशभेदवर्णन ।

अथ सप्तभंगीवाणी लिख्यते.

दोहा.

बंदों श्रीजिनदेवको, बंदों सिद्ध महंत ॥
 बंदों केवल ज्ञान जो, लोक अलोक लखंत ॥ १ ॥
 सप्तभंगवाणी कहूं, जिनआगम अनुसार ॥
 जाके समुझत समझिये, नीके भेद विचार ॥ २ ॥
 चौपाई.

अस्ति नास्ति गुण लच्छनवंत । प्रथम दरब यह भेद धरंत ॥
 ये गुण सिद्ध करनके काज । सप्त भंग भाखे मुनिराज ॥ ३ ॥
 प्रथम द्रव्य अस्ति नय एह । नास्ति कहै दूजी नय जेह ॥
 तीजी अस्तिनास्ति निहार । चौथी अवक्तव्य नय धार ॥ ४ ॥
 पंचमि अस्तिअवक्तव्य कही । छट्टी नास्तिअक्तव्य लही ॥
 सप्तमि अस्तिनास्तिअवक्तव्य । इनके भेद कहूं कछु अब्ब ॥ ५ ॥
 अस्ति दरबको मूल स्वभाव । नास्ति परणम निपट निनाव ॥
 अथवा और दरब सो नाहिं । ताहि उपेक्षा नाम कहाहिं ॥ ६ ॥
 अस्तिनास्ति गुण एकहि माहिं । दुहुगुण द्रवलच्छन ठहिराहिं ॥
 अस्तिनास्ति विन दर्व न होय । नय साधेतैं भ्रमनहिं कोय ॥ ७ ॥

द्रव्यगुण वचननि कह्यो न जाय। वचन अगोचर वस्तु स्वभाय ॥
 जो कहुं एक अस्तिता सही। तौ दूजी नय लागै नही ॥ ८ ॥
 जो कहुं नास्तिक गुणदोष माहिं। तौ अस्तिकता कैसें नाहिं ॥
 अस्ति नास्ति दोष एकहि वेर। कही न जाय वचनको फेर ॥ ९ ॥
 दुहूको एक विचार न होय। इक आगें इक पीछें जोय ॥
 कोउ गुण आगें पीछें नाहिं। दोउ गुण एक समयके माहिं १०
 तातैं वचन अगोचर दर्ब। सातों नय भाखी ए सर्व ॥
 नय समुझैतैं वस्तु प्रमान। नय समझे जिय सम्यकवान ११
 नय नहिं लखै मिथ्याती जीव। तातैं भ्रामक रहै सदीव ॥
 'भैया' जे नय जानहिं भेद। तिनके मिटहि सकल भ्रमखेद ॥
 इति सप्तमंगीवाणी.

अथ सुबुद्धिचौवीसी लिख्यते ।

दोहा.

चरनकमल जिनदेवके, बंदों शीस नवाय ॥
 कहूं सुबुद्धिचौवीसिके, कछु कवित्त गुण गाय ॥ १ ॥
 कवित्त.

निर्वाण सागर महासाधुसु विमलप्रभ, शुद्धप्रभ श्रीधर
 जिनेश्वर नमीजिये। सुदत्त अमलप्रभ उद्धर अङ्गिर सिन्धु
 सन्मति पुष्पांजलिके चर्णचित दीजिये ॥ शिवगण उत्साह ज्ञानेश्वर
 परमेश्वर, विमलेश्वर यथार्थ नाम नित लीजिये। यशोधर कृष्ण
 ज्ञान शुद्धमति सिरीभद्र, अतिक्रान्त शान्तपद नमस्कार कीजिये २
 महापद्म सुरदेव सुप्रभ जु स्वयंप्रभ, सर्वायुध जयदेव

चित्तमें चितारिये । उदैदेव प्रभादेव श्रीउदंक प्रश्नकीर्त्त,
जयकीर्त्त पूर्णबुद्धि हिरदै निहारिये ॥ निःकपाय विमलप्रभ
विपुल निर्मल चित्र; गुप्त समाधिगुप्त नाम नित धारिये ।
स्वयंभू कंदर्प जयनाथ विमलसु देवपाल अनंतवीर्य चौबीसी
आगम जुहारिये ॥ ३ ॥

पंच परम इष्ट सार महामंत्र नमस्कार, जपै जीव लहै पार
सागर भौ तीरको । रिद्धको भरै भंडार सिद्धको सुपंथ सार,
लब्धिको अनोपचार सार शुद्ध हीरको ॥ कष्टको करै निवारदुष्ट
दूर होंहि छार, पुष्ट परम ब्रह्मद्वार सुष्ठु शुद्ध धीरको । पापको
करै प्रहार अष्टकर्म जैतवार, भव्यको यहै आधार ज्ञान बल वीरको ॥ ४ ॥

महा मंत्र यहै सार पंच परम नमस्कार, भौ जल उतारै पार
भव्यको आधार है । विघ्नको विनाश करै, पापकर्म नाश करै ।
आत्म प्रकाश करै पूरबको सार है ॥ दुख चकचूर करै, दुर्जन-
को दूर करै, सुख भरपूर करै परम उदार है । तिहूं लोक तार-
नको आत्मा सुधारनको, ज्ञान विस्तारनको यहै नमस्कार है ॥ ५ ॥

जीव द्रव्य एक देख्यो दूसरो अजीव द्रव्य, गुण परजाय
लिये सवै विद्यमान है । देख्यो ज्ञान मधि जिनवर श्री वृषभ नाथ,
ताके भेद कहते अनेकही विनान है ॥ देवनके इन्द्र जिते तिनके
समूह मिले, बंदै नित्य भाव धर सदा ये विधान है । ताको
सदा हमहु प्रणाम शीस नाथ करै, जाके गुणधारे मोक्ष मारग
निदान है ॥ ६ ॥

अनङ्गशेखर (३२ वर्ष. लघु गुरुके क्रमसे)

नमामि पंच नामको सुध्याय आप धामको, विडार मोह का-
मको सुरामकी रटा लई । कुराग दोष टारकें कषायको निवारकें,

स्वरूप शुद्ध धारिके निहारके सुधामई ॥ अनंत ज्ञान भानसों कि
चेतना निधानसों, कि सिद्धकी समानसों सुधार ठीक यों दई । सु-
बुद्धि ऐसैं आयके अवंधको दिखायके, चटाक चित्त लायके
झटाक झूठ रवै गई ॥ ७ ॥

प्रकृति आदि सातकी जहां तै ताहि घातकी, तौ चिंता कौन
घातकी मिथ्यात्वकी गढी ढई । लखी सुजात गातकी शरीर सात
घातकी, सुयामें काहु भांतिकी न चेतना कहूं भई ॥ अंधेरी भेट
रातकी सुजानी घात प्रातकी, प्रबानी जीव जातिकी सुआप चे-
तना मई । सुबुद्धि ऐसैं आयके अवंधको दिखायके, चटाक चित्त
लायके झटाक झूठ रवै गई ॥ ८ ॥

कटाक कर्म तोरके छटाक गांठि छोरके, पटाक पाप मोरके
तटाक दै मृषा गई । चटाक चिह्न जानिके, झटाक हीय आनके
नटाकि नृत्य भानके खटाकि नै खरी ठई ॥ घटाके घोर फारिके,
तटाक बंध टारके अटाके राम धारके रटाक रामकी जई । ग-
टाक शुद्ध पानको हटाकि आन आनको, घटाकि आप थानको
सटाक शयौबधू लई ॥ ९ ॥

मनहरण. (३१ वर्ण)

केऊ फिरैं कानफटा, केऊ शीस धरैं जटा, केऊ लिये भस्म
वटा भूले भटकत हैं । केऊ तज जाहिं अटा, केऊ घेरें चेरी चटा, केऊ
पटै पट केऊ धूम गटकत हैं ॥ केऊ तन किये लटा, केऊ महा
दीसैं कटा केऊ, तरतटा केऊ रसा लटकत हैं । भ्रम भावतैं न
हटा हिये काम नाही घटा, विपै सुख रटा साथ हाथ पटकत हैं ॥ १०

छप्पय.

दुविधि परिग्रह त्याग, त्याग पुनि प्रकृति पंच दश ।

गहहिं महा व्रत भार, लहहिं निज सार शुद्ध रस ॥
 धरहिं सुध्यान प्रधान, ज्ञान अमृत रस चखहिं ।
 सहहिं परीषह जोर, व्रत निज नीके रक्खहिं ॥
 पुनि चढहिं श्रेणि गुण थान पथ, केवल पद प्रापति करहिं ।
 तस चरण कमल बंदन करत, पाप पुंज पंकति हरहिं ॥ ११ ॥

कवित्त. (मनहरण)

भरमकी रीति भानी परमसों प्रीति ठानी, धरमकी बात जानी
 ध्यावत धरी धरी । जिनकी बखानी वानी सोई उर नीके आनी,
 निहचै ठहरानी दृढ हैकें खरी खरी ॥ निज निधि पहिचानी तव
 भयौ ब्रह्म ज्ञानी, शिव लोककी निशानी आपमें धरी धरी । भौ
 थिति विलानी अरि सत्ता जु हठानी, तब भयो शुद्ध प्राणी जिन
 वैसी जे करी करी ॥ १२ ॥

तीनसै तेताल राजु लोकको प्रमान कह्यो, घनाकार गनतीको
 ऐसो उर आनिये । ऊंचो राजू चवदह देख्यो जिन राज जूने,
 तामे राजू एक पोलो पवन प्रवानिये ॥ तामें है निगोद राशि
 भरी घृतघट जैसैं, उभै भेद ताके नित इतर सु जानिये । तामें
 सों निकसि व्यवहार राशि चढै जीव, केई होहिं सिद्ध केई
 जंगमें बखानिये ॥ १३ ॥

छप्पय.

जो जानहिं सो जीव, जीव विन और न जानें ।

जो मानहिं सो जीव, जीव विन और न मानें ॥

जो देखहिं सो जीव, जीव विन और न देखै ।

जो जीवहिं सो जीव, जीव गुण यहै विसेखै ॥

महिमा निधान अनुभूत युत, गुण अनंत निर्मल लसै ।
सो जीव द्रव्य पेंखंत भवि, सिद्ध खेत सहजहिं वसै ॥ १४ ॥

कवित्त.

अचेतनकी देहरी न कीजे तासों नेहरी, ओगुनकी गेहरी
परम दुख भरी है । याहीके सनेहरी न आवें कर्म छेहरी सु, पावें दु-
ख तेहरी जे याकी प्रीति करी है ॥ अनादि लगी जेहरी जु
देखतही खेहरी तू, यामें कहा लेहरी कुरोगनकी दरी है । काम
गजकेहरी सुराग द्वेपके हरी तू, तामें दृग देहरी जो मिथ्यामति
हरी है ॥ १५ ॥

सवैया.

ज्ञान प्रकाश भयो जिनदेवको, इंद्रसु आय मिले जु तहांई ।
रूपसुवर्ण महाद्युति रत्नके, कोट रचे त्रै अनादिकी नाई ॥
बीस हजार जु पैड़ी विराजत, तापैं चढ्यो तिरलोक गुसाई ।
देखके लोक कहै अचनीपर, सिंधु चढ्यो असमानके ताई ॥ १६ ॥
नीव धरै शिवमंदिरकी, उरमें कितनी उकतैं उपजावै ।
ज्ञानप्रकाश करै अति निर्मल, ऊरधकी मति यों चित लावै ॥
इन्द्रिन जीतकें प्रीति करै, परमेश्वरसों मन चाह लगावे ।
देखै निहार विचार यहै, करमें करनी महाराज कहावै ॥ १७ ॥
तोहि इहां रहियो कहु केतक, पंथमे प्रीति किये सुख स्वै है ।
पोपत जाहिं पियारीसु जानकें, सो तौ नियारीये होतन छै है ॥
तू इम जानत है तनही मम, सो भ्रम दूर करो दुख द्वै है ।
देह सनेह करै मत हंस, गई कर जाहिं निवाहन ह्वै है ॥ १८ ॥

कवित्त.

मृग मीन सुजनसों अकारन वैर करै, ऐसे जगमाहिं जीव

विधना बनाये हैं । काननमें तृन खाहिं दूर जल पीन जाहिं,
बसै बनमाहिं ताहि मारनको धाये हैं ॥ जल माहिं मीन रहै
काहूँ न कहूँ कहै, ताको जाय पापी जीव नाहक सताये हैं ।
सज्जन सन्तोष धरै काहूँ न वैर करै, ताको देख दुष्ट जीव क्रोध
उपजाये हैं ॥ १९ ॥

अहिसितिपार्श्वनाथकी स्तुति कवित्त.

आनंदको कंद किधों पूनमको चंद किधों, देखिये दिनंद
ऐसो नंद अश्वसेनको । करमको हरै फंद भ्रमको करै निकंद, चूरै
दुख इंद्र सुख पूरै महा चैनको ॥ सेवत सुरिंद गुनगावत नरिंद
भैया, ध्यावत मुनिंद तेहू पावै सुख ऐनको । ऐसो जिन चंद करै
छिनमें सुछंद सुतौ, ऐक्षितको इंद्र पार्श्व पूजों प्रभु जैनको ॥ २० ॥

कोऊ कहै सूरसोमदेव है प्रत्यक्ष दोऊ, कोउ कहै रामचंद्र
राखै आवागौनसों । कोऊ कहै ब्रह्मा बडो सृष्टिको करैया यहै,
कोऊ कहै महादेव उपज्यो न जोनसों ॥ कोऊ कहै कृष्ण सब
जीव प्रतिपाल करै, कोउ लागि रहे हैं भवानीजीके भौनसों ।
वही उपख्यान साचो देखिये जहाँन वीचि, वेइयाघर पूत भयो
बाप कहै कानसों ॥ २१ ॥

वीतराग नामसेती काम सब होंहि नीके, वीतराग नामसेती
धामधन भरिये । वीतराग नामसेती विघन विलाय जाँय, वीत

(१) यह कवित्त आगे सुपंथ कुपंथ पचीसीमें भी आया है. इसका कारण ऐसा
मालूम होता है कि इस सुबुद्धि चौबीसीके आदिमें भूतभविष्यत दो चौबीसीके नमस्का-
रके दो कवित्त हैं. इनके बीचमें वर्तमान चौबीसीको नमस्कार करनेका कवित्त भी
मैयाजीने अवश्य बनाया होगा परन्तु लेखकोंकी भूलसे कदाचित्त छुट जानेसे किसी एक
महात्माने यह २१ वाँ कवित्त रखकर २४ की संख्या पूरी की होगी. अन्यथा दोजगह एकही
कवित्तका होना असंभव है ।

राग नामसेती भवसिंधु तरिये ॥ वीतराग नामसेती परम प-
वित्र हूजे, वीतराग नामसेती शिववधू वरिये । वीतराग नामसम
हितू नाहिं दूजो कोऊ, वीतराग नाम नित हिरदैमें धरिये ॥२२॥

श्रीराणापुरमंदिरका वर्णन—

देख जिनमुद्रा निजरूपको स्वरूप गहै, रागद्वेषमोहको बहाय
डारै पलमें । लोकालोकव्यापी ब्रह्म कर्मसों अवंध वेद, सिद्धको
स्वभाव सीख ध्यावे शुद्ध थलमें ॥ ऐसे वीतरागजूके विंव हैं
विराजमान, भव्यजीव लहै ज्ञान चेतनके दलमें । मांझनी ओ
मंडपकी रचना अनूप बनी, राणापुर रत्न सम देख्यो पुण्य
फलमें ॥ २३ ॥

सुबुधि प्रकाशमें सु आत्म विलासमें सु, थिरता अभ्यासमें
सुज्ञानको निवास है । ऊरधकी रीतिमें जिनेशकी प्रतीतिमें सु, कर्म-
नकी जीतमें अनेक सुख भास है ॥ चिदानंद ध्यावतही निज
पद पावतही, द्रव्यके लखावतही देख्यो सब पास है । वीतराग
वानी कहै सदा ब्रह्म ऐसे भास, सुखमें सदा निवास पूरन प्रकाश
है ॥ २४ ॥

दोहा.

यह सुबुद्धि चौबीसिका, रची भगवतीदास ॥
जे नर पढ़हिं विवेकसों, ते पावहिं शिववास ॥ २५ ॥
इति श्रीसुबुद्धि चौबीसी.

अथ अकृत्रिमचैत्यालयकी जयमाला ।

चौपाई.

प्रणमहुं परम देवके पाय । मन वच भाव सहित शिरनाय ॥

अकृत्रिम जिनमंदिर जहां । नितप्रति वंदन कीजे तहां ॥ १ ॥

प्रथम पताल लोकविस्तार । दश जातिनके देव कुमार ॥

तिनके भवन भवन प्रति जोय । एक एक जिनमंदिर होय ॥ २ ॥

असुर कुमारनके परमान । चौसठ लाख चैत्य भगवान ॥

नाग कुमारनके इम भाख । जिनमंदिर चौरासी लाख ॥ ३ ॥

हेम कुमारनके परतक्ष । जिनमंदिर हैं बहतर लक्ष ॥

विदुत कुमारनके भवनाल । लक्ष छिहत्तर नमूं त्रिकाल ॥ ४ ॥

सुपर्ण कुमारनके सब जान । लक्ष बहत्तर चैत्य प्रमान ॥

अगनि कुमारनके प्रासाद । लक्ष छिहत्तर बने अनाद ॥ ५ ॥

बात कुमार भवन जिनगेह । लक्ष छिहत्तर बंदहुं तेह ॥

उदधि कुमार अनोपमधाम । लक्ष छिहत्तर करूं प्रणाम ॥ ६ ॥

दीप कुमार देवके नांव । लक्ष छिहत्तर नमूं तिहैं ठांव ॥

लक्ष छानवें दिक्क कुमार । जिनमंदिर सो है जैकार ॥ ७ ॥

ये दश भवन कोटिजहैंसात । लक्ष बहत्तर कहे विख्यात ॥

तिन जिनमंदिरको त्रैकाल । वंदन करूं भवन पाताल ॥ ८ ॥

मध्य लोकजिन चैत्य प्रमान । तिनप्रति बंदों मनधर ध्यान ॥

पंचमेरु अस्सी जिन भौन । तिनकी महिमा बरने कौन ॥ ९ ॥

बीस बहुर गजदंत निहार । तहां नमूं जिन चैत्य चितार ॥

तीस कुलाचल पर्वत शीस । जिन मंदिर बंदों निशदीस ॥ १० ॥

विजयारध पर्वतपर कहे । जिन मंदिर सौशत्तर लहे ॥

शुरद्रुमन दश चैत्य प्रमान । वंदन करों जोर जुगपान ॥ ११ ॥

श्रीवक्षार गिरहिं उर धरों । चैत्य असी नित वंदन करों ॥

मनुषोत्तरपरबत चहुं ओर । नमहूं चार चैत्य करजोर ॥ १२ ॥

और कहूं जिनमंदिर धान । इक्ष्वाकारहिं चार प्रमान ॥
 कुंडलगिरिकी महिमा सार । चैत्य जु चार नमूं निरधार ॥ १३ ॥
 रुचिकनाम गिरिमहा बखान । चैत्य जु चार नमूं उर आन ॥
 नंदीश्वर वावन गिरराव । वावन चैत्य नमहुं धरभाव ॥ १४ ॥
 मध्यलोक भविके मन भावन । चैत्य चारसौ और अठावन ॥
 तिन जिन मंदिरको निशदीस । वंदन करों नाय निज शीस ॥ १५ ॥
 व्यंतर जाति असंखित देव । चैत्य असंख्य नमहुं इह भेव ॥
 ज्योतिष संख्यातैं अधिकाय । चैत्य असंख्य नमूं चितलाय ॥ १६ ॥
 अव सुरलोक कहूं परकाश । जाके नमत जाहिं अधनाश ॥
 प्रथम स्वर्ग सौधर्म विमान । लाख वतीस नमूं तिहँ थान ॥ १७ ॥
 दूजो उत्तर श्रेणि इशान । लक्ष्य अठाइस चैत्य निधान ॥
 तीजो सनत कुमार कहाय । बारह लाख नमूं धर भाय ॥ १८ ॥
 चौथो स्वर्ग महेन्द्र सुठामि । लाख आठ जिन चैत्य नमामि ॥
 ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर दोय । लाख च्यार जिन मंदिर होय ॥ १९ ॥
 लांतव और कहूं कापिष्ट । सहस पचास नमूं उत किष्ट ॥
 शुक्ररु महा शुक्र अभिराम । चालिस सहसनि करुं प्रणाम २०
 सतार सहस्रार सुर लोक । पट सहस्र चरनन द्यौं धोक ॥
 आनत प्राण आरण अच्युत्त । चार स्वर्गसे सात संयुत्त ॥ २१ ॥
 प्रथमहि ग्रैव चैत्य जिन देव । इकसो ग्यारह कीजे सेव ॥
 मध्यग्रैव एकसो सात । ताकी महिमा जग विख्यात २२
 उपरि ग्रैव निजै अरु एक । ताहि नमूं धर परम विवेक ॥
 नव नवउत्तर नव प्रासाद । ताहि नमूं तजिके परमाद ॥ २३ ॥
 सबके ऊपर पंच विमान । तहँ जिनचैत्य नमूं धर ध्यान ॥
 सब सुरलोकनकी मरजाद । कही कथन जिन वचन अनाद २४

लख चौरासी मंदिर दीस । सहस सत्याणव अरु तेईस ॥
 तीन लोक जिन भवन निहार । तिनकी ठीक कहूं उरधार ॥२५॥
 आठ कोड अरु छप्पन लाख । सहस सत्याणव ऊपर भाख ॥
 चहुँसे इक्यासी जिन भौन । ताहि नमूं करिकें चिन्तौन ॥२६॥
 धनुष पंचसो बिंबप्रमान । इकसौ आठ चैत्य प्रति जान ॥
 नव अरब्व अरु कोटि पचीस । त्रेपन लाख अधिक पुनिदीस २७
 सहस सताईस नवसे मान । अरु अडतालीस बिंब प्रमान ॥
 एती जिन प्रतिमा गन लीजे । तिनको नमस्कार नित कीजे २८
 जिनप्रतिमा जिनवरके भेश । रंचक फेर न कह्यो जिनेश ॥
 जो जिनप्रतिमा सो जिनदेव । यहै विचार करै भवि सेव ॥२९॥
 अनंत चतुष्टय आदि अपार । गुण प्रगटै इहि रूप मझार ॥
 तातैं भविजन शीस नवाय । वंदन करहिं योग त्रयलाय ॥३०॥
 अकृत्रिम अरु कृत्रिम दोय । जिन प्रतिमा वंदो नित सोय ॥
 बारंवार शीस निज नाय । वंदन करहुं जिनेश्वर पाय ३१
 सत्रहसै पैतालिस सार । भादों सुदि चउदश गुरुवार ॥
 रचना कही जिनागम पाय । जैजैजै त्रिभुवनपतिराय ॥३२॥

दोहा.

दक्षलीन गुनको निरख; मरख मीठे वैन ॥

‘भैया’ जिनवानी सुने, होत सबनको चैन ॥ ३३ ॥

इति श्रीअकृत्रिम चैत्यालयोंकी जयमाला.

अथ चवदहगुणस्थानवर्त्तिजीवसंख्यावर्णन लिख्यते.

दोहा.

वीतरागके चरनयुग, वंदों दोउ करजोर ॥

कहूं जीव गुणथानके, अष्टकर्म दलभोर ॥ १ ॥

जिहँ चलवो जिहँ पंथको; सो दूढै बहु साथ ॥
तैसें पंथिक मोक्षके, दूढ लेहिं जिननाथ ॥ २ ॥

चौपाई.

चौदह गुण थानक परमान । जियकी संख्या कहैं वखान ॥
इहि मगचलै मुक्त सो होय । रहै अर्द्ध पुद्गल्लो कोय ॥ ३ ॥
प्रथम मिथ्यात्व नाम गुणथान । जीव अनंतानंत प्रमान ॥
तिनके पंच भेद विस्तार । वरनों जिन आगम अनुसार ॥
एक पक्ष जो गहिकैं रहैं । दूजी नय नाहीं सरदहैं ॥
वो मिथ्याती मूरख जीव । ज्ञानहीन ते कहैं सदीव ॥ ५ ॥
जिन आगमके शब्द उथाप । थापै निजमति वचन अलाप ॥
सुजस हेत गुरुतर मनधरै । सो विपरीती भवदुख भरै ॥ ६ ॥
देव कुदेव न जाने भंव । सुगुरु कुगुरुकी एकहि सेव ॥
नमैं भगतिसों विना विवक । विनय मिथ्याती जीव अनेक ॥ ७ ॥
भांति भांतिके विकल्प गहैं । जीव तत्त्व नाहीं सरदहै ॥
गून्य हिये डोलै हैरान । सो मिथ्याती संशयवान ॥ ८ ॥
गहल रूप वरतै परिणाम । दुखित महान न पावै धाम ॥
आको सुरति होय नहिं रंच । ज्ञानहीन मिथ्याती पंच ॥ ९ ॥

दोहा.

इनहि पंच मिथ्यात्व वश, जीव वसै जगमाहिं ॥
इनहिं त्याग ऊपर चढै, ते शिवपथिक कहाहिं ॥ १० ॥
सासादन गुन थानसों, अरु अयोग परजंत ॥
उत्कृष्टी संख्या कहूं, भाखी श्रीभगवन्त ॥ ११ ॥

चौपाई.

सासादन गुणथानक नाम । बावन कोटि जीव तिहँ ठाम ॥

एक अरब अरु कोटि जु चार । मिश्रनाम तीजै उरधार ॥१२॥
 अव्रत है चौथो गुणवंत । सात अरब जिय तहां वसंत ॥
 पंचम देशविरतपुर कहे । तेरह कोटि जीव जहँ लहे ॥१३॥
 पंच कोटि अरु त्राणवलाख । सहस अठ्याणवें ऊपरि भाख ॥
 द्वयसो छह जिय छठे थान । परमादी मुनि कहे वखान ॥१४॥
 अप्रमत्त सप्तम परतक्ष । कोटि दोय अरु छयानव लक्ष ॥
 सहस निन्याणव इकसो तीन । एते मुनि संयम परवीन ॥१५॥
 उपसप्त श्रेणि चढै गुणवान । अष्टम नवम दशम गुण थान ।
 द्वै द्वै सौ निन्याणव कहे । अठ सत्ताणव सब सरदहे ॥१६॥
 अष्टम क्षपक पंच जिय कोय । शतक पंच अठ्याणव होय ॥
 नवमें गुण थानक जिय जवै । शतक पंच अठ्याणव सवैं ॥१७॥
 दशमें गुण थानक मुनिराय । शतक पंच अठ्याणव थाय ॥
 एकादश श्रेणी उपशंत । द्वैसौ अरु निन्याणव तंत ॥१८॥
 द्वादशमों गुण क्षीण कषाय । पंच अठ्याणव सब मुनिराय ॥
 अब तेरहमें केवल ज्ञान । तिनकी संख्या कहूं वखान ॥१९॥
 लाख आठ केवलि जिन सुनो । सहस अठ्याणव ऊपर गुनो ॥
 शतक पंच अरु ऊपर दोय । एते श्री केवलि जिन होय ॥२०॥
 अब चौदस अयोग गुण थान । पंच अठवाण सब निर्वान ॥
 तेरह गुण थानक जिय लहूं । सबकी संख्या एकहि कहूं ॥२१॥
 आठ अरब सतहत्तर कोड़ । लाख निन्याणव ऊपर जोड़ ॥
 सहस निन्याणव नव सौ जान । अरु सत्याणव सब परमान ॥२२॥
 जव लों जिय इह थानक माहिं । तव लों जिय जग वासि कहांहिं ॥
 इनहि उलंघि मुकतिमें जांहिं । काल अनंतहि तहां रहांहिं ॥२३॥
 सुख अनंत विलसहिं तिहं थान । इहि विधि भाख्यो श्रीभगवान ॥

भैया सिद्ध समान निहार । निजघट मांहि वहै पद धारा ॥२४॥
 संवत सत्रह सैंतालीस । मारगसिर दशमी शुभ दीस ॥
 मंगल करन महा सुखधाम । सब सिद्धनप्रति करुं प्रणाम ॥२५॥
 इति श्रीशिवपंथ पचीसिका ।

अथ पन्द्रह पात्रकी चौपाई लिख्यते.

दोहा.

नमहुं देव अरहंतको, नमहुं सिद्ध शिवराय ॥
 नमहुं साधुके चरनको, योग त्रिविधिके लाय ॥ १ ॥
 पात्र कुपात्र अपात्रके, पंद्रह भेद विचार ॥
 ताकी कछु रचना कहूं, जिन आगम अनुसार ॥ २ ॥
 तीन पात्र उत्तम महा, मध्यम तीन बखान ॥
 तीन पात्र पुनि जघन हैं, ते लीजे पहिचान ॥ ३ ॥
 तीन कुपात्र प्रसिद्ध हैं, अरु अपात्र पुनि तीन ॥
 ये सब पन्द्रह भेद हैं, जानहु ज्ञान प्रवीन ॥ ४ ॥

चौपाई.

उत्तम माहि महा अरु श्रेष्ठ । तीर्थकर कहिये उत्कृष्ट ॥
 मुनि मुद्रामें लेहि अहार । वह दातार लहै भव पार ॥५॥
 उत्तम माहि मध्यके अंग । श्रीगणधर बरने सरबंग ॥
 चार ज्ञान संयुक्त प्रधान । द्वादशांगके करहि बखान ॥६॥
 उत्तम माहि जघन्य जु होय । सामान्यहि मुनि बरने सोय ॥
 दर्वित भावित शुद्ध अनूप । परम दयाल दिगम्बर रूप ॥७॥
 मध्यम पात्र अणुव्रत धार । तिनके तीन भेद विस्तार ॥
 दर्वित भावित गुण संयुक्त । रहै पाप किरियासों मुक्त ॥८॥

उत्तम ऐलक श्रावक पास । एक लंगोटी परिग्रह जास ॥
 मठ मंडपमें करहि निवास । एकादशम प्रतिज्ञा भास ॥९॥
 दूजो श्रावक झुलक नाम । कुछ अधिको परिग्रह जिहि ठाम ॥
 पीछी और कमंडल धरै । मध्यम पात्र यही गुण वरै ॥१०॥
 अरु दश प्रतिमा धारी जेह । लघु पात्रनमें बरने तेह ॥
 इह विधि यह पंचम गुण थान । मध्यम पात्र भेद परवान ॥११॥
 अब लघु पात्र कहूं समुझाय । उत्तम मध्यम जघन कहाय ॥
 उत्तम क्षायिक समकितवंत । जिनके भावनको नहि अंत ॥१२॥
 मध्यम पात्र सु उपसम धार । जिनकी महिमा अगम अपार ॥
 वेदक समकित जाके होय । लघुपात्रनमें कहिये सोय ॥१३॥
 तीन कुपात्र मिथ्याती जीव । द्रव्यलिंग जो धरहिं सदीव ॥
 ज्ञान विना करनी बहु करै । भ्रमि भ्रमि भवसागरमें परै ॥१४॥
 मुनिकी सम मुद्रा निरधार । सहै परीसह बहु परकार ॥
 जीव स्वरूप न जाने भेव । द्रव्य लिंगी मुनि उत्तम एव ॥१५॥
 मध्यम पात्र सु श्रावक भेष । दर्वित किरिया करै विशेष ॥
 अन्तर शून्य न आत्म ज्ञान । मानत है निजको गुणवान ॥१६॥
 जघन्य कुपात्र कहूं विख्यात । जाके उर बरतै मिथ्यात ॥
 समकितकीसी ऊपर रीति । अंतर सत्य नही परतीति ॥१७॥
 कहूं अपात्र दुहुं विधि अष्ट । दर्वित भावित क्रिया अनिष्ट ॥
 परिग्रहवंत कहावै साधु । मिथ्यामत भाखै अपराध ॥१८॥
 श्रावक आप कहै जगमाहिं । श्रावकके गुण एकहु नाहिं ॥
 भक्ष्याभक्ष्य न जाने भेद । मध्य अपात्र करै बहु खेद ॥१९॥
 जघन अपात्र यहै विरतंत । कहै आपको समकितवंत ॥
 निहचै अरु नाहीं व्यवहार । दर्वित भावित दुहुं विधि छार ॥२०॥

दर्वित गुण समकितके जेह । ग्रंथनमें वहु वरने तेह ॥
तिहँ माफिक नाही जिहँ चाल । ते मिथ्याती जीव त्रिकाल ॥ २१ ॥
भावित समकित जीव सुभाय । सो निहचै जानै मुनिराय ॥
कै जानै जो वेदै जीव । ऐसैं गणघर कहैं सदीव ॥ २२ ॥

दोहा.

इहविधि पन्द्रह पात्रके, गुण निरखै गुणवंत ॥
यथा अवस्थित जानके, धारहिं हिरदै संत ॥ २३ ॥
निज स्वभाव रसलीन जे, ते पहुँचे शिव ओर ।
मिथ्याती भटकत फिरैं, विनवैं दास किशोर ॥ २४ ॥
इति पन्द्रह पात्रकी चौपई.

अथ ब्रह्मा ब्रह्म निर्णय चतुर्दशी लिख्यते:

दोहा.

असिआरसा जु पंचपद, वंदौं शीस नवाय ॥
कछु ब्रह्मा अरु ब्रह्मकी, कहूँ कथा गुणगाय ॥ १ ॥
ब्रह्मा ब्रह्मा सब कहै, ब्रह्मा और न कोय ॥
ज्ञान दृष्टि घर देखिये, यह जिय ब्रह्मा होय ॥ २ ॥
ब्रह्माके मुखचार हैं, याहूँके मुख चार ॥
आँख नाक रसना श्रवण, देखहु हिये विचार ॥ ३ ॥
आँख रूपको देखकर, ग्रहण करै निरधार ॥
रागीद्वेपी आतमा, सबको स्वादनहार ॥ ४ ॥
नाक सुवास कुंवासको, जानत है सब भेद ॥
राचै विरचै आतमा, यों मुखबोलैं वेद ॥ ५ ॥
रसना पटरस भुंजती, परी रहै मुख मांहि ॥
रीझै खीजै आतमा, मुख यातैं ठहराहिं ॥ ६ ॥

श्रवण शब्दके ग्रहणको, इष्ट अनिष्ट निवास ॥
 मुख तो सोही प्रगट है, सुखदुख चारखे तास ॥ ७ ॥
 येही चारों मुख बने, चहुं मुख लेय अहार ॥
 तातैं ब्रह्मा देव यह, यही सृष्टि करतार ॥ ८ ॥
 हृदय कमलपर बैठिकें, करत विविधि परिणाम ॥
 कर्त्ता नाही कर्मको, ब्रह्मा आत्म राम ॥ ९ ॥
 चार वेद ब्रह्मा रचे, इनहू तजे कपाय ॥
 शुद्ध अवस्था ये भये, यह बिन शुद्धि कहाय ॥ १० ॥
 नाना रूप रचें नये, ब्रह्मा विदित कहान ॥
 नाम कर्मजिय संगलै, करत अनेक विनान ॥ ११ ॥
 ब्रह्मा सोई ब्रह्म है, यामें फेर न रंच ॥
 रचना सब याकी करी, तातैं कह्यो विरंच ॥ १२ ॥
 जेते लक्षण ब्रह्मके, ते ते ब्रह्मा माहि ॥
 ब्रह्मा ब्रह्म न अंतरो, यों निश्चय ठहराहि ॥ १३ ॥
 जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह बात ॥
 'भैया' थोरे कथनमें, कही कथा विख्यात ॥ १४ ॥
 इति ब्रह्मा ब्रह्म निर्णय चतुर्दशी.

अथ अनित्य पचीसिका लिख्यते ।

कवित्त.

नर लोकनके ईश नाग लोकनके ईश, सुरलोकहके ईश
 जाको ध्यान ध्यावही । नाय नाय शीस जाहि बंदत मुनीश
 नित, अतिशै चौतीस ओ अनंत गुण गावही ॥ कौन करै जाकी

१ (ब्रह्मा) (२) जीव (३) ब्रह्मा ।

रीस कर्म अरि डारै पीस, लोकालोक जाहि दीस पंथको बताव-
ही । ताके चर्ण निश दीश बंदै भविनाय शीस, ऐसे जगदीश
पुण्यवंत जीव पावही ॥ १ ॥

दोहा.

परयो कालके गालमें, मूरख करै गुमान ॥
देहै छिनमें दाव जो, निकस जांहिगे प्रान ॥ २ ॥

कवित्त.

मिथ्यामत नासवेको ज्ञानके प्रकाशवेको, आपापर भास-
वेको भानसी वखानी है । छहों द्रव्य जानवेको बंधविधि भान
वेको, आपापर ठानवेको परम प्रमानी है ॥ अनुभो बतायवेको
जीवके जतायवेको काहु न सतायवेको भव्य उर आनी है । जहाँ
तहाँ तारवेको पारके उतारवेको, सुख विस्तारवेको यहै जिनवा-
नी है ॥ ३ ॥

आज काल जम लेत है, तू जोरत है दाम ॥
लक्ष कोटि जो धर चलै, ऐहै कौनै काम ॥ ४ ॥

कवित्त.

पंच वर्ण वसनसो पंच वर्ण धूलि शाल, मान थंभ सत्य वैन
देखे मान नाश है । दयाको निवास सोही वेदीको प्रकाश लसै,
रूपेको जु कोट सु तौ नो करम भास है ॥ द्रव्य कर्म नाम हेम
कोट मध्य राजत है, रतनको कोट भाव कर्मको विलास है ।
ताके मध्य चेतन सु आप जगदीस लसै, समोसर्न ज्ञानवान
द्रेखै निजपास है ॥ ५ ॥

लागो है जम जीवको, बोलत ऐसे गाजि ॥
आज कालमें लेत हूं, कहाँ जाहुगे भाजि ॥ ६ ॥

देखहुरे दच्छ एक बात परतच्छ नयी, अच्छनकी संगति वि-
चच्छन भुलानो है । वस्तु जो अभच्छ ताहि भच्छत है रैन दिन,
पोषवेको पच्छ करे मच्छ ज्यों लुभानो है ॥ विनाशीक लच्छ
ताहि चच्छुसों विलोकै थिर, वहै जाय गच्छ तब फिरै ज्यों
दिवानो है । स्वच्छ निज अच्छको विलच्छकै न देखै पास, मोह
जच्छ लागे वच्छ ऐसो भरमानो है ॥ ७ ॥

जगहिं चलाचल देखिये, कोउ सांझ कोउ भोर ॥

लाद लाद कृत कर्मको, ना जानों किहि ओर ॥ ८ ॥

नरदेह पाये कहा पंडित कहाये कहा, तीरथके न्हाये कहा
तीर तो न जैहै रे । लच्छिके कमाये कहा अच्छके अघाये कहा,
छत्रके धराये कहा छीनता न ऐहै रे ॥ केशके मुंडाये कहा
भेषके बनाये कहा, जोवनके आये कहा जराहू न खैहै रे ।
भ्रमको विलास कहा दुर्जनमें वास कहा, आतम प्रकाश विन
पीछें पछितैहै रे ॥ ९ ॥

दुःखित सब संसार है, सुखी लसै नहिं कोय ॥

एक सुखित जिन धर्म है, जिहँ घट परगट होय ॥ १० ॥

नरदेह पाये कहो कहा सिद्धि भई तोहि, विपै सुख सेयें सब
सुकृत गमायो है । पंच इन्द्रि दुष्ट तिन्हें पुष्टकर पोष राखै,
आय गई जरा तब जोर विललायो है ॥ क्रोध मान माया लोभ
चारों चित रोक बैठे, नरक निगोदको संदेसो वेग आयो है ।
खाय चल्थो गांठको कमाई कोडी एक नाहिं, तोसो मूढ दूसरो
न ढूंढ्यो कहूं पायो है ॥ ११ ॥

जाके परिग्रह बहुत है, सो बहु दुखके माहिं ॥

विन परिग्रहके त्यागतै, परसों छूटै नाहिं ॥ १२ ॥

थानी हैके मानी तुम थिरता विशेष इहां, चलवेकी चिंता
कछू है कि तोहि नाहिने । जोरत हो लच्छ बहु पाप कर रैन
दिन, सो तो परतच्छ पांय चलवो उवाहिने ॥ घरीकी खबर
नाहिं सामो सौ वरप कीजै, कौन परवीनता विचार देखो काहिने।
आतमके काज विना रज सम राज सुख, सुनो महाराज कर कान
किन? दाहिने ॥ १३ ॥

शयन करत है रयनको, कोटिध्वज अरु रंक ॥

सुपनेमें दोऊ एकसे, वरतें सदा निशंक ॥ १४ ॥

मात्रिक कवित्त.

नटपुर नाव नगर इक सुंदर, तामें नृत्य होंहिं चहुं ओर ।
नायक मोह नचावत सबको, ल्यावत स्वांग नये नित जोर ॥
उछरत गिरत फिरत फिरकी दै, करत नृत्य नानाविधि घोर ।
इहि विधि जगत जीव सब नाचत, राचत नाहिं तहां सु किशोर ॥ १५ ॥

कर्मनके वस जीव है, जहँ खँचे तहँ जाय ॥

ज्यों हि नचावे त्यों नचे, देख्यो त्रिभुवनराय ॥ १६ ॥

मात्रिक कवित्त.

इंद्र हरे जिहँ चन्द्र हरे, सुरवृन्द्र हरे असुरादिक जोय ।
ईश हरे अवनीस हरे, चक्रीश हरे बलि केशव दोय ॥
शेष हरे पुर देश हरे सब, भेस हरे थितिकी गत खोय ।
दास कहं शिवरास विना, इहि काल बलीसों बली नहिं कोय ॥ १७ ॥

एक धर्म जिनदेवको, वसै जासु उर माहिं ॥

ताकी सरबर जगतमें, और दूसरो नाहिं ॥ १८ ॥

कवित्त.

पूरवही पुण्य कहं किये हैं अनेक विधि, ताके फल उदै आज

नर देही पाई है । इहां आय विषै रस लाग्यो अति नीको तोहि,
ताके संग केलि करै यहै निधि पाई है ॥ आगें अब कहा गति
है है चिदानंद राय, चलवेकी थिति सांझ भोर माहि आई है ।
साथ कौन संबल न सत्तू कछु लेत मूढ, आगें कहा तोहि सुख
सेज ले विछाई है ॥ १९ ॥

द्वै द्वै लोचन सब धरै, मणि नहिं मोल कराहिं ॥

सम्यकदृष्टी जोंहरी, विरले इहि जगमाहिं ॥ २० ॥

कवित्त.

वर्ष सौ पचास माहिं एते सब मरजाहिं, जे ते तेरी दृष्टिविपै
देखतु है बावरे । इनमेंको कोऊ नाहिं बचवेको काल पाँहि, राजा
रंक क्षत्री और शाह उमराव रे ॥ जमहीकी जमा मांहि घरी पल
चले जांहिं, घटै तेरी आव कछु नाहिं को उपावरे । आज काल्हि
तोहूको समेट काल गाल माहिं, चाबि जैहै चेत देख पीछें नाहिं
दावरे ॥ २१ ॥

जो वानी सर्वज्ञकी, तामें फेर न सार ॥

कल्पित जो काहू कही, तामें दोष अपार ॥ २२ ॥

जाके होय क्रोध ताके बोध को न लेश कहूं, जाके उर मान
ताके गुरु को न ज्ञान है । जाके मुख माया वसै ताके पाप केई
लशै, लोभके धरैया ताको आरतको ध्यान है ॥ चारों ये कषाय
सु तौ दुर्गति ले जाय 'भैया,' इहां न वसाय कछु जोरबल प्रान
है । आतम अधार एक सम्यक प्रकार लशै, याहीतैं उधार निज
थान दरम्यान है ॥ २३ ॥

आप निकट निज दृगनिर्तैं, विकट चर्म दृग दोय ॥

जाके दृग जैसैं खुलै, तैसो देखै सोय ॥ २४ ॥

अरे भव्य प्राणी जो तैं जाति निज जानी तो तू, लखि जिन-
वानी जामें मोक्षकी निसानी है । काहू ले कुबुद्धि सानी यामें
विपरीत आनी, ताहि जो पिछानी तो तू भयो ब्रह्म ज्ञानी है ।
जाके नांव और ठानी द्वादशांगकै बखानी, वपुरे अज्ञानी ताकी
बुद्धि भरमानी है । ठौर ठौर कानी जामें रहै नाहिं सत्य पानी,
कूरनके मनमानी कलिकी कहानी है ॥ २५ ॥

दोहा.

यह अनित्यपच्चीसिके, दोहा कवित निहार ॥

भैया चेतहु आपको, जिनवानी उर धार ॥ २६ ॥

इति अनित्यपच्चीसिका.

अथ अष्टकर्मकी चौपई लिख्यते।

दोहा.

नमो देव सर्वज्ञको, धीतराग जस नाम ॥

मन वच शीस नचाइकें, करों त्रिविधिपरणाम ॥ १ ॥

चौपाई.

एक जीव गुण धरै अनंत । ताको कछु कहिये विरतंत ॥
सब गुण कर्म अछादित रहैं । कैसें भिन्न भिन्न तिहँ कहैं ॥ २ ॥
तामैं आठ मुख्य गुन कहे । तापें आठ कर्म लगि रहे ॥
तिन कर्मनकी अकथ कहान । निहचै तो जाने भगवान ॥ ३ ॥
कछु व्यवहार जिनागम साख । वर्णन करों यथारथ भाख ॥
ज्ञानावरन कर्म जब जाय । तव निज ज्ञान प्रगट सब थाय ॥
ताके पंच भेद विस्तार । तथा अनंतानंत अपार ॥
जैसें कर्म घटहि जिहँ थान । तैसे तोहँ प्रगट है ज्ञान ॥ ५ ॥

जैसो ज्ञान प्रगट है जहाँ । तैसी कछु जानै जिय तहाँ ॥
 दूजो दर्शआवरण और । गये जीव देखहिं सब ठौर ॥ ६ ॥
 ताकी नौ प्रकृती सब कही । तामें शक्ति सबहि दबि रही ॥
 जैसो घटै आवरण जोय । तैसो तहँ देखै जिय सोय ॥ ७ ॥
 निराबाध गुण तीजो अहै । ताहि वेदनी ढांके रहै ॥
 साता और असाता नाम । तामहि गर्भित चेतन राम ॥ ८ ॥
 जैसी द्वै प्रकृती घट जाय । तैसी तहँ निर्मलता थाय ॥
 जबहि वेदनी सब खिर जाय । तब पंचमि गति पहुंचै आय ॥ ९ ॥
 चौथो महा मोह परधान । सब कर्मनमें जो बलवान ॥
 समकित अरु चारित गुणसार । ताहि ढकै नाना परकार ॥ १० ॥
 जहँ जिम घटहि मोहकी चाल । तहँ तिम प्रगट होय गुणमाल ॥
 ज्यों ज्यों घटै मोह जियपास । त्यों त्यों होय सत्य गुणवास ११
 ताकी बीस आठ विधि कही । यथा योग्य थानक सरदही ॥
 जगमें जंतु बसै चिरकाल । सो सब मोह अछादित बाल १२
 मोह गये सब जानै मर्म । मोह गये प्रगटै निजधर्म ॥
 मोह गये केवलपद होय । मोह गये चिर रहै न कोय ॥ १३ ॥
 पंचम आयु कर्म जिन कहै । अवगाहन गुण रोके रहै ॥
 जब वे प्रकृति आवरण जाहिं । तब अवगाहन थिर ठहराहिं १४
 ताकी चार प्रकृति जगनाम । जाके गये लहै शिवधाम ॥
 नाम कर्म षष्ठम विरतंत । करहि जीवको मूरतिवंत ॥ १५ ॥
 अमूरतीक गुण जीव अनूप । तापै लगी प्रकृति जड़रूप ॥
 पुद्गल लगै कहावै जीव । एकेंद्रयादिक पंच सदीव ॥ १६ ॥
 उदय योग नाना परकार । चेतन वसै शरीरमझार ॥
 जैसैं तनमें करहि निवास । तैसो नाम लहै जिय तास ॥ १७ ॥

तनकी संगति कष्ट अपार । सहै जीव संकट बहु वार ॥
 जामन मरन अनंता कर । ताके दुख कहु को उच्चरै ॥१८॥
 प्रकृति त्राणवें ताकी कही । जगत मूल येही बनि रही ॥
 जब ये प्रकृति सबहि खिरजाहिं । तबहि अरूपी हंस कहाहिं ॥१९॥
 सप्तम गोत करम जिय जान । ऊंचनीच जिय यही बखान ॥
 गुण जु अगुरु लघु ढाँके रहैं । तातैं ऊंचनीच सब कहैं ॥२०॥
 जब ये दोर आवरन जाहिं । तब पहुँचै पंचमिगतिमाहिं ॥
 अष्टम अन्तराय अरि नाम । बल अनंत ढाँके अभिराम ॥२१॥
 शक्ति अनंती जीव सुभाय । जाके उदै न परगट थाय ॥
 ज्यों ज्यों घटहि आवरण कही । त्यों त्यों प्रगट होय गुण सही २२
 पांच जातिके विकट पहार । याकी ओट सबै सुख सार ॥
 इन विन गये न पावें मूल । इन विन गये रह्यो जिय भूल २३
 ये सबही सुखके दरवान । येही सबके आगेवान ॥
 जब ये अंतराय मिट जाहिं । तब चेतन सब सुखके माहिं ॥२४॥

दोहा.

येही आठों कर्ममल, इनमें गर्भित हंस ॥
 इनकी शक्ति विनाशकैं, प्रगट करहि निज वंस ॥ २५ ॥
 इहिविधि जीव अनन्त सब, वसत यही जगमाहिं ॥
 इनहिँ त्याग निर्मल भये, ते शिवरूप कहाहिं ॥ २६ ॥
 'भैया' महिमा ब्रह्मकी, ऐसे बनी अनाद ॥
 यथा शक्ति कछु वरणयी, जिन आगम परसाद ॥ २७ ॥

इति अष्टकर्मकी चौपई.

अथ सुपंथकुपंथपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

केवल ज्ञान स्वरूपमें, राजत श्री जिनराय ॥

तास चरन वंदन करहुं, मन वच शीस नवाय ॥ १ ॥

कहुं सुपंथ कुपंथ के, कवित पचीस बखान ॥

जाके समुझत समझिये, पंथ कुपंथ निदान ॥ २ ॥

कवित्त.

तेरो नाम कल्पवृच्छ इच्छाको न राखै उर, तेरो नाम कामधे
नु कामना हरत है । तेरो नाम चिन्तामन चिन्ताको न राखै
पास, तेरो नाम पारस सो दारिद डरत है ॥ तेरो नाम अमृत पि-
येतैं जरा रोग जाय, तेरो नाम सुखमूल दुःखको दरत है । तेरो नाम
वीतराग धरै उर वीतरागा, भव्य तोहि पाय भवसागर तरत है ॥ ३ ॥

सुन जिनवानी जिहँ प्रानी तज्यो राग द्वेष, तेई धन्य धन्य
जिन आगममें गाये हैं । अमृतसमानी यह जिहँ नाहिं उर आ
नी, तेई मूढ प्रानी भवभाँवरि भ्रमाये हैं ॥ याही जिनवानीको
सवाद सुख चाखो जिन, तेही महाराज भये करम नसाये हैं ।
तातैं दृग खोल 'भैया' लेहु जिनवानी लखि, सुखके समूह सब
याहीमें बताये हैं ॥ ४ ॥

अपने स्वरूपको न जानै आप चिदानंद, वहै भ्रम भूलि वहै
मिथ्या नाम पावै है । देव गुरु ग्रन्थ पंथ सांचको न जाने भेद, जहाँ
तहाँ झूठे देख मान शीस नावै है ॥ चेतन अचेतन हैं हिंसा करै
ठौर ठौर, वापुरे विचारे जीव नाहक सतावै है । जलके न थलके

न पौन अग्नि फलके न, त्रसनि विराधि मूढ मिथ्याती कहावै
है ॥ ५ ॥

केई भये शाह केई पातशाह पहुमिपै, केई भये मीर केई वडे
ही फकीर हैं। केई भये रात्र केई रंक भये विललात, केई भये काय
र औ केई भये धीर हैं॥ केई भये इन्द्र केई चन्द्र छविवंत लसै,
केई भये पौन अरु केई भये नीर हैं। एक चिदानंद केई स्वांगमें
कलोल करै, धन्य तेही जीव जे भये तमासगीर हैं ॥ ६ ॥

सवैया.

परमान सब विधि जानत है, अरु मानत है मत जे छह रे ।
किरिया कर कर्मनि जोरत हैं, नहिं छोरेत है भ्रमजे पहरे ॥
उपदेश कर व्रत नेम धरै, परभावनको उर नाहिं हरे ।
निज आतमको अनुभौ न करै, ते परे भवसागरमें गहरे ॥ ७ ॥

सवैया मानिक.

दुर्भर पेट भरनके कारन, देखत हो नर क्यों विललाय ।
झूठ सांच बोलत याके हित, पाप करत नहिं नेक डराय ॥
भक्ष्य अभक्ष्य कछु न विचारत, दिन अरु रात मिलै सो खाय ।
उत्तम नरभव पाय अकारथ, खोवत वादि जनम सब आय ॥ ८ ॥

कवित्त.

करता सबनके करमको कुलाल जिम, जाके उपजाये जीव ज-
गतमें जे भये । सुर तिरजंच नर नारकी सकल जंतु, रच्यो ब्रह्मांड
सब रूपके नये नये ॥ तासों वैर करवेको प्रगटे कहांसों आय,
ऐसे महा बली जिहँ खातिरमें ना लये । हूँदै चहुँ ओर नहिं
पावै कहूँ ताको ठोर, ब्रह्माजूकी सृष्टिको चुराय चोर लै गये॥९॥
चाँपरके खेलमें तमासो एक नयो दीसै, जगतकी रीति सब

याहीमें बनाई है । चारों गति चारों दाव फिरवो दशा विभाव, कर्मवर्ती जीव सार मिल विछुराई है ॥ तीनों योग पांसे परै ताके तैसे दाव परे, शुभ ओ अशुभ कर्म हार जीत गाई है । फिरवो न रह्यो जब कर्म खप जाहिं सब, पंचमि गति पावै ये 'भैया' प्रभुताई है ॥ १० ॥

देहके पवित्र किये आतमा पवित्र होय, ऐसे मूढ भूल रहे मिथ्याके भरममें । कुलके आचारको विचारै सोई जानै धर्म, कंद मूल खाये पुण्य पापके करममें ॥ मूंडके मुंडाये गति देहके दगाये गति, रातनके खाये गति मानत धरममें । शस्त्रके धरैया देव शास्त्रको न जानै भेव, ऐसे हैं अवेव अरुमानत परममें ॥ ११ ॥

नदीके निहारतही आतमा निहारयो जाय, जो पै कोउ ज्ञान-वंत देखै दृष्टि धरकें । एक नीर नयो आय एक आगें चलयो जाय, इहां थिर ठहराय रह्यो पूर भरकें ॥ ताहूमें कलोल कई भांतिकी तरंग उठै, विनसै पुनि ताहूमें अनेकधा उछरि कें । तैसें इह आतममें कई परिणाम होय, ऐसे परवान है अनंत शक्ति करकें १२

जगतकै जीवन जिववै जगदीश कोउ, वाकी इच्छा आवै तव मार डारियतु है । वाहीके हुकुम सेती काज सब करै जीव, विना वाके हुकुम न तृण डारियतु है ॥ करता सबनके करमनको वही आप, भोगता दुहूमें कौन जो विचारियतु है । करता सो भोगता कि करै और भुँजै और, याको कछु उत्तर न सूधो धारियतु है ॥ १३ ॥

जोलों यह जीवके मिथ्यात्व दृष्टि लागि रही, तौलों सांच झूठ सूझै झूठ सूझै सांच है । राग द्वेष विना देव ताहिकहै रागी देव, जीवको न जाने भेव, मानै तत्त्व पांच है ॥ वस्तुके स्वभावको

न जान्यो यह सांचो धर्म, किरियाको धर्म मानै मदिराकी मांच हैं । सत्यारथ वानी सरवज्ञने पिछानी 'भैया,' ताहि न पिछानी तोलों नाचे कर्म नाच है ॥ १४ ॥

कोऊ कहै सूर सोम देव हैं प्रत्यक्ष दोऊ, कोऊ कहै रामचन्द्र राखै आवागौनसों । कोऊ कहै ब्रह्मा बडो सृष्टिको करैया अहै, कोऊ कहै महादेव उपज्यो न जौनसों ॥ कोऊ कहै कृष्ण सब जीव प्रतिपाल करै, कोऊ लगि रहे हैं भवानी जूके भौनसों । वही उपाख्यान सांचो देखिये जहांन वीचि, वेदयाघर पूत भयो वाप कहै कौनसों ॥ १५ ॥

सवैया इकतुकिया.

निश द्यौस यहै मन लाग्यो रहै, सु मुनिन्द्रके पांय कबैं परसों । जिन देवके देखनकी रटनाजु, कहों किम जाहुं विना परसों ॥ कवधों शिवलोकमें जाय वसों, सुख संधि लहों सजिकें परसों । कव जोग मिलै इम इच्छित है भवि, आजकै काल्हि किधों परसों १६

कवित्त.

जाके कुल धर्म मांहि सरवज्ञ देव नाहिं, पूछत ते कौन पांहि हिर दैकी बातको । संदौ उर पूरि रहै ज्ञान गुण दूर रहै, महातम भूरि रहै लखै सार गातको ॥ मिथ्याकी लहरि आवै सांच कौ न पंथ पावै, जहां तहां भूलि धावै करै जीव घातको । झूठो ही पुरान मानै झूठे देव देव ठानै, जैसें जन्म अन्ध नर देखै ना प्रभातको ॥ १७ ॥

राजाके परजा सब वेटा वेटीकी समान, यह तो प्रत्यक्ष बात लोकमें कहान है । आप जगदीस अवतार धरथो धरनी पै, कुंज निमें केल करी जाको नाम कान्ह है ॥ परमेश्वर करै पर वधू सों

अनाचार, कहते न आवै लाज ऐसो ही पुरान है। अहो महाराज यह कौन काज मत कीनो, जगतके डोबिवेको ऐसो सरधान है ॥१८॥

स्त्रीरूपवर्णन—मात्रिक कवित्त.

बडी नीत लघु नीत करत है, बाय सरत बदवोय भरी ।

फोडा बहुत फुनगणी मंडित, सकल देह मनु रोग दरी ॥

शोणित हाड मांस मय मूरत, तापर रीझत घरी घरी ।

ऐसी नारि निरखिकर केशव ? 'रसिकप्रिया' तुम कहा करी १९

सवैया. (मत्तगयन्द)

जो जगको सब देखत है—तुम, ताहि विलोकिकें काहे न देखो ।

जो जगको सब जानतु है, तुम ताहि जु जानो तो सूधो हँ लेखो ॥

जो जगमें थिर है सुखमानत, सो सुख वेदत कौन विशेखो ॥

है घटमें प्रगटै तबही, जबही तुम आप निहारके पेखो ॥ २० ॥

कुपंथ वर्णनकवित्त.

सोई तो कुपंथ जहां द्रव्यको न जाने भेद, सोई तो कुपंथ जहां लागि रहे परसैं । सोई तो कुपंथ जहां हिंसामें बखाने धर्म, सोई तो कुपंथ जहाँ कहै मोक्ष घरसैं ॥ सोई तो कुपंथ जो कुंशीली-पशु देव कहै, सोई तो कुपंथ जो कुलिंगी पूजै डरसैं । सोई तो कुपंथ जो सुपंथ पंथ जानै नाहिँ, विना पंथ पाये मूढ कैसेँ मोक्ष दरसैं ॥ २१ ॥

(१) दंतकथामें प्रसिद्ध है कि केशवदासजी कवि जो किसी छोपर मोहित थे उन्होंने उसके प्रसन्नार्थ 'रसिकप्रिया' नामका ग्रंथ बनाया. वह ग्रंथ समालोचनार्थ 'भैया' भगोतीदासजीके पास भेजा तो उसकी समालोचनामें यह कवित्त रसिकप्रियाके पृष्ठपर लिखकरके वापिस भेज दिया था. (२) गौ आदिक कुंशीली पशुओंको देव मानते हैं.

झूठो पंथ सोई जहां झूठे देव देव कहै, झूठे पंथ सोई जहां झूठे गुरु मानिये । झूठो पंथ सोई जहां ग्रंथ सब झूठे बचें, झूठो पंथ सोई जहां भ्रमको बखानिये ॥ झूठो पंथ सोई जहां दयाको न जाने भेद, झूठो पंथ सोई जहां हिंसाको प्रमानिये । झूठे पंथ चले तव कैसें मोक्ष पावें अरु, बिना मोक्षपाये 'भैया' सुखी कैसें जानिये ॥ २२ ॥

सुपन्थवर्णन सवैया.

पंथ वहै सरवज्ञ जहां प्रभु, जीव अजीवके भेद वतैये ।
पंथ वहै जु निग्रन्थ महामुनि, देखत रूप महासुख पैये ॥
पंथ वहै जहँ ग्रंथ विरोध न, आदि ओ अंतलों एक लखैये ।
पंथ वहै जहाँ जीवदयावृष, कर्म खपाइकें सिद्धमें जैये ॥ २३ ॥
पंथ वहै जहँ साधु चलै, सब चेतनकी चरचा चित लैये ।
पंथ वहै जहँ आप विराजत, लोक अलोकके ईश जु गैये ॥
पंथ वहै परमान चिदानंद, जाके चलै भव भूल न ऐये ।
पंथ वहै जहँ मोक्षको मारग, सूधे चले शिवलोकमें जैये ॥ २४ ॥

कवित्त.

केवलीके ज्ञानमें प्रमाण आन सब भासै, लोक ओ अलोकन की जेती कछु बात है । अतीत काल भई है अनागतमें होयगी; वर्तमान समैकी विदित यों विख्यात है ॥ चेतन अचेतनके भाव विद्यमान सबै, एक ही समैमें जो अनंत होत जात है । ऐसी कछु ज्ञानकी विशुद्धता विशेष बनी, ताको धनी यहै हंस कैसें विललात है ॥ २५ ॥

छयानवें हजार नार छिनकमें दीनी छार, अरे मन ता निहार

काहे तू डरत है । छहों खंडकी विभूति छाडत न वेर कीन्ही, चमू
चतुरंगनसों नेह न धरत है ॥ नौ निधान आदि जे चउदह रतन
त्याग, देह सेती नेह तोर वन विचरत है । ऐसी विभो त्यागत
विलंब जिन कीन्हों नाहिं, तेरे कहो केती निधि सोच क्यों कर-
त है ॥ २६ ॥

दोहा.

यहै सुपंथ कुपंथके, कवित पचीस प्रसिद्ध ॥
'भैया' पढत विवेकसों, लहिये आतमरिद्ध ॥ २७ ॥

इति सुपंथकुपंथपचीसिका.

अथ मोहभ्रमाष्टक लिख्यते ।

दोहा.

परम पूज्य सर्वज्ञ है, तारन तरन त्रिकाल ॥
तासु चरन वंदन करों, छांडि सु आल जँजाल ॥ १ ॥
एक मोहकी मगनसों, भ्रमत सबहि संसार ॥
देखै अरु समझै नहीं, ऐसो गहल गँवार ॥ २ ॥

कवित्त.

मोहके भ्रमसों करम सब करै जीव, मोहकी गहलमें जगत
सब गाइये । मोह धरै देह परनेह परसों जु करै, भ्रमकी भूलमें
धरम कहां पाइये ॥ चरमकी दृष्टिसों परम कहूं पेखियत, मोहही-
की भूल यह भ्रम भ्रमाइये । चेतन अचेतनकी जाति दोऊ भिन्न
भिन्न, मोह एकमेक लखै 'भैया' यों बताइये ॥ ३ ॥

ब्रह्मा अरु विष्णु महादेव तीनों एक रूप, कहै परमेश्वरके अं-
शके बनाये हैं । विरंचि औ शंकरने आपुसमें युद्ध कीनो, खरशी-

स छेदन सु ग्रथनिमें गाये हैं ॥ विष्णु आप आय अवतार लीनों
जलमाहिं, जल कहो काहे पै हो काहु न बताये हैं। सृष्टि रची पी-
छेंकर पहिले पौन पानी होंहि, इतनोहू ज्ञान नाहिं ऐसे भरमाये
हैं ॥ ४ ॥

कान्ह करी कुंजनमें केलि परनारिनसों, ऐसे व्यभिचारिन
को ईश कैसे कहिये । महादेव नागे होय नाचैं सो प्रसिद्ध वात,
तऊ न लजात कहै ईश अंश लहिये ॥ ब्रह्माने तिलोत्तमाको देख
मुख चार कीन्है, इतनों विचार नाहीं इन्है ऐसी चाहिये । कहत
हैं ईश जगदीश ए बनाये आप, इनहीके चरण त्रिकाल गहिर-
हिये ॥ ५ ॥

अर्जुनको तीनों लोक मुखमें दिखाये जिन, प्रद्युमन हरे सुधि
कहूं न लहत हैं । शंकर जु शीस काट ढूँढत गणेशहू को, तीन लोक
मैं न कहूं गज ले गहत हैं ॥ ब्रह्मा जू की सृष्टिको चुराय जब गये
चोर, तीन लोक करे तापैं ढूँढत रहत हैं । रामचंद्र सीता सुधि
पूछै पशुपक्षीनपैं, ताको लोक जगतके ईश्वर कहत हैं ॥ ६ ॥

मच्छको स्वरूप धर गये जो पताल माहिं, चारों वेद चोर पास
आन यहां धरे हैं । कच्छ है अठासी लक्ष योजनकी देह धरी,
छोटेसे समुद्रमें मथान पीठ करे हैं ॥ पृथ्वीको पताल तैं लै आये
आप सूअर है, सिंहको स्वरूप धार हिर्णाकुश हरे हैं । परमेश
पर्मगुरु अविनाशी जोतरूप, ताहि कहैं पशु देह आय अवतारे
हैं ॥ ७ ॥

राम औ परशुराम आपुसमें युद्ध कीनों, दोऊ अवतारी अंश
ईश्वरके लरे हैं । कृष्ण अवतार माहिं तीन लोक राखत है, द्वा-

रका न राखसके जादों सब जरे हैं ॥ वाँद्ध है विचारे मूढ़ मांस
भक्षी कीने सब, पापपिंड भर भर नर्क माहिं परे हैं । वावन है
जाच्यो वलि ईश्वर है लीन्हों छलि, अजहं पातालद्वारपाल भये
खरे हैं ॥ ८ ॥

मात्रिक कवित्त.

पंचम गुण थानक जो श्रावक, उतकृष्टी प्रतिमा धर होय ।
सचित्त त्याग ताको जिन बोलत, एक सु पट परिग्रहमें जोय ॥
साधु चतुर्दश परिग्रह राखहिं, पचखानन महिं एक न दोय ।
तीर्थकर लहि उड़द बाकुले, कहत लाज नहिं आवै लोय ॥ ९ ॥

कवित्त.

वापुरे विचारे मिथ्यादृष्टि जीव. कहा जानै, कौन जीव कौन
कर्म कैसें के मिलाप है । सदा काल कर्मनसों एकमेक होय रहे.
भिन्नता न भासी कौन कर्म कौन आप है ॥ यह तो सर्वज्ञ देव
देख्यो भिन्न भिन्न रूप, चिदानंद ज्ञान मयी कर्म जड़ व्याप है ।
तिहैं भाति मोह हीन जानै सरधानवान, जैसो सर्वज्ञ देखो तैं
सोही प्रताप है ॥ १० ॥

दोहा.

मोहभ्रमाष्टक कवितके, दोष न लीज्यो मित्त ॥
'भैया' हृदय विवेकधर, कीज्यो निर्मल चित्त ॥ ११ ॥

इति मोहभ्रमाष्टक ।

अथ आश्चर्यचतुर्दशी लिख्यते ।

दोहा.

नमों पदारथ सार को, निज अनुभूति प्रकाश ॥
सर्व द्रव्य व्यापी प्रभू, केवल ज्ञान प्रकाश ॥ १ ॥

कवित्त.

देहधारी भगवान करै नाहीं खान पान, रहै कोटिं पूरवलें
जगमें प्रसिधि है । बोलत अमोल बोल जीभ होठ हालै नाहिं,
देखै अरु जानै सब इन्द्री न अवधि है । डोलत फिरत रहै डग न
भरत कहै, परसंग त्यागी संग देखो केती रिधि है । ऐसी अचरज
वात मिथ्या उर कैसैं मात, जानै सांची दृष्टिवारो जाके
ज्ञाननिधि है ॥ २ ॥

देखत जिनंदजूको देखत स्वरूप निज, देखत है लोकालोक
ज्ञान उपजायके । बोलत है बोल ऐसे बोलत न कोउ ऐसैं, तीन
लोक कथनको देत है बतायके ॥ छहों काय राखिवेकी सत्य
वैन भाखिवेकी, पर द्रव्य नाखिवेकी कहै समुझायके । करम न-
सायवेकी आप निधि पायवेकी, सुखसों अघायवेकी रिद्धि
दै लखायके ॥ ३ ॥

वहिरापिका-छप्पय.

कहा सरसुतिके कंध ? कहो छिन भंगुर को है ? ।
काननको कहा नाम ? बहुतसों कहियत जो है ? ॥
भूपतिके संग कहा ? साधु राजै किहूँ थानक ? ।
लच्छिय विरथी कहाँ ? कहा रेसम सम वानक ? ॥
श्रेयांस राय कीन्हों कहा ? सो कीजे भविजन ददा ।

सब अर्थ अंत यह तंत सुन, वीतराग सेवहु सदा ॥४॥

भावार्थ—सुन वीत राग सेव हो सदा—इसके तीसरे और दूसरे अक्षरसे
वीन, चौथे और दूसरेसे तन, पांचवें दूसरेसे रान, छठवें दूसरेसे गन, सातवें

(१) मिथ्यातीके.

दूसरेसे सेन, आठवें दूसरेसे वन, नवमें दूसरेसे हो न, दशवें दूसरेसे सन,
और ग्यारहवें दूसरेसे दान, वनकर सब प्रश्नोंके उत्तर निकलते हैं ।

अन्तर्लपिका—छप्पय ।

कहो धर्म कव करै ? सदा चित्तमें क्या धरिये ? ।

प्रभु प्रति कीजे कहा ? दानको कहा उचरिये ? ॥

आस्रव सों किम जीत ? पंच पदकों कहा गहिये ? ॥

गुरु शिक्षा किम रहै ? इन्द्र जिनको कहा कहिये ॥

सब प्रश्न वेद उत्तर कहत, निज स्वरूप मनमें धरो ।

‘भैया’ सुविचक्षण भविक जन, सदा दया पूजा करो ॥५॥

भावार्थ—सदा दया पूजा करो—इस पदके चार शब्दों में तो पहिले
चार प्रश्नोंका उत्तर मिलता है. जैसे धर्म कव करै ? सदा, चित्तमें सदा
क्या रक्खे ? दया आदि, और अन्तके चार प्रश्नोंका उत्तर इन्हीं चार
शब्दोंको उल्टे पढ़नेसे (रोक, जापु, याद, दास) से निकलता है.

अन्तर्लपिका छप्पय.—

मन्दिर वनवावो ? मूर्ति, लाव—?सैना सिंगारहु ? ।

अम्बु आन ? वासर प्रमाण, ? पहुँची नग धारहु ? ॥

मिश्री मंगवा ? कुमुद, लाव ? सरसी तन पिक्खहु ? ।

तौल लेहु ? दत्त लच्छि, देहु ? मुनि मुद्रा सिक्खहु ? ॥

सब अर्थ भेद भैया कहत, दिव्य दृष्टि देखहु खरी ।

आकृत्रिम प्रतिमा निरखतसु, करि न घरी न भरी धरी ॥

भावार्थ—प्रथम द्वितीय और तृतीय प्रश्न के उत्तर ‘करी न’ इस शब्दके
तीन अर्थ करने से निकलते हैं (१ कड़ी नहीं है २ बनवाई नहीं, ३ हाथी
नहीं.) दूसरे पादके चौथे पाँचवें छठवें प्रश्नके उत्तर ‘घरी न’ इस शब्दके

तीन अर्थ (१ घड़ा नहीं, घड़ी (वाच) नहीं, २ वनी नहीं.) इस प्रकार करनेसे निकलते हैं तृतीय पादके तीन प्रश्नोंका उत्तर भरी न के तीन अर्थ (१ भरी नहीं गई २ भरी नहीं, ३ जलसे भरी नहीं) से निकलता है. और चतुर्थ पादके प्रश्नोंका उत्तर ' धरी न ' के तीन अर्थ (१ पंसेरी नहीं, २ रक्खी नहीं है ३ धारण नहीं की,) निकालनेसे मिलता है ॥ ६ ॥

प्रश्न. दोहा.

पूछत है जन जैनको, चिदानंदसों वात ॥

आये हो किस देशतैं, कहो कहां को जात ॥ ७ ॥

देश तो प्रसिद्ध है निगोद नाम सिंधुमहा, तीनसे तेताल राजु जाको परमान है । तहांके वसैया हम चेतनके वसवारे, वसत अना दिकाल वीत्यो विन ज्ञान है ॥ तहांतैं निकस कोऊ कर्म शुभ जोग पाय, आये हम इहां सुने पुरुष प्रधान है । ताके पाँय परवेको महाव्रत धरवेको, शिष्य संग करवेको चलिबो निदान है ॥ ८ ॥

एक दिन एकठौर मिले ज्ञान चारितसों, पूछी निज वात कहां रावरो निवास है । बोले ज्ञान सत्यरूप चिदानंद नाम भूप, असंख्यात परदेश ताके पुरवास है ॥ एक एक देशमें अनंत गुण ग्राम वसै, तहांके वसैया हम चरणोंके दास हैं । तूह चल मेरे संग दोऊ मिलि लूटैं सुख, मेरे आँख तेरे पाँय मिलो योग खास हैं ॥ ९ ॥

लाल वस्त्र पहिरेसों देह तो न लाल होय, लाल देह भये हंस लाल तौ न मानिये । वस्त्रके पुराने भये देह न पुरानी होय, देहके पुराने जीव जीवन न जानिये ॥ वसनके नाश भये देहको

न नाश होय, देहके न नाश हंस नाश न बखानिये । देह दर्व
पुद्गलकी चिदानंद ज्ञानमयी, दोऊ भिन्न भिन्न रूप 'भैया' उ-
र आनिये ॥ १० ॥

मात्रिक कवित्त.

ग्यारह अंग पढ़ै नव पूरव, मिथ्या बल जिय करहिं बखान ।
दे उपदेश भव्य समुझावत, ते पावत पदवी निर्वान ॥
अपने उरमें मोह गहलता, नहिं उपजै सत्यारथ ज्ञान ।
ऐसे दरवश्रुतके पाठी, फिरहिं जगत भाखें भगवान ॥ ११ ॥

प्रश्न कवित्त. (अर्द्धाली)

दर्शन भ्रष्ट भ्रष्ट सोई चेतन, दर्शन भ्रष्ट मुक्त नहिं होय ।
चारित भ्रष्ट तरे भवसागर, यह अचरज पूछत शिशु कोय ॥ १२ ॥
उत्तर चौपाई.

तेरह विधि चारित जो धरै । तिहैं विन तजे न भवदधि तरै ॥
जब ये भाव करहिं उर नाश । तब जिय लहै मोक्षपद वात्स ॥ १३ ॥
कवित्त.

मांस हाड़ लोहू सानि पूतरी बनाई काहु, चामसों लपेट ता-
में रोम केश लाये हैं । तामें मलमूत भर झूमि केई कोटि धर,
रोग संचै कर कर लोकमें ले आये हैं ॥ बोलै वह खाउं खाउं खा-
ये विना गिर जाऊं, आँक्यो न धरों पाउं ताही पै लुभाये हैं ।
ऐसे भ्रम मोहने अनादिके भ्रमाये जीव, देखै परतक्ष तोउ चक्षु
मानो छाये हैं ॥ १४ ॥

यह आश्चर्य चतुर्दशी, पढत अचंभो होय ॥

भैया लोचन ज्ञानके, खुलत लखै सब कोय ॥ १५ ॥

इति आश्चर्यचतुर्दशी.

अथ रागादिनिर्णयाष्टक लिख्यते ।

दोहा.

सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम, केवल ज्ञान जिनंद ॥

तासु चरन वंदन करों, मन धर परमानंद ॥ १ ॥

मात्रिक कवित्त.

रागद्वेष मोहकी परणति, हैं अनादि नहिं मूल स्वभाव ।

चंतन शुभ्र फटिक मणि जैसैं, रागादिक ज्यों रंग लगाव ॥

वाही रंग सकल जग मोहत, सो मिथ्यामति नाम कहाव ।

समदृष्टी सो लखें दुहं दल, यथायोग्य वरतै कर न्याव ॥ २ ॥

दोहा.

जो रागादिक जीवके, हैं कहूं मूल स्वभाव ॥

तो होते शिव लोकमें, देख चतुर कर न्याव ॥ ३ ॥

सबहि कर्मतें भिन्न हैं, जीव जगतके माहिं ॥

निश्चय नयसों देखिये, फरक रंच कहूं नाहिं ॥ ४ ॥

रागादिकसों भिन्न जव, जीव भयो जिहूँ काल ॥

तव तिहूँ पायो मुक्ति पद, तोरि कर्मके जाल ॥ ५ ॥

ये हि कर्मके मूल हैं, राग द्वेष परिणाम ॥

इनहीसैं सब होत हैं, कर्म बन्धके काम ॥ ६ ॥

चान्द्रायण छन्द. (२५ मात्रा)

रागी बांधें करम भरमकी भरनसों ।

वैरागी निर्वद्य स्वरूपाचरनसों ॥

यहै बंध अरु मोक्ष कहीं समुझायके ।

देखो चतुरं सुजान ज्ञान उपजायके ॥ ७ ॥

कवित्त.

राग रु द्वेष मोहकी परणति, लगी अनादि जीव कहँ दोय ।
 तिनको निमित पाय परमाणू, बंध होय वसु भेदहिं सोय ॥
 तिनतैं होय देह अरु इन्द्रिय, तहाँ विपै रस भुंजत लोय ।
 तिनमें राग द्वेष जो उपजत, तिहँ संसारचक्र फिर होय ॥ ८ ॥

दोहा.

रागादिक निर्णय कह्यो, थोरेमें समुझाय ॥
 'भैया' सम्यक नैनतैं, लीज्यो सवहि लखाय ॥ ९ ॥

इति रागादिकनिर्णयाष्टक ।

अथ पुण्यपापजगमूलपचीसिका लिख्यते.

दोहा.

परमातम परतक्ष है, सिद्ध सकल अरहंत ॥
 नितप्रति वंदों भावधर, कहूँ जगत विरतंत ॥ १ ॥

कवित्त.

स्वामी श्रीमंधरजीके पाय पर ध्यान धर, वीनती करत भवि दो-
 ऊ कर जोरकें । तुम जगदीश जग ईश तिहुं लोकनके, भक्त
 जन संग किन लेहु अघ तोरकें ॥ देव सरवज्ञ सव जीवोंकी करत
 रक्षा, जीवनकी जाति हम कहैं मद छोरकें । सेव इहिविधि करैं
 नाम हिरदैमें धरैं, जयैं जिनदेव जिनदेव बल फोरकें ॥ २ ॥

आगे मद माते गज पीछें फोज रही सज, देखैं अरि जाय
 भज वसै बन बनमें । ऐसे बल जाके संग रूप तो बन्यो अनंग,
 चमू चतुरंग लखि कहै धन धन मैं ॥ पुण्य जब खिस जाय परयो
 परयो विललाय, पेट हू न भरयो जाय पाप उदै तनमें । ऐसी

ऐसी भांतिकी अवस्था कई धरै जीव, जगतके वासी देखे हांसी आवै मनमें ॥ ३ ॥

चामके शरीर माहिं वसत लजात नाहिं, देखत अशुचि तोर लीन होय तनमें । नारि वनी काहे की विचार कछु करै नाहिं, रीझि रीझि मोह रहै चामके वदनमें ॥ लछमीके काज महाराज पद छांड देत, डोलत है रंक जैसैं लोभकी लगनमें । तनकसी आयुपै उपाय कई कोटि करै, जगतके वासी देखे हांसी आवै मनमें ॥ ४ ॥

छप्पय.

पुण्य उदय जव होय, जीव नर देही पावै ।

पुण्य उदय जव होय, तवहिं घर लछमी आवै ॥

पुण्य उदय जव होय, सवै जिय हुकुम चलावै ।

पुण्य उदय जव होय, तवै शिर छत्र धरावै ॥

जव पुण्य उदय खिस जाय अरु, पाप उदय आवै निकट ।

तव परै नरकमें जीव यह, सहै घोर संकट विकट ॥ ५ ॥

पाप उदय परतच्छ, इच्छ नहिं पूजै मनकी ।

पाप उदय परतच्छ, विथा बहु वाढ़ै तनकी ॥

पाप उदय परतच्छ, लच्छ घरमें नहिं आवै ।

पाप उदय परतच्छ, जीव बहु संकट पावै ॥

जव पाप उदय मिट जाय अरु, पुण्य उदय आवै प्रवल ।

तव वही जीव सुख भोगवै, उथल पथल इम जगत थल ॥ ६ ॥

कवित्त.

पापके कियेसों हंस मलिन निरुद्ध होय, यह तौ न बूझै
कोई पाप ही करत हैं। जल थल जीवमयी कहै वेद स्मृति माहिं
पाँय तल जीव वसै छूयेतैं मरत हैं ॥ छोटे बड़े देहधारी सबमें
विराजै विष्णु, ताके तौ विनासे पाप कैसे न भरत हैं। इतनों
विचार नाहिं पाप किये मुक्ति जाँय, ताहीतैं अज्ञानी जीव नर्क-
में परत हैं ॥ ७ ॥

नागरिन संग केई सागरन केलि करी, राग रंग नाटक
सों तोऊ न अघाये हो ॥ नर देह पाय तुम आयु पत्य तीन पा-
ई, तहांहु विपै किलोल नानाभाँति गाये हो ॥ जहां गये तहां
तुम विपैसों विनोद कीन्हों, ताहीतैं नरकमें अनेक दुख पाये
हो। अजहूं सम्हारि विपै डार क्यों न चिदानंद, जाके संग दुःख
होय ताहीसों लुभाये हो ॥ ८ ॥

जहां तोहि चलवो है साथ तू तहां को दूँडि, इहां कहां लो-
गनसों रह्यो तू लुभाय रे। संग तेरे कौन चलै देख तू विचार
हिये, पुत्र कै कलत्र धन धान्य यह काय रे ॥ जाके काज पाप कर
भरत है पिंड निज, है है को सहाय तेरे नर्क जब जाय रे। तहां
तौ अकेलो तूही पाप पुण्य साथी दोय, तामें भलो होय सोई
कीजे हंसराय रे ॥ ९ ॥

जौलों तेरे ज्ञान नैन खुले नाहिं चिदानंद, तौलों तुम मोह
वश सूरदास है रहे। हरके पराये प्राण पोषत हो देह निज, कहो
यह कौन धर्म कौन पंथ लै रहे ॥ पापके कियेसों कछु पुण्य

नाही हैं है तोहि, एतो हू विचार नाही ऐसे ज्ञान ख्वै रहे । नर्कमें परंगो कौन ? संकट सहैगो कौन, अजहूं सम्हारो क्यों न कौन नींद स्व रहे ॥ १० ॥

सरवज्ञ देवजूकी सेव करै सब इन्द्र, तिनहूके कबला अहार नाहीं लीजिये । मुनि होय लब्धिधारी ते चलै अकाश माहिँ, कबलीको भूमचारी ऐसे क्यों कहीजिये ॥ जाके देखे वैरभाव जाहिं सब जीवनके, ताके आगें साधु जरै कैसें के पतीजिये ! ऐसो मिथ्यावन्तने बनाय कहूं तन्त लिखो, संत हैं सचेत यों विवेक हिये कीजिये ॥ ११ ॥

पंचमें जो गुण थान भाव जो विशुद्ध होय, चढै जिय सातवें प्रसिद्ध यहवात है । छटो गुण थानक जा तियको न होय कहूं, नगन न रहि सकै लज्जावंत गात है ॥ मनपर्जय ज्ञान हू, मनै कियो सरवज्ञ, ध्यानहूको योग नाहीं चढि कैसें जात है । तासों कहै तीर्थकर पद पाय मुक्ति भई, ऐसे मिथ्यावादिनसों कैसेंके वसात है ॥ १२ ॥

सोवत अनादि काल वीत्यो तोहि चिदानंद, अजहूं सम्हार किन मोह नींद खोयकें । सोयो तू निगोद मांहि ज्ञान नैन मूंद आप, सोयो पंच थावरमें शक्तिको समोर्यके ॥ विकलत्रै देह पाय तहां तूही सोय रह्यो, सोयो न प्रमान धर वाही रूप होयके ॥ पंच इन्द्री विपै माहिँ मग्न होय सोय रह्यो, खोयो तैं अनंतो काल याही भाँति सोय कै ॥ १३ ॥

चंद्रायण. छन्द ।

पुण्यपापको खेल, जगतमें वनि रह्यो ।
 इनहीके परसाद, सुखी दुखिया कह्यो ॥
 दोड़ जगतके मूल, विनाशी जानिये ।
 इनहीतैं जो भिन्न, सुखी सो मानिये ॥ १४ ॥
 मोह मगन संसार, विषय सुखमें रहै ।
 करै न आप सम्हार, परिग्रह संग्रहै ॥
 जाने यह थिर वास, नाश नहिं होयगो ।
 पाके मानुष जन्म, अकारथ खोयगो ॥ १५ ॥
 देवधर्म परतीति, परीक्षा सांच की ।
 सीखै नाहिं सुदृष्टि, रतन अरु कांचकी ॥
 जन्म अकारथ जाय, सुनो मन बावरे ।
 पीछें फिर पछताय, बहुर नहिं दावरे ॥ १६ ॥
 पुण्य पाप परतक्ष, दोड़ जगमूल है ॥
 इनहीसैं संसार, भरमकी भूल है ॥
 केवल शुद्ध स्वभाव, लखै नहिं हंसको ।
 ताही तैं दुम होय, करमके वंशको ॥ १७ ॥
 शुद्ध निरंजन देव, सदा निज पास है ।
 ताको अनुभव करो, यही अरदास है ॥
 कबहू भूल न जाहु, पुण्य अरु पापमें ।
 केवल ज्ञान प्रकाश, लहोगे आपमें ॥ १८ ॥

१ न जाने सब प्रतियोगों इसको 'अरिल' क्यों लिखा है. अरिल १६ मात्राका होता है और इसमें २१ मात्रा हैं, इसे 'तिलोकी' भी कहते हैं.

पुण्य पाप विन जीव, न कोई पाइये ।

औरनकी कहा चली, जिनेश्वर गाइये ॥

येही जगके मूल, कहे समुझायके ।

जो इनसेती भिन्न, वसै शिव जायके ॥ १९ ॥

कवित्त.

कर्मनके हाथ ये विकाये जग जीव सबै, कर्म जोई करै सोई इनके प्रमान है । वैक्रिय शरीर पाय देव आप मान रहे, देवनकी रीति करै सुनै गीत गान है ॥ औदारिक देह पाय नर नारी रूप भये, कीन्हीं वह रीति मानों पिये मद पान है । नरकमें गये तहां नारकी कहाये आप, ऐसो चिदानंद भैया देख्यो ज्ञानवान है ॥ २० ॥

दोहा.

राम श्याम कित होत है, सो गति लहै न गूढ़ ॥

धोय चामकी देहको, शुचि मानत है मूढ़ ॥ २१ ॥

कहा चर्मकी देहमें, परम परे हो आन ॥

देखो धर्म संभारिकें, छांड भरमकी वान ॥ २२ ॥

करम करत है भरमतैं, धरम तुम्हारो नाहिं ॥

परम परीक्षा कीजिये, शरम कहा इहि माहिं ॥ २३ ॥

करन भरनतैं होयगो, परन नरकके माहिं ॥

ज्ञान चरनके धरन विन, तरन तुम्हारो नाहिं ॥ २४ ॥

सरन सदा डूंडत रहै, मरन वचावहि कोय ॥

डरन ग्रान निकसे परें, तरन कहांसों होय ॥ २५ ॥

जीव कौन पुद्गल कहा, को गुण को परजाय ॥
 जो इतनो समुझै नहीं, सो मूर्ख शिरराय ॥ २६ ॥
 पुण्य पाप वश जीव सब, वसत जगतमें जान ॥
 'भैया' इतनै भिन्न जो, ते सब सिद्ध समान ॥ २७ ॥

इति पुण्यपापजगमूलपचीसिका.

अथ बावीस परीसहनके कवित्त लिख्यते ।

दोहा.

पंच परम पद प्रणमिके, प्रणमों जिनवर वानि ॥
 कहों परीसह साधुकी, विंशति दोय बखानि ॥ १ ॥

कवित्त.

धूप सीत क्षुधाजीत तृषा डंस भयभीत, भूमिसैन बधबंध स-
 है सावधान है । पंथत्रास तृणफांस दुरगंध रोगभास, नगनकी
 लाज रति जीते ज्ञानवान है ॥ तीर्थ मानअपमान धिर कुवच
 नवान, अजाची अज्ञान प्रज्ञा सहित सुजान है । अदर्शन अलाभ ये
 परीसह हैं बीस द्वै; इन्है जीतै सोई साधु भाखे भगवान है ॥ २ ॥

१. ग्रीष्मपरीसह.

ग्रीष्मकी ऋतुमाहिं जलथल सूख जाहिं, परतप्रचंड धूप आगिसी
 बरत है । दावाकीसी ज्वाल माल वहत बयार अति, लागत लपट
 कोऊ धीरन धरत है ॥ धरती तपत मानों तवासी तपाय राखी,
 बड़वा अनल सम शैल जो जरत है । ताके शृंग शिलापर जोर
 जुग पांव धर, करत तपस्या मुनि करम हरत है ॥ ३ ॥

२. शीतपरीसह.

शीतकी सहाय पाय पानी जहां जम जाय, परत तुषार आय

हरे वृक्ष झाड़े हैं । महा कारी निशा माहिं घोर घन गरजाहिं,
चपलाहू चमकाहिं तहां दृग गाढ़े हैं ॥ पौनकी झकोर चलै पाय
र हैं तेहू हिलै, ओरानके ढेर लगे तामें ध्यान वाढ़े हैं । कहां
लों वखान कहां हेमाचलकी समान, तहां मुनिराय पांय जोर
दृढ ठाढ़े हैं ॥ ४ ॥

जोग देके जोगीश्वर जंगलमें ठाढ़े भये, वेदनीके उदैतै परी-
सहै सहत हैं । कारी घन घटा लागै भारी भयानक अति, गाज
विजु देखे धीर कोऊ न गहत हैं ॥ मेहकी भरन परै मूसरसी
धार मानो, पौनकी झकोर किधों तीर से बहत हैं । ऐसी ऋतु
पावसमें पावत अनेक दुःख, तऊ तहां सुख वेद आनंद लहत
हैं ॥ ५ ॥

३. क्षुधापरीसह.

जगतके जीव जिहँ जेर जीतराखे अरु, जाके जोर आगें सब
जोरावर हारे हैं । मारत मरोरे नहिं छोरे राजारंक कहूँ, आंखिन
अंधेरी ज्वर सब दे पछारे हैं । दावाकीसी ज्वाला जो जराय डारै
छाती छवि, देवनको लागै पशुपंछी को विचारे हैं । ऐसी क्षुधा
जोर भैया कहित कहां लों और, ताहि जीत मुनिराज ध्यान
थिर धारे हैं ॥ ६ ॥

४. तृषापरीसह.

धूपकी धखनि परै आगसो शरीर जरै, उपचार कौन करै
दहै द्वार आनके । पानीकी पियास जेती कहै को वखान तेती,
तीनों जोग थिरसेती सहै कष्ट जानके ॥ एक छिन चाह नाहिं

पानीके परीसे माहिं, प्राण किन नाश जाहिं रहै सुख मानके ।
ऐसी प्यास मुनि सहै तब जाय सुख लहै, 'भैया इहिभाँति कहै
बंदिये पिछानके ॥ ७ ॥

५. ढँस मस्कादिपरीसह.

सिंह साँप ससा स्याल सूअर ओ स्वान भालु, बाघ वीछी वा
नर सु बाजने सताये हैं । चीता चील्ह चरख चिरैया चूहा चेंटी
चैंटा, गज गोह गाय जो गिलहरी बताये हैं ॥ मृग मोर मांकरी सु
मच्छर ओ मांखी मिल, भौरा भौरी देख कै खजूरा खरे धाये हैं ।
ऐसे ढँस मसकादि जीव हैं अनेक दुष्ट, तिनकी परीसे जीते
साधुजू कहाये हैं ॥ ८ ॥

६. शय्यापरीसह.

शुद्ध भूमि देख रहै दिनसेती योग गहै, आसन सु एक लहै
धरै यह टेक है । कैसो किन कष्ट परै ध्यानसेती नाहिं टरै, देहको
ममत्व हरै हिरदै विवेक है ॥ तीनों योग थिरसेती सहत परीसे जेती,
कहै को बखान तेती होय जे अनेक हैं । ऐसे निशि शैन करै अ-
चल सु अंग धरै, भव्य ताकें पाँय परै धन्य मुनि एक हैं ॥ ९ ॥

७. वधबंधपरीसह.

कोऊ बांधो कोऊ मारो कोऊ किन गहडारो, सबनके संकट
सुबोधतैं सहतु है । कोऊ शिर आग धरो कोऊ पील प्राण हरो,
कोऊ काट डूक करो द्वेष न गहतु है ॥ कोऊ जल माहिं बोरो
कोऊ लेके अंग तोरो, कोऊ कह चोर मोरो दुख दे दहतु है ।
ऐसे बधबंधके परीसहको जीतै साधु, 'भैया' ताहि वार वार वं-
दना कहतु है ॥ १० ॥

८. चर्यापरीसह—छप्पय ।

जब मुनि करहिं विहार, पंथ पग धरहिं परक्खत ।
 ऊँठ हाथ परवान, दृष्टि जुग भूमि परक्खत ॥
 चलत ईरज्या समिति, पंच इन्द्रिय वश कीनें ।
 दशहुं दिशा मन रोक, एक करुणारस भीनें ॥
 इम चलत पूज्य मुनिराज जब, होय खेद संकट विकट ।
 तिहँ सहहिं भावथिर राखके, तव धावें भव उदधितट ॥ ११ ॥

९. तृणफांसपरीसह—छप्पय ।

परत आंखि मँहँ कछुक, काढि नहिं डारत तिनको ।
 चुभत फांस तन मांहि, सार नहिं करते जिनको ॥
 लागत चोट प्रचंड, खेद नहिं कहूँ जनावत ।
 बाणादिक बहु शस्त्र, कहत कहूँ पार न आवत ॥
 इम सहत सकल दुख देह दमि, रागादिक नहिं धरत मन ।
 भैया त्रिकाल वंदत चरन, धन्य धन्य जग साधु धन ॥ १२ ॥

१०. ग्लानिपरीसह—छप्पय.

लगत देहमें मैल, घोय नहिं तिनको झारत ।
 देहादिकतैं भिन्न, शुद्ध निज रूप विचारत ॥
 जल थल सब जिय जंत, संत है काहि सताऊं ।
 सबही मोहि समान, देत दुख मैं दुख पाऊं ॥
 इम जान सहत दुरगंध दुख, तव गिलान विजयी भवत ।
 'भैया' त्रिकाल तिहँ साधु के, इंद्रादिक चरनन नमत ॥ १३ ॥

११. रोगपरीसह—छप्पय.

वात पित्त कफ कुण्ट, स्वास अरु खाँस खैण गनि ।
 शीत ताप शिरवाय, पेट पीड़ा जु शूल भनि ॥
 अंतीसार अधशीस, अरु जो होय जलंधर ।
 एकांतर अरु रुधिर, बहुत फोड़ा जु भगंदर ॥
 इम रोग अनेक शरीरमहिं, कहत पार नहिं पाइये ।
 मुनिराज सबन जीते रहैं, औपधि भाव न भाइये ॥ १४ ॥

दोहा.

ये एकादश वेदिनी, कर्म परीसह जान ।
 मोहसहित बलवान हैं, मोह गये बलवान ॥ १५ ॥

१२. नग्नपरीसह—कवित्त.

नग्नके रहिवेको महा कष्ट सहवेको, कर्मवन दहवेको बडे
 महाराज हैं । देह नेह तोरवेको लोक लाज छोरवेको, परम प्रीति
 जोरवेको जाको जोर काज हैं ॥ धर्म थिर राखवेको परभाव नाख
 वेको, सुधारस चाखवेको ध्यानकी समाज हैं । अंबरके त्यागेसों
 दिगम्बर कहाये साधु, छहों कायके आराध यातैं शिरताज हैं ॥ १६ ॥

१३. रतिअरतिपरीसह—कवित्त.

आंखनिकी रति मान दीपक पतंग परै, नासिकाकी रतिमान
 भ्रमर भुलाने हैं । काननकी रतिमृग खोवत है प्राण निज, फर-
 सकी रति गज भये जो दिवाने हैं ॥ रसनाकी रति सब जगत
 सहत दुख, जानत है यह सुख ऐसे भरमाने हैं ॥ इंद्रिनकी र-
 ति मान गति सब खोटी करै, ताहि मुनिराज जीत आप सुख
 माने हैं ॥ १७ ॥

छप्पय.

प्रकृति विरोध अहार, मिले मुनि जो दुख पावै ।
सोहि अरति परिणाम, तहाँ समता रस भावै ॥
औरहु परसंयोग, होत दुख उपजै तनमें ।
तहां अरति परनाम, त्याग थिरता धरै मनमें ॥

इम सहत साधु दुख पुंज बहु, तबहु क्षमा नहिं उर दरत ।,
'भैया' त्रिकाल मुनिराज सो अरतिजीत शिवपद वरत ॥१८॥

१४. श्रीपरीसह—कवित्त.

नारिके निहारत विचार सब भूलि जांय, नारीके निहारे
परिणाम फिरे जात हैं । नारिके निहारत अज्ञान भाव आय झुकै,
नारिके निहारत ही शील गुणघात हैं ॥ नारिके निहारत न
सूरवीर धीर धरै, लोहनके मार जे अडिग ठहरात हैं । ऐसी
नारि नागनिके नैनको निमेष जीत, भये हैं अजीत मुनि जगत
विख्यात हैं ॥ १९ ॥

१५. मानअपमान परीसह—कवित्त.

जहाँ होय मान तहाँ मानत महान सुख, अपमान होय
तहाँ मृत्युके समान है । मानके गुमान आप महाराज मान रहे,
होत अपमान मूढ हरै दशों प्राण हैं । मानहीकी लाज जग सहत
अनेक दुख, अपमान होत धरै नरक निदान है ॥ ऐसे मान
अपमान दोऊ दुष्ट भाव तज, गनत समान मुनि रहै सावधान
हैं ॥ २० ॥

१६. थिरपरीसह—छप्पय.

जब थिर होहिं मुनिंद, एक आसन दृढ धरई ।
जब थिर होहिं मुनिंद, अंग एको नहिं टरई ॥

जब थिर होहिं मुनिंद, कष्ट किन आवहिं केते ।
 जब थिर होहिं मुनिंद, भावसों सहै जु तेते ॥
 इम सहत कष्ट मुनिराज अति, रोगदोष नहिं धरत मन ।
 उतकृष्ट होहिं इक बेर जो, सब उनईस परीस भन ॥ २१ ॥

१७. कुवचनपरीसह—छप्पय.

कुवचन बान समान, लगै तिहिं मार गिरावहिं ।
 कुवचन अगनि समान, पैठि गुन पुंज जलावहिं ॥
 कुवचन बज्र विशाल, भाव गिरि ढाहैं पलमें ।
 कुवचन विषकी झाल, मोह दुख दै बहु कलमें ॥
 कुवचन महान दुख पुंज यह, लगे बचैं नहिं जगत जन ।
 'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहूँ, जीत लहै निज अखय धन ॥ २२ ॥

१८. अजाचीपरीसह घनाक्षरी (३२ वर्ण)

अजाची धरत व्रत जाचना करत नाहिं, इंद्री उमंग हरत
 महा संतोष करकें । रागादि दुरत भाव क्रोधादिवंध गरत, वरत
 स्वभाव शुद्ध मनोविकार हरकें ॥ सरनसों छरत न करत
 तपस्या जोर, दुरत अनेक कष्ट क्षमा खड्ग धरकें । दया
 भंडार भरत वरत सु साधु ऐसैं, 'भैया' प्रणाम करत त्रिकाल
 पांय परकें ॥ २३ ॥

१९. अज्ञानपरीसह—छप्पय ।

सम्यक ज्ञान प्रमान, होहिं मुनि कोय तुच्छ मति ।
 सुनिहिं जिनेश्वर बैन, याद नहिं रहै हृदय अति ॥
 ज्ञानावरण प्रसाद, बुद्धि नहिं प्रगटै जाकी ।
 पूरब भव थिति बंध, इहाँ कछु चलत न लाकी ॥

इम सहत कष्ट मुनि ज्ञानके, होहिं परीसह प्रबलजिय ।

तिहँ जीत प्रीति निजरूपसों, लहत शुद्ध अनुभूत हिय ॥ २४ ॥

२०. प्रज्ञापरीसह—छप्पय ।

प्रज्ञा बल नहिं होय, तहाँ विद्या नहिं आवै ।

प्रज्ञा बल नहिं होय, तहां नहिं पढै पढावै ॥

प्रज्ञा प्रबल न होय, तहाँ चर्चा नहिं सूझै ।

प्रज्ञा प्रबल न होय, तहाँ कछु अर्थ न वूझै ॥

इम बुद्धि विशेष न होय जित, तित अनेक परिसह सहत ।

‘भैया’ त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत शुद्ध अनुभौ लहत ॥ २५ ॥

२१. अदर्शनपरीसह—छप्पय ।

समय प्रकृति मिथ्यात, जासु उरतैं नहि टरई ।

सो जिय है गुनवंत, तथा वेदक पद धरई ॥

दर्शन निर्मल नाहिं, मोहकी प्रकृति लखावै ।

वहै अदर्शन कष्ट, कहत कैसें बन आवै ॥

परिणाम खेद बहुविधि करत, तौ हू निर्मल होय नहिं ।

‘भैया’ त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत रहै निज आप महि ॥ २६ ॥

२२. अलामपरीसह—कवित्त.

अंतराय कर्मके उदैतैं जो अलाम होय, ताके भेद दोय कहे
निश्चै व्यवहार है । निश्चै तो स्वरूपमें न थिरता विशेष रहै, वह

अंतराय जो रहै न एक सार है ॥ व्यवहार अंतराय मिलै न

अहार योग, और हू अनेक भेद अकथ अपार है । ऐसैं तौ

अलाम की परीसहको जीत साधु, भये हैं अतीत ‘भैया’ वंदै

निरधार है ॥ २७ ॥

बाईसपरीसहविजयी मुनिराजकी स्तुति
कुंडलिया.

महा परीसह बीस द्वय, तिहँ जीतनको धीर ।
धन्य साधु संसार में, बडे सूरवर वीर ॥
बडे सूरवर वीर, भीर भवकी जिहँ टारी ।
कर्म शत्रुको जीत, भये शिवके अधिकारी ॥
धारी निजनिधि संच, पंच पदकोजिहँ लहा ।
भैया करहि प्रणाम, परीसह विजयी सु महा ॥ २८ ॥

छप्पय.

सत्रहसे उनचास मास, फागुण सुख कारी ।
सुदि वारस गुरुवार, सार मुनि कथा सवाँरी ॥
विकट परीसह जीत, होत जे शिवपदगामी ।
ते त्रिभुवनके नाथ, प्रगट जग अंतरजामी ॥
तिहँ चरन नमत हिरदै हरखि, कहत गुननकी माल यह ।
कवि भैया द्वैकर जोरके, वंदन करहिं त्रिकाल लह ॥ २९ ॥
हृदयराम उपदेशतै, भये कवित्त ये सार ।
मुनिके गुण जे सरदहैं, ते पावहिं भव पार ॥ ३० ॥
इति बाईस परीसह कवित्तबंध.

अथ मुनिके छियालीसदोषवर्जितआहारवि-
धिवर्णन लिख्यते.

दोहा.

अरहंत सिद्ध चितारचित, आचारज उवझाय ।
साधुसहित वंदन करौ, मनवच शीस नवाय ॥ १ ॥

दोष छियालिस टारकें, मुनि जो लेहिं अहार ॥
नाम कथन ताके कहूं, जिन आगम अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई.

अस्थि चर्म सूखे अरु हरे । दृष्टि देख भोजन परिहरे ॥
उखली खोटै चक्की चलै । शिलापिसंती देखत टलै ॥ ३ ॥
गोवर थापै माटी छुवै । कोरे वस्त्र भीट जो हुवै ॥
चूल्हो जरतो नयन निहार । ता घर मुनि नहिं लेहिं अहार ॥ ४ ॥
शिरहिं नहाती दीखै कोय । सीस कंधही करती होय ॥
कच्चे पानी परसै अंग । ता घरतें मुनि फिरहिं अभंग ॥ ५ ॥
करवो खांडो दीसै कहीं । छन्नो फाटो है जो तहीं ॥
देत बुहारी दृष्टिहि परै । ताघर मुनि आयेतें फिरै ॥ ६ ॥
अन्नादिक सूकनको धरै । मिथ्याती भेटै तिहूँ धरै ॥
औंटे कोय कपास निहार । ताघर मुनि फिर जाहिं विचार ॥ ७ ॥
भीटै पाक स्वान मंजार । रोमकंबल परसन परिहार ॥
अग्निदाह जो दृष्टिहि परै । रोवत सुनै अहार न करै ॥ ८ ॥
प्रतिमा भंग सुनै जे कान । शास्त्र जरै इम सुनै सुजान ॥
प्रतिमा हरी भयो भयजोर । ता घर आये फिरहिं किशोर ॥ ९ ॥
विनघोये पट पहिरे होय । पड़िगाहैं श्रावक जो कोय ॥
ता कर लेय अहार न साध । अशुचिदोष लागै अपराध ॥ १० ॥
कर्कशवचन सुनहिं विकराल । विनयहीन जो हो अदयाल ॥
लागै चोट ललाटहिं पेख । फिरहिं साधु छर्दित नर देख ॥ ११ ॥
विकलत्रय आवै तिहूँ ठौर । नख केशादि अपावन और ॥
पानी बूंद परै आकास । ताघर मुनि फिरजाहिं विमास ॥ १२ ॥

खाज सहित रोगी नर देख । पीव बहत पीड़ित पुनि पेख ॥
 लोह दृष्टि परै जो कहीं । तो मुनि असन लेनके नहीं ॥१३॥
 मांसादिक मल दृष्टिहि परै । कंद रु मूल मृतक परिहरै ॥
 फल अरु बीज होंय तिहँ ठौर । तो मुनिलेहि न एकोकौर ॥१४॥
 बिना बीज ऊगो जो डार । ता निरखत नहिँ लेय अहार ॥
 ऐसे दोष छियालिस हीन । तजहिँ ताहि संयमि परवीन ॥१५॥
 उत्तम कुल श्रावकको जान । द्वारापेखन शुद्ध प्रमान ॥
 विनयवंत प्राशुक कर नीर । बोलै तिष्ठ स्वामि जगवीर ॥ १६ ॥
 ताघर दृष्टि विलोकहिँ साध । यहां न कोउ लागै अपराध ॥
 तब तिहँ मंदिरमें अनुसरै । प्राशुक भूमि निरख पग धरै ॥१७॥
 श्रावक जो प्राशुक आहार । कीन्हों दोष छियालिस डार ॥
 निजहित पोषनको परवार । ता महितें कछु भिन्न निकार ॥१८॥
 द्वै करजोर मुनीश्वर लेहिँ । श्रावक निजकरसों तिहँ देहिँ ॥
 पुनि कर फेर नीरको धरै । प्राशुकजल तिहँ करमें करै ॥ १९ ॥
 लेय अहार नीर तिहँ ठौर । जिनकल्पी उत्तम शिरमौर ॥
 थिवरकल्पिकी हू यह चाल । दोऊं मुनिवर दीनदयाल ॥ २० ॥
 दोऊं वनवासी निर्ग्रन्थ । दोऊं चलहिँ जिनेश्वर पंथ ॥
 दोऊं जपतप किरिया करैं । दोऊं अनुभव हिरदै धरैं ॥ २१ ॥
 जिनकल्पी एकाकी रहै । थिवरकल्पि शिष्यशाखा गहै ॥
 अट्टाईस मूलगुण सार । आपसाधु पालहिँ निरधार ॥ २२ ॥
 षष्ठम अरु सप्तम गुण थान । दोऊं रहैं परम परधान ॥
 पूरव कोटि वरष वसु घाट । उत्कृष्टै वरतै यह बाट ॥ २३ ॥
 केवलज्ञान दोऊं उपजाय । पंचमि गतिमें पहुंचै जाय ॥
 सुख अनंत विलसै तिहँ ठौर । तातैं कहैं जगत शिरमौर ॥ २४ ॥

संवत सत्रहसै पंचास । जेठशुदी पंचमि परकाश ॥
भैया चंदत मनहुलास । जयजय मुकतिपंथ सुखवास ॥ २५ ॥
इति छियालीसदोपरहित आहारशुद्धि चौपई.

अथ जिनधर्मपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

प्रगट देव परमातमा, चिदानंद भगवान ॥
चंदत हों तिनके चरन, नाथ शीस धर ध्यान ॥ १ ॥
छप्पय.

धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमें दया उभयविधि ।
धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमहिं लखै आपनिधि ॥
धन्य धन्य जिनधर्म, पंथशिवको दरसावै ।
धन्य धन्य जिनधर्म, जहाँ केवल पद पावै ॥

पुनि धन्य धन्य जिनधर्म यह, सुख अनंत जहाँ पाइये ।
'भैया' त्रिकाल निजघटविपै, शुद्ध दृष्टि धर ध्याइये ॥ २ ॥
जैनधर्मको मर्म, दृष्टि समकिततैं सूझै ।
जैनधर्मको मर्म, मूढ कैसें कर वूझै ॥
जैनधर्मको मर्म, जीव शिवगामी पावै ।
जैनधर्मको मर्म, नाथ त्रिभुवन को गावै ॥

यह जैनधर्म जगमें प्रगट, दया दुहुं जग पेखिये ।
'भैया' सुविचक्षण भविक जन, जैनधर्म निज लेखिये ॥ ३ ॥
जैनधर्म जयवंत, अंत जाको नहिं कवहू ।
जैनधर्म जयवंत, संत प्राणी हैं अवहू ॥
जैनधर्म जयवंत, जंत सबको सुखकारी ॥
जैनधर्म जयवंत, तंत सबको अधिकारी ॥

सत जैनधर्म जयवंत जग, प्रगट परम पद पेखिये ।

‘भैया’ त्रिकाल जिनधर्मतैं, सुख अनंत सब लेखिये ॥ ४ ॥

कल्पवृक्ष जिनधर्म, इच्छ सब पूरै मनकी ।

चिंतामन जिनधर्म, चिंत सब दारै जनकी ॥

पारस सो जिनधर्म, करै लोहादिक कंचन ।

काम धेनु जिनधर्म, कामना रहती रंच न ॥

जिनधर्म परमपद एक लख, सुख अनंत जहां पाइये ।

‘भैया’ त्रिकाल जिनधर्मतैं, मुक्तिनाथ तोहि गाइये ॥ ५ ॥

उदित तेजपरताप, होत दिनदिन जयकारी ।

तम अज्ञान विनाश, आश निज पर अधिकारी ॥

सबको शीतल करै, उष्ण क्रोधादिक दारै ।

सदा अमिय वरपंत, शांत रस अति विस्तारै ॥

‘भैया’ चकोर अंबुज भविक, सब प्राणिनको सुख करै ।

सो जैनधर्म जग चंद सम, सेवत दुख संकट दारै ॥ ६ ॥

जैनधर्म विन जीव ! जीत हूँ है नहिं तेरी ।

जैनधर्म विन जीव ! रीत किन करै घनेरी ॥

जैनधर्म विन जीव ! ज्ञान चारित कहूँ नाहीं ।

जैनधर्म विन जीव ! प्रकृति पर जाह न गाही ॥

इहि जैनधर्म विन जीव ! तुहै, दया उभय सूझै न दृग ।

‘भैया’ निहार निज घट विषै, जैनधर्म सोई मोक्षमग ॥ ७ ॥

जैनधर्म विन जीव ! तोहि शिवपंथ न सूझै ।

जैनधर्म विन जीव ! आप परको नहिं वूझै ॥

जैनधर्म विन जीव ! मर्म निजको नहिं पावै ।

जैनधर्म विन जीव ! कर्मगति दृष्टि न आवै ॥

इहि जैनधर्म विन जीव तुहं, केवलपद कितहू नहीं ।

अजहं संभारि चिरकाल भयो, चिदानंद ! चेतौ कहीं ॥ ८ ॥

जैनधर्मको जीव, आप परको सब जानै ।

जैनधर्मको जीव, बंध अरु मोक्ष प्रमानै ॥

जैनधर्मको जीव, स्यादवादी परत्यागी ।

जैनधर्मको जीव, होय निश्चय वैरागी ॥

इहि जैनधर्मको जीव जग, अजरामरपदवी लहै ।

‘भैया’ अनंत सुख भोगैव, आचारज इहविधि कहै ॥ ९ ॥

कवित्त.

पापनके कूट जे अटूट भरे घट माहिं, होते चिरकालनके सबे
निघटत हैं । लागे जो मिथ्यातभाव भूलिके सुभावनिज, तिन-
हूके पटल प्रभात ज्यों फटत हैं ॥ अपनी सुदृष्टि होत प्रगटै प्रका-
श ज्योत, तिहं लोकमें उद्योत सत्य प्रगटत हैं । ऐसो जिनधर्मके
प्रसादतें प्रकाश होय, अजहं संभार भैया काहेको रटत है ॥ १० ॥

छप्पय.

जो अरहंत सुजीव, जीव सब सिद्ध भणिजे ।

आचारज पुन जीव, जीव उवझाय गणिजे ॥

साधु पुरुष सब जीव, जीव चेतन पद राजै ।

सो तेरे घट निकट, देख निज शुद्ध विराजै ॥

सबजीव द्रव्यनय एकसे, केवलज्ञान स्वरूप मय ।

तस ध्यान करहु हो भव्यजन, जो पावहु पदवी अखय ॥ ११ ॥

सवैया.

जो जिनदेवकी सेव करै जग, ताजिनदेवसो आप निहारै ।

जो शिवलोक वसै परमात्म, तासम आत्म शुद्ध विचारै ॥

आपमें आप लखै अपनो पद, पाप रु पुण्य दुहं निरवारै ।
सो जिनदेवको सेवक है जिय, जो इहि भांति क्रिया करतारै ॥१२॥

कवित्त.

एक जीवद्रव्यमें अनंत गुण विद्यमान, एक एक गुणमें अनंत शक्ति देखिये । ज्ञानको निहारिये तो पार याको कहूं नाहिं, लोक ओ अलोक सब याहीमें विशेषिये ॥ दर्शनकी ओर जो विलोकिये तो वही जोर, छहों द्रव्य भिन्न भिन्न विद्यमान पेलिये । चारितसों थिरता अनंतकाल थिररूप, ऐसेही अनंत गुण भैया सब लेखिये १३

छप्पय.

राग दोष अरु मोहि, नाहिं निजमाहिं निरक्खत ।
दर्शन ज्ञान चरित्र, शुद्ध आतम रस चक्खत ॥
परद्रव्यनसों भिन्न, चिह्न चेतनपद मंडित ।
वेदत सिद्ध समान, शुद्ध निज रूप अखंडित ॥
सुख अनंत जिहि पदवसत, सो निहचै सम्यक महत ।
'भैया' सुविचक्षण भविक जन, श्रीजिनंद इहि विधि कहत १४

व्यवहार सम्यक लक्षण. छप्पय.

छहों द्रव्य नव तत्त्व, भेद जाके सब जानै ।
दोष अठारह रहित, देव ताको परमानै ॥
संयम सहित सुसाधु, होय निरग्रंथ निरागी ।
मति अविरोधी ग्रन्थ, ताहि मानै परत्यागी ॥
वरकेवल भाषित धर्मधर, गुण थानक बूझै मरम ।
'भैया' निहार व्यवहार यह, सम्यक लक्षण जिन धरम ॥१५॥

व्यवहार निश्चयनय वर्णन—मात्रिक कवित्त.

जाके निहचै प्रगट भये गुण, सम्यक दर्शन आदि अपार ।

ताके हिरदै गई विकलता, प्रगट रही करनी व्यवहार ॥

जहँ व्यवहार होय तहँ निहचै, होय न होय उभय परकार ।

जहँ व्यवहार प्रगट नहिं दीखै, तहां न निश्चय गुण निरधार १६
कवित्त.

आंख देखै रूप जहां दौड़ तूही लागै तहां, सुने जहां कान त-
हां तूही सुनै बात है । जीभ रस स्वाद धरै ताको तू विचार करै,
नाक सूंघै वास तहाँ तू ही विरमात है ॥ फर्सकी जु आठ जाति
तहां कहो कौन भांति, जहां तहाँ तेरो नांव प्रगट विख्यात है ।
याही देह देवलमें केवलि स्वरूपदेव, ताकी कर सेव मन कहाँ
दांडे जात है ॥ १७॥

जासों कहै घर तामै डर तौ कईक तोहि, सबन विसार हंस
विपैरस लाग्यो है । गिरवेको डर अरु डर आगि पानीहूको,
वस्तु राखवेको डर चौर डर जाग्यो है ॥ पेट भरवेको डर रोग
शोक महाडर, लोकनिकी लाज डर राजडर पाग्यो है । डर
जमराजहूको डारि तूं निशंक भयो, जैसें मोह राजाने निवाज
तोहि दाग्यो है ॥ १८ ॥

रागी द्वेषी देख देव ताकी नित करैसेव, ऐसो है अबेव ताको
कैसें पाप खपनो ? । राग रोग क्रीड़ासंग विपैकी उठै तरंग, ताही
में अभंग रैन दिना करै जपनो ॥ आरति ओ रौद्र ध्यान दोऊ
क्रिये आगेवान, एतेपै चहै कल्यान दैके दृष्टि दपनो । अरे मिथ्या
चारी तैं विगारी मति गति दोऊ, हाथ लें कुल्हारी पाँय मारत है
अपनो ॥ १९ ॥

छप्पय.

जन्म जरा अरु मरन, पाप संताप विनासै ।

रोग शोक दुख हरै, सर्व चिंता भय नासै ॥

ऋद्धि सिद्धि अनुसरै, विविध विद्या परकासै ।

निजनिधि लहै प्रकाश, ज्ञान प्रभुता गुण भासै ॥

अरु कर्म शत्रु सब जीतके, केवलि पद महिमा वरै ।

सो जैनधर्म जयवंत जग, जास हृदय ध्रुव संचरै ॥ २० ॥

जैनधर्म परसाद, जीव मिथ्यामति खंडै ।

जैनधर्म परसाद, प्रकृति उर सात विहंडै ॥

जैनधर्म परसाद द्रव्यषटको पहिचानै ।

जैनधर्म परसाद, आप परको ध्रुव ठानै ॥

जैनधर्म परसाद लहि, निजस्वरूप अनुभव करै ।

‘भैया’ अनंत सुख भोगवै, जैन धर्म जो मन धरै ॥ २१ ॥

जैनधर्म परसाद, जीव सब कर्म खपावै ।

जैनधर्म परसाद, जीव पंचमि गति पावै ॥

जैनधर्म परसाद, बहुरि भवमें नहि आवै ।

जैनधर्म परसाद, आप परब्रह्म कहावै ॥

श्री जैनधर्म परसादतैं, सुख अनंत विलसंत ध्रुव ।

सो जैनधर्म जयवंत जग, भैया जिहँ घट प्रगट हुव ॥ २२ ॥

कवित्त.

सुन मेरे मीत तू निश्चित हूँके कहा बैठो, तेरे पीछे काम शत्रु लागे अति जोर हैं । छिन छिन ज्ञान निधि लेत अति छीन तेरी , डारत अंधेरी भैया किये जात मोर हैं ॥ जागवो तो जाग अब कहत पुकारें तोहि, ज्ञान नैन खोल देख पास तेरे चोर हैं । फोरके शक्ति निज चोरको मरोर बांधि, तोसे बलवान आगे चोर हूँके को रहैं ॥ २३ ॥

छप्पय.

चहुं गतिमें नर वड़े, वड़े तिनमें समदृष्टी ।
 समदृष्टीतैं वड़े, साधुपदवी उतकृष्टी ॥
 साधुनतैं पुन वड़े, नाथ उवझाय कहावैं ।
 उवझायनतैं वड़े, पंच आचार बतावैं ॥
 तिन आचार्यनतैं जिन वड़े, वीतराग तारन तरन ।
 तिन कह्यो जैनवृष जगतमें, भैया तस बंदत चरन ॥ २४ ॥
 दोहा.

जैनधर्म सब धर्म पै, शोभत मुकुर समान ॥
 जाके सेवत भव्यजन, पावत पद निर्वान ॥ २५ ॥
 ज्यों दीपक संयोगतैं, वत्ती करै उदोत ॥
 ल्यों ध्यावत परमातमा, जिय परमातम होत ॥ २६ ॥
 श्री जिनधर्म उदोत है, तिहूँ लोक परसिद्ध ॥
 'भैया' जे सेवहिं सदा, ते पावहिं निजरिद्ध ॥ २७ ॥
 सत्रहसै पंचासके, उत्तम भादव मास ॥
 सुदि पूनम रचना कही, जैनधर्मप्रकाश ॥ २८ ॥
 इति जिनधर्मपचीसिका.

अथ अनादिवत्तीसिका लिख्यते ।

दोहा.

अष्टकर्म अरि जीतकें, भये निरंजन देव ॥
 मन वच शीस नवायके, कीजे ताकी सेव ॥ १ ॥
 छहों सु द्रव्य अनादिके, जगत माहि जयवंत ॥
 को किस ही कर्त्ता नहीं, यों भाखै भगवंत ॥ २ ॥

अपने गुण परजायमें, वरतैं सब निरधार ॥
 को काहू भेटै नहीं, यह अनादि विस्तार ॥ ३ ॥
 द्रव्य एक आकाश है, गुण जाको अवकाश ॥
 परणामी पूरन भरयो, अंत न वरण्यों जास ॥ ४ ॥
 दूजो पुद्गल द्रव्य है, वर्ण गन्ध रस फांस ॥
 छाया आकृति तेज द्युति, ये सब जास विलास ॥ ५ ॥
 तीजो धर्म सुद्रव्य है, चलत सहायी होय ॥
 पुद्गल अरु पुन जीवको, शुद्ध स्वभावी जोय ॥ ६ ॥
 चौथो द्रव्य अधर्म है, जब थिर तबहिं सहाय ॥
 देय जीव पुद्गलनको, लोक हृद्यों भाय ॥ ७ ॥
 पंचम काल प्रसिद्ध है, वर्त्तन जासु स्वभाय ॥
 समय महरत जाहि जो, सो कहिये परजाय ॥ ८ ॥
 षष्ठम चेतन द्रव्य है, दर्शन ज्ञान स्वभाय ॥
 परणामी परयोगसों, शुद्ध अशुद्ध कहाय ॥ ९ ॥
 है अनादि ब्रह्मण्ड यह, छहों द्रव्यको वास ॥
 लोकहृद् इनतें भई, आगें एक अकास ॥ १० ॥
 सूर चंद निशादिन फिरैं, तारागण बहु संग ॥
 यही अनादि स्वभाव है, छिन्न इक होय न भंग ॥ ११ ॥
 कहा ज्ञान है नाज पै, ऋतुविन उपजै नाहि ॥
 सबहि अनादि स्वभाव है, समुझ देख मनमाहि ॥ १२ ॥
 बोवत है जिहू बीजको, उपजत ताको वृक्ष ॥
 ताहीको रस वढत है, यहै बात परतक्ष ॥ १३ ॥
 को बोवत वन वृक्षको, को सींचत नित जाय ॥
 फलफूलनिकर लहलहे, यहै अनादि स्वभाय ॥ १४ ॥

वनस्पती फूलै फलै, ऋतु वसंतके होत ॥
 को सिखवत है वृक्षको, इहि दिन करो उदोत ॥ १५ ॥
 वर्षत है जल धरनिपर, उपजत सब बनराय ॥
 अपने अपने रस बढैं, यहै अनादि स्वभाय ॥ १६ ॥
 जो पहिले कहो वृक्ष है, तौ न चनै यह वात ॥
 विना बीज उपजै नहीं, यह तो प्रगट विख्यात ॥ १७ ॥
 जो पहिले कहो बीज है, बीज भयो किहँ ठौर ॥
 यहै बात नहिं संभवै, है अनादि की दौर ॥ १८ ॥
 को सिखवत है नीरको, नीचेको ढर जाय ॥
 अग्निशिखा ऊंची चलै, यहै अनादि स्वभाय ॥ १९ ॥
 कहो मीनके बालकों, को सिखवत है वीर ! ॥
 जन्मत ही तिरवो तहां, महा उदधिके नीर ॥ २० ॥
 कौन सिखावत बालको, लागत मा तन धाय ॥
 क्षुद्धित पेट भरै सदा, यहै अनादि स्वभाय ॥ २१ ॥
 पंछी चलै अकाशमें, कौन सिखावन हार ॥
 यहै अनादि स्वभाव है, वन्यों जगत विस्तार ॥ २२ ॥
 कौन सांपके वदनमें, विष उपजावत वीर ! ॥
 यहै अनादि स्वभाव है, देखो गुण गंभीर ॥ २३ ॥
 कहो सिंहके बालको, सूरपनो कब होत ॥
 कोटि गजनके पुंजको, मार भगावै पोत ॥ २४ ॥
 पृथिवी पानी पौन पुन, अग्नि अन्न आकास ॥
 है अनादि इहि जगतमें, सर्व द्रव्यको वास ॥ २५ ॥
 अपने अपने सहज सब, उपजत विनशत वस्त ॥
 है अनादिको जगत यह, इहि परकार समस्त ॥ २६ ॥

चेतन अरु पुद्गल मिले, उपजे कई विकार ॥
 तासों विन समुझे कहैं, रच्यो किनहिं संसार ॥ २७ ॥
 यह संसार अनादिको, यही भांत चल आय ॥
 उपजै विनशै थिर रहै, सो सब वस्तु स्वभाय ॥ २८ ॥
 को काहू कर्त्ता नहीं, करता भुगता आप ॥
 यहै जीव अज्ञानमें, करै पुण्य अरु पाप ॥ २९ ॥
 पुण्य पाप जग वीज है, याहीतैं विस्तार ॥
 जन्म मरन सुखदुख सहै, 'भैया' सब संसार ॥ ३० ॥
 पुण्यपापको त्याग जे, भये शुद्ध भगवान ॥
 अजरामर पदवी लई, सुख अनंत जिहँ थान ॥ ३१ ॥
 इहि अनादि वत्तीसिमें, बरनी वात अनादि ॥
 'भैया' आप निहारिये, और वात सब वादि ॥ ३२ ॥
 सत्रहसै पंचासके, आश्विन पहिला पक्ष ॥
 तिथि तेरेस रविवारको, कही अनादि प्रत्यक्ष ॥ ३३ ॥

इति अनादिवत्तीसी.

अथ समुद्रातस्वरूप लिख्यते ।

दोहा.

चरन जुगल जिनदेवके, वंदत हों कर जोर ॥
 जिहँ प्रसाद निजसंपदा, लहै कर्म दल मोर ॥ १ ॥
 समुद्रात जे सात हैं, तिनको कछु विस्तार ॥
 कहूं जिनागम शाखतैं, जिय परदेश विचार ॥ २ ॥
 उदयकषाय प्रचंड हैं, निकसत जियपरदेश ॥
 दमि दुर्जनकी देहको, बहुरि न करत प्रवेश ॥ ३ ॥

रोगादिक संयोगसों, औपध परसन काज ॥
 निकश जाय परदेश जो, आवत करै इलाज ॥ ४ ॥
 केवल ज्ञानी आत्मा, लोक हृदलों जाय ॥
 परदेशन पूरित करै, उदै न कछु वसाय ॥ ५ ॥
 मरन समय जिहँ जीवको, समुदघात थित होय ॥
 प्रथम परस गति आयकें, बहुर जात है सोय ॥ ६ ॥
 पष्टम गुण थानीनको, उपजै कहं संदेह ॥
 प्रश्न करत जिनदेवको, निकसत अद्भुत देह ॥ ७ ॥
 सुर मनुष्य कर वैक्रिया, नाना ठौर रमाहिं ॥
 सब थानक परदेशजिय, निकसै आवै जाहिं ॥ ८ ॥
 तैजस वपु मुनिरायके, निकसत उभय प्रकार ॥
 अशुभ शुभनके काजको, समुदघात तिहँ वार ॥ ९ ॥
 तंतू सब लागे रहैं, सुख दुख वेवे आप ॥
 देहादिकके प्रसरते, परदेशनिमें व्याप ॥ १० ॥
 'भैया' बात अगम्य है, कहन सुननकी नाहिं ॥
 जानत हैं जिन केवली, जे लच्छन जिय पाहिं ॥ ११ ॥

इति समुद्धातस्वरूप.

अथ मूढाष्टक लिख्यते ।

दोहा.

चिन्मूरत चिंता हरन, पूरन वांछित आश ॥
 अश्वसेन अंगज निलाँ, नमूं जिनेश्वर पाश ॥ १ ॥
 अपने शुद्ध स्वभावसों, करै न कबहू प्रीति ॥
 लगे फिरहिं परद्रव्यसों, यह मूढनकी रीति ॥ २ ॥

चौपाई. (१६ मात्रा)

मूरख कहै ग्रन्थ पहिचानों । सांच झूठको भेद न जानों ॥
जो कुछ लिख्यो सोई मै मानों । मेरे हृदय यहै ठहरानो ॥३॥
धूप मांहि जो कहै अन्धेरा । सूरज अथवर्त होय सवेरा ॥
हिंसा करत पुण्य बहु होई । ऐसौ लिख्यो सत्य मुहि सोई ॥४॥
मा कहिकैं जो बांझ बखाने । कर्म न होय प्रकृति परमाने ॥
जो मोको उपदेशहि ऐसो । तो मैं कहूं सत्य सब तैसो ॥ ५ ॥
सांच त्याग जो झूठ अलापै । झूठे वचन सत्य कहि थापै ॥
हिरदै सून्य सुन्यों मैं सबही । नैक विवेक धरों नहिं कवही ॥६॥
ऐसे शून्य हिये जे प्राणी । ते कलियुगकी वनी निशानी ॥
तिनको देख दया मन धरिये । बाद विवाद कछु नहिं करिये ॥७॥

दोहा.

ज्ञानवंत सुन वीनती, परसों नाही काम ॥
अनुभव आत्म रामको, 'भैया' लख निजधाम ॥ ८ ॥
इति मूढाष्टकं ।

अथ सम्यक्त्वपचीसिका लिख्यते ।

सम्यक् आदि अनंत गुण, सहित सु आत्म राम ॥
प्रगट भये जिहँ कर्म तज, ताहि करों परणाम ॥ १ ॥
उपशम वेदक क्षायकी, सम्यक् तीन प्रकार ॥
ताहीके नव भेद हैं, कहों ग्रंथ अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई. (१५ मात्रा)

उपसम समकित कहिये सोय । सात प्रकृति उपसम जहँ होय ।
दर्शन मोह तीन परकार । अनतानुबंधीकी चार ॥ ३ ॥

क्षय उपसमके तीन प्रकार । तिनके नाम कहं निरधार ॥
 अनतानुबंधी चौकरी । जिहँ जिय शक्ति फोरकें खरी ॥ ४ ॥
 महा मिथ्यात मिश्र मिथ्यात । समै प्रकृति उपशम विख्यात ॥
 क्षय उपशम समकित तस नाम । अब दूजो वरनों इहि ठाम ॥ ५ ॥
 अनतानु जे चार कपाय । महा मिथ्यात्व मिले क्षय जाय ॥
 दोय प्रकृति उपसम हैं रहै । तासों क्षय उपसम पुनि कहै ॥ ६ ॥
 क्षय पद जाहिं प्रकृति जिहँ ठाम । समै प्रकृति उपसम तिहँ नाम ॥
 ये क्षय उपशम तिहुँ विधि कहे । अब वेदक वरनों सरदहै ॥ ७ ॥
 जहाँ चार प्रकृति खप रहै । द्वै उपशम इक वेदक लहै ॥
 क्षय उपसम वेदक तिहँ नाव । कहे ग्रंथमें हैं बहु ठांव ॥ ८ ॥
 पांच खपै उपशम हैं एक । समै प्रकृति वेदै गहि टेक ॥
 दूजो भेद यहै सिरदार । अब तीजैको सुनहु विचार ॥ ९ ॥
 छहों प्रकृति जामे क्षय जाहिं । समै मिथ्यात्व मिटै तहँ नाहिं ॥
 क्षायक वेदक लच्छन एह । कहे ग्रंथमें नहिं संदेह ॥ १० ॥
 उपशम वेदक कहिये तहाँ । छह उपशम इक वेदै जहाँ ॥
 क्षायक समकित तब जिय लहै । सातों प्रकृति मूलसों दहै ॥ ११ ॥
 जब लग ये प्रकृति नहिं जाती । तब लग कहिये जीव मिथ्याती ॥
 तिनके दूर कियेतैं जीव । सम्यक दृष्टी कहे सदीव ॥ १२ ॥
 उनकी थिति पूरी जब होय । तब वे खिरैं फिरैं नहिं सोय ॥
 खिरकें निजगुण परगट लहै । सो गुण काल अनन्तो रहै ॥ १३ ॥
 जे गुण प्रगट भये तज कर्म । ते सब जानो जियको धर्म ॥
 जैसो प्रभु देखौ भगवान । तैसो हैं इनके सरधान ॥ १४ ॥
 सम्यकवंत जीव वैरागी । भावन सों सबही का त्यागी ॥
 निव्रत पक्ष करै व्रत नाही । अप्रत्याख्यान उदै घटमाही ॥ १५ ॥

मनवचकाय जोग त्रिक डोलै । लखै आपनी कर्म कलोलै ॥
 जितनी कर्म प्रकृति क्षय गई । तितनी कछु निर्मलता भई ॥१६॥
 प्रकटी शक्ति ताहि पहिचानै । अरु जिनवरकी आज्ञा मानै ॥
 अक्षर एक विरोधै कोय । ताको भ्रमन बहुत जग होय १७
 तातैं व्रत पचखान न करै । जिनवरकी आज्ञासों डरै ॥
 लेकैं व्रत जो भंजै जीव । ते महा पापी कहे सदीव ॥१८॥
 अप्रत्याख्यान जाय नहिं जहाँ । व्रत पचखान पलै नहिं तहाँ ।
 सम्यकदृष्टी परम सुजान । धरहिं शुद्ध अनुभवको ध्यान १९
 अनुभवमें आतमरस लसै । आतमरसमें शिव सुख वसै ॥
 आतम ध्यान धरयो जिनदेव । तातैं भये मुक्ति स्वयमेव ॥२०॥
 मुक्ति होनको बीज निहार । आतम ध्यान धरै अरिटार ॥
 ज्यों ज्यों कर्म विलयको जाहिं । त्यों त्यों सुख प्रगटै घट माहिं २१
 प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान । कर चकचूर चढहिं गुण थान ॥
 आगें महा ध्यान धर धीर । कर्म शत्रु जीतै बल वीर ॥२२॥
 प्रगट करै निज केवल ज्ञान । सुख अनंत विलसै तिहँ थान ॥
 लोक अलोक सबहि झलकंत । तातैं सब भाखै भगवंत ॥२३॥
 चारों कर्म अघाती हार । तव वे पहुँचै मुक्ति मँझार ॥
 काल अनंतहि ध्रुव है रहै । तास चरन भवि वंदन कहै २४
 सुख अनंत की नीव यह, सम्यक दर्शन जान ॥
 याहीतैं शिवपद मिलै, 'भैया' लेहु पिछान ॥ २५ ॥
 सत्रहसै पंचासके, मारगसिर सित पक्ष ॥
 तिथि लच्छन मुनिधर्मकी, मृगपति वार प्रत्यक्ष ॥ २६॥
 इति सम्यक्त्वपचीसिका ।

अथ वैराग्यपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव ॥
 मन बच शीस नवायकै, कीजे तिनकी सेव ॥ १ ॥
 जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग ॥
 मूल दुहुनको यह कह्यो, जाग सकै तो जाग ॥ २ ॥
 क्रोधमान माया धरत, लोभ सहित परिणाम ॥
 येही तेरे शत्रु हैं, समुझो आतमराम ॥ ३ ॥
 इनही च्यारों शत्रुको, जो जीतै जगमाहिं ॥
 सो पावहि पथ मोक्षको, यामें धोखो नाहिं ॥ ४ ॥
 जा लच्छीके काज तू, खोवत है निजधर्म ॥
 सो लच्छी संग ना चलै, काहे भूलत भर्म ॥ ५ ॥
 जा कुटुंबके हेत तू, करत अनेक उपाय ॥
 सो कुटुंब अगनी लगा, तोकों देत जराय ॥ ६ ॥
 पोषत है जा देहको, जोग त्रिविधिके लाय ॥
 सो तोकों छिन एकमें, दगा देय खिर जाय ॥ ७ ॥
 लच्छी साथ न अनुसरै, देह चलै नहिं संग ॥
 काढ़ काढ़ मुजनहि करै, देख जगतके रंग ॥ ८ ॥
 दुर्लभ दश दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय ॥
 विषय सुखनके कारनैं, सर्वस चले गमाय ॥ ९ ॥
 जगहिं फिरत कइ युग भये, सो कछु कियो विचार ॥
 चेतन अव किन चेतहू, नरभव लहि अतिसार ॥ १० ॥
 ऐसैं मति विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय ॥
 कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ ११ ॥

पीतो सुधा स्वभावकी, जी ! तो कहूं सुनाय ॥
 तू रीतो क्यों जातु है, बीतो नरभव जाय ॥ १२ ॥
 मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट ॥
 भ्रष्ट करत है सिष्टको, शुद्ध दृष्टि दै पिष्ट ॥ १३ ॥
 चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेषको संग ॥
 ज्यों प्रगटै परमात्मा, शिव सुख होय अभंग ॥ १४ ॥
 ब्रह्म कहूं तो मैं नहीं, क्षत्री हू पुनि नाहिं ॥
 वैश्य शूद्र दोऊ नहीं, विदानंद हूं माहिं ॥ १५ ॥
 जो देखै इहि नैनसों, सो सब विनस्यो जाय ॥
 तासों जो अपनो कहै, सो मूरख शिरराय ॥ १६ ॥
 पुद्गलको जो रूप है, उपजै विनसैं सोय ॥
 जो अविनाशी आत्मा, सो कछु और न होय ॥ १७ ॥
 देख अवस्था गर्भकी, कौन कौन दुख होहि ॥
 बहुर मगन संसारमें, सौ लानत है तोहि ॥ १८ ॥
 अधो शीस ऊरध चरन, कौन अशुचि आहार ॥
 थोरे दिनकी बात यह, भूलि जात संसार ॥ १९ ॥
 अस्थि चर्म मलमूत्रमें, रैन दिनाको वास ॥
 देखें दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ॥ २० ॥
 रोगादिक पीड़ित रहै, महाकष्ट जो होय ॥
 तबहू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्तै कोय ॥ २१ ॥
 मरन समय विललात है, कोऊ लेहु वचाय ॥
 जानै ज्यों त्यों जीजिये, जोर न कछु वसाय ॥ २२ ॥
 फिर नरभव मिलिबो नहीं, किये हु कोट उपाय ॥
 तातैं बेगहि जेत हू, अहो जगतके राय ॥ २३ ॥

भैयाकी यह वीनती, चेतन चितहि विचार ॥
 ज्ञानदर्श चारित्रमें, आपो लेहु निहार ॥ २४ ॥
 एक सात पंचासके, संवत्सर सुखकार ॥
 पक्ष शुक्ल तिथि धर्मकी, जै जै निशिपतिवार ॥ २५ ॥
 इति वैराग्यपचीसी.

अथ परमात्माछत्तीसी लिख्यते ।

दोहा.

परम देव परमात्मा, परम ज्योति जगदीश ॥
 परम भाव उर आनके, प्रणमत हों नमि शीश ॥ १ ॥
 एक जु चेतन द्रव्य है, तिनमें तीन प्रकार ॥
 बहिरातम अन्तर तथा, परमातम पदसार ॥ २ ॥
 बहिरातम ताको कहै, लखै न ब्रह्म स्वरूप ॥
 मग्न रहै परद्रव्यमें, मिथ्यावंत अनूप ॥ ३ ॥
 अंतर आतम जीव सो, सम्यग्दृष्टी होय ॥
 चौथै अरु पुनि बारवें, गुणधानक लों सोय ॥ ४ ॥
 परमातम पद ब्रह्मको, प्रगल्भो शुद्ध स्वभाय ॥
 लोकालोक प्रमान सब, झलकै जिनमें आय ॥ ५ ॥
 बहिरातमास्वभाव तज, अंतरातमा होय ॥
 परमातम पद भजत है, परमातम हैं सोय ॥ ६ ॥
 परमातम सो आतमा, और न दूजो कोय ॥
 परमातमको ध्यावते, यह परमातम होय ॥ ७ ॥
 परमातम यह ब्रह्म है, परम ज्योति जगदीश ॥
 परसों भिन्न निहारिये, जोइ अलख सोइ ईश ॥ ८ ॥

जो परमात्म सिद्धमें, सो ही या तन माहिं ॥
 मोह मैल दृग लंगि रह्यो, तातैं सूझैं नाहिं ॥ ९ ॥
 मोह मैल रागादिको, जा छिन कीजे नाश ॥
 ता छिन यह परमात्मा, आपहि लहै प्रकाश ॥ १० ॥
 आत्म सो परमात्मा, परमात्म सो सिद्ध ॥
 बीचकी दुविधा मिटगई, प्रगट भई निज रिद्ध ॥ ११ ॥
 मैहि सिद्ध परमात्मा, मै ही आत्मराम ॥
 मै ही ज्ञाता ज्ञेयको, चेतन मेरो नाम ॥ १२ ॥
 मै अनंत सुखको धनी, सुखमय मोर स्वभाय ॥
 अविनाशी आनंदमय, सो हों त्रिभुवन राय ॥ १३ ॥
 शुद्ध हमारो रूप है, शोभित सिद्ध समान ॥
 गुण अनंतकर संजुगत चिदानंद भगवान ॥ १४ ॥
 जैसो शिव खेतहि बसै, तैसो या तनमाहिं ॥
 निश्चय दृष्टि निहारतैं, फेर रंच कहूँ नाहिं ॥ १५ ॥
 कर्मनके संयोगतैं, भये तीन परकार ॥
 एक आत्मा द्रव्यको, कर्म नचावन हार ॥ १६ ॥
 कर्म संघाती आदिके, जोर न कछु बसाय ॥
 पाई कला विवेककी, राग द्वेष विन जाय ॥ १७ ॥
 कर्मनकी जर राग है, राग जरे जर जाय ॥
 प्रगट होत परमात्मा, भैया सुगम उपाय ॥ १८ ॥
 काहे को भटकत फिरै, सिद्ध होनेके काज ॥
 'राग द्वेष को त्यागदे, 'भैया' सुगम इलाज ॥ १९ ॥
 परमात्म पदको धनी, रंक भयो विललाय ॥
 राग द्वेषकी प्रीतिसों, जनम अकारथ जाय ॥ २० ॥

राग द्वेपकी प्रीति तुम, भूलि करो जिन रंच ॥
 परमात्म पद ढांकके, तुमहिं किये तिरजंच ॥ २१ ॥
 जप तप संयम सब भलो, राग द्वेप जो नाहिं ॥ २२ ॥
 राग द्वेपके जागते, ये सब सोये जाहिं ॥ २३ ॥
 राग द्वेपके नाशतैं, परमात्म परकाश ॥
 राग द्वेपके भासतैं, परमात्म पद नाश ॥ २४ ॥
 जो परमात्म पद चहै, तो तू राग निवार ॥
 देख सयोगी स्वामिको, अपने हिये विचार ॥ २५ ॥
 लाख बातकी बात यह, तोकों दई बताय ॥
 जो परमात्म पद चहै, राग द्वेप तज भाय ॥ २६ ॥
 राग द्वेपके त्याग विन, परमात्म पद नाहिं ॥
 कोटिकोटि जपतप करो, सबहि अकारय जाहिं ॥ २७ ॥
 दोष आत्माको यहै, राग द्वेपके संग ॥
 जैसे पास मजीठके, वस्त्र और ही रंग ॥ २८ ॥
 तैसे आत्म द्रव्यको, राग द्वेपके पास ॥
 कर्म रंग लागत रहै, कैसे लहै प्रकाश ॥ २९ ॥
 इन कर्मनको जीतिबो, कठिन बात है मीत ॥
 जड़ खोद विन नहिं मिटै, दुष्टजाति विपरीत ॥ ३० ॥
 लल्लोपत्तोके किये, ये मिटवेके नाहिं ॥
 ध्यान अग्नि परकाशकें, होम देहु तिहि माहिं ॥ ३१ ॥
 ज्यों दारूके गंजको, नर नहिं सकै उठाय ॥
 तनक आग संयोगतैं, छिन इकमें उड़ि जाय ॥ ३२ ॥
 देह सहित परमात्मा, यह अचरजकी बात ॥

राग द्वेषके त्यागतै, कर्म शक्ति जर जात ॥ ३२ ॥
 परमात्मके भेद द्वय, निकल सकल परमान ॥
 सुख अनंतमें एकसे, कहिवेको द्वय ध्यान ॥ ३३ ॥
 भैया वह परमात्मा, सो ही तुममें आहि ॥
 अपनी शक्ति सम्हारिके, लखो वेग ही ताहि ॥ ३४ ॥
 राग द्वेषको त्यागके, धर परमात्म ध्यान ॥
 ज्यों पावे सुख संपदा, भैया इम कल्याण ॥ ३५ ॥
 संबत विक्रम भूपको, सत्रहसे पंचास ॥
 मार्गशीर्ष रचना करी, प्रथम पक्ष दुति जास ॥ ३६ ॥
 इति परमात्माच्छीसी ।

अथ नाटकपचीसी लिख्यते ।

कर्म नाट नृत तोरके, भये जगत जिन देव ॥
 नाम निरंजन पद लह्यो, करुं त्रिविधि तिहिं सेव ॥ १ ॥
 कर्मनके नाटक नटत, जीव जगतके माहिं ॥
 तिनके कछु लच्छन कहूं, जिन आगमकी छाहिं ॥ २ ॥
 तीन लोक नाटक भवन, मोह नचावनहार ॥
 नाचत है जिय स्वांगधर, करकर नृत्य अपार ॥ ३ ॥
 नाचत है जिय जगतमें, नाना स्वांग बनाय ॥
 देव नर्क तिरजंघमें, अरु मनुष्य गति आय ॥ ४ ॥
 स्वांग धरै जब देवको, मानत है निज देव ॥
 वही स्वांग नाचत रहै, ये अज्ञानकी देव ॥ ५ ॥
 औरनसों औरहि कहै, आप कहै हम देव ॥
 गहिके स्वांग शरीरको, नाचत है स्वयमेव ॥ ६ ॥

भये नरकमें नारकी, लागे करन पुकार ॥
 छेदन भेदन दुख सहै, यही नाच निरधार ॥ ७ ॥
 मान आपको नारकी, त्राहि त्राहि नित होय ॥
 यहै स्वांग निर्वाह है, भूलपरो मति कोय ॥ ८ ॥
 नित निगोदके स्वांगक्री, आदि न जानै जीव ॥
 नाचत है चिरकालके, भव्य अभव्य सदीव ॥ ९ ॥
 इत्तर नाम निगोद है, तहाँ बसत जे हंस ॥
 ते सब स्वांगहि खेलै, बहुर धरयो यह वंस ॥ १० ॥
 उछरि उछरि कै गिरपै, ते आवै इहि ठौर ॥
 मिथ्यादृष्टि स्वभाव धर, यहै स्वांग शिरमौर ॥ ११ ॥
 कबहू पृथिवी कायमें, कबहू अग्नि स्वरूप ॥
 कबहू पानी पौन है, नाचत स्वांग अनूप ॥ १२ ॥
 वनस्पतीके भेद बहु, स्वास अठारह बार ॥
 तामें नाच्यो जीवयह, धर धर जन्म अपार ॥ १३ ॥
 विकलत्रयके स्वांगमें, नाचे चेतन राय ॥
 उसीरूप हैं परणये, वरनैं कैसैं जाय ॥ १४ ॥
 उपजे आय मनुष्यमें, धरै पँचेंद्री स्वांग ॥
 अष्ट मदनि मातो रहै, मानो खाई भांग ॥ १५ ॥
 पुण्य योग भूपति भये, पापयोग भये रंक ॥
 सुख दुख आपहि मानिके, नाचत फिर निशंक ॥ १६ ॥
 नारि नपुंसक नर भये, नाना स्वांग रमाहिं ॥
 चेतनसों परिचय नहीं, नाच नाच खिर जाहिं ॥ १७ ॥
 ऐसे काल अनंत हुव, चेतन नाचत तोहि ॥
 अजहूँ आप संभारिये, सावधान किन ! होहि ॥ १८ ॥

सावधान जे जिय भये, ते पहुँचे शिव लोक ॥
 नाचभाव सब त्यागके, विलसत सुखके थोक ॥ १९ ॥
 नाचत हैं जग जीव जे, नाना स्वांग रमंत ॥
 देखत हैं तिह नृत्यको, सुख अनंत विलसंत ॥ २० ॥
 जो सुख देखत होत है, सो सुख नाचत नाहिं ॥
 नाचनमें सब दुःख है, सुख निजदेखन माहिं ॥ २१ ॥
 नाटकमें सब नृत्य है, सारवस्तु कछु नाहिं ॥
 ताहि विलोको कौन है, नाचन हारे माहिं ॥ २२ ॥
 देखै ताको देखिये, जानै ताको जान ॥
 जो तोको शिव चाहिये, तो ताको पहचान ॥ २३ ॥
 प्रगट होत परमात्मा, ज्ञान दृष्टिके देत ॥
 लोकालोक प्रमान सब, छिन इकमें लखलेत ॥ २४ ॥
 'भैया' नाटक कर्मते, नाचत सब संसार ॥
 नाटक तज न्यारे भये, ते पहुँचे भव पार ॥ २५ ॥
 इति नाटकपचीसी ।

अथ उपादाननिमित्तका संवाद लिख्यते ।

दोहा.

पाद प्रणमि जिनदेवके, एक उक्ति उपजाय ॥
 उपादान अरु निमित्तको, कहुं संवाद बनाय ॥ १ ॥
 पूछत है कोऊ तहाँ, उपादान किह नाम ॥
 कहो निमित्त कहिये कहा, कबके हैं इह ठाम ॥ २ ॥
 उपादान निजशक्ति है, जियको मूल स्वभाव ॥
 है निमित्त परयोगते, बन्यो अनादि बनाव ॥ ३ ॥

निमित्त कहै मोको सवै, जानत हैं जग लोय ॥
 तेरो नाव न जानहीं, उपादान को होय ॥ ४ ॥
 उपादान कहै रे निमित्त, तू कहा करै गुमान ॥
 मोकों जाने जीव वे, जो हैं सम्यक्वान ॥ ५ ॥
 कहै जीव सब जगतके, जो निमित्त सोइ होय ॥
 उपादानकी बातको, पूछै नाहीं कोय ॥ ६ ॥
 उपादान विन निमित्त तू, कर न सकै इक काज ॥
 कहा भयो जग नां लखै, जानत हैं जिनराज ॥ ७ ॥
 देव जिनेश्वर गुरु यती, अरु जिन आगम सार ॥
 इहि निमित्ततें जीव सब, पावत हैं भवपार ॥ ८ ॥
 यह निमित्त इह जीवको, मिल्यो अनंती वार ॥
 उपादान पलव्यो नहीं, तौ भटक्यो संसार ॥ ९ ॥
 कै केवली कै साधु कै, निकट भव्य जो होय ॥
 सो क्षायक सम्यक लहै, यह निमित्तबल जोय ॥ १० ॥
 केवलि अरु मुनिराजके, पास रहैं बहु लोय ॥
 पै जाको सुलव्यो धनी, क्षायक ताको होय ॥ ११ ॥
 हिंसादिक पापन किये, जीव नर्कमें जाहिं ॥
 जो निमित्त नहिं कामको, तो इम काहे कहाहिं ॥ १२ ॥
 हिंसामें उपयोग जिहँ, रहै ब्रह्मके राच ॥
 तेई नर्कमें जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच ॥ १३ ॥
 दया दान पूजा किये, जीव सुखी जग होय ॥
 जो निमित्त झूठो कहो, यह क्यों मानै लोय ॥ १४ ॥
 दया दान पूजा भली, जगतमाहिं सुखकार ॥
 जहँ अनुभवको आचरन, तहँ यह बंध विचार ॥ १५ ॥

यह तो बात प्रसिद्ध है, शोच देख उरमाहिं ॥
 नरदेहीके निमित्तविन, जिय क्यों मुक्ति न जाहिं ॥ १६ ॥
 देह पीजरा जीवको, रोकै शिवपुर जात ॥
 उपादानकी शक्तिसों, मुक्ति होत रे भ्रात ॥ १७ ॥
 उपादान सब जीवपै, रोकन हारो कौन ॥
 जाते क्यों नहिं मुक्तिमें, विन निमित्तके होन ॥ १८ ॥
 उपादान सु अनादिको, उलट रह्यो जगमाहिं ॥
 सुलटतही सूधे चले, सिद्ध लोकको जाहिं ॥ १९ ॥
 कहूं अनादि विन निमित्तही, उलट रह्यो उपयोग ॥
 ऐसी बात न संभवै, उपादान तुम जोग ॥ २० ॥
 उपादान कहै रे निमित्त, हमपै कही न जाय ॥
 ऐसे ही जिन केवली, देखै त्रिभुवन राय ॥ २१ ॥
 जो देख्यो भगवान ने, सोही सांचो आहि ॥
 हम तुम संग अनादिके, बली कहोगे काहि ॥ २२ ॥
 उपादान कहै वह बली, जाको नाश न होय ॥
 जो उपजत विनशत रहै, बली कहांतें सोय ॥ २३ ॥
 उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार ॥
 परनिमित्तके योगसों, जीवत सब संसार ॥ २४ ॥
 जो अहारके जोगसों, जीवत है जगमाहिं ॥
 तो वासी संसारके, मरते कोऊ नाहिं ॥ २५ ॥
 सूर सोम मणि अंगिनके, निर्मित लखैं ये नैन ॥
 अंधकारमें कित गयो, उपादान दृग दैन ॥ २६ ॥
 सूर सोम मणि अग्नि जो, करै अनेक प्रकाश ॥
 नैन शक्ति विन ना लखैं, अन्धकार सम भास ॥ २७ ॥

कहै निमित्त वे जीव को? मो विन जगके माहिं ॥
 सबै हमारे वश परे, हम विन मुक्ति न जाहिं ॥२८॥
 उपादान कहै रे निमित्त, ऐसे बोल न बोल ॥
 तोको तज निज भजत हैं, तेही करै किलोल ॥ २९ ॥
 कहै निमित्त हमको तजे, ते कैसें शिव जात ॥
 पंचमहाव्रत प्रगट हैं, और हु क्रिया विख्यात ॥ ३० ॥
 पंचमहाव्रत जोग त्रय, और सकल व्यवहार ॥
 परको निमित्त खपायके, तव पहुँचें भवपार ॥ ३१ ॥
 कहै निमित्त जग मैं बडो, मोतैं बडो न कोय ॥
 तीन लोकके नाथ सब, मो प्रसादतैं होय ॥ ३२ ॥
 उपादान कहै तू कहा, चहुं गतिमें ले जाय ॥
 तो प्रसादतैं जीव सब, दुखी होहिं रे भाय ॥ ३३ ॥
 कहै निमित्त जो दुख सहै, सो तुम हमहि लगाय ॥
 सुखी कौन तैं होत है, ताको देहु बताय ॥ ३४ ॥
 जा सुखको तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहिं ॥
 ये सुख, दुखके मूल हैं, सुख अविनाशी माहिं ॥ ३५ ॥
 अविनाशी घट घट वसै, सुख क्यों विलसत नाहिं? ॥
 शुभनिमित्तके योगविन, परे परे विललाहिं ॥ ३६ ॥
 शुभनिमित्त इह जीवको, मिल्यो कई भवसार ॥
 पै इक सम्यक दर्श विन, भटकत फिरथो गँवार ॥ ३७ ॥
 सम्यक दर्श भये कहा, त्वरित मुक्तिमें जाहिं ॥
 आगें ध्यान निमित्त हैं, ते शिवको पहुँचाहिं ॥ ३८ ॥
 छोर ध्यानकी धारना, मोर योगकी रीति ॥
 तोर कर्मके जालको, जोर लई शिवप्रीति ॥ ३९ ॥

तब निमित्त हारयो तहाँ, अब नहिं जोर वसाय ॥
 उपादान शिव लोकमें, पहुँच्यो कर्म खपाय ॥ ४० ॥
 उपादान जीत्यो तहाँ, निजवल कर परकास ॥
 सुख अनंत ध्रुव भोगवै, अंत न वरन्यो तास ॥ ४१ ॥
 उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवनपै वीर ॥
 जो निजशक्ति संभारहीं, सो पहुँचै भवतीर ॥ ४२ ॥
 भैया महिमा ब्रह्मकी, कैसे वरनी जाय ॥
 वचनअगोचर वस्तु है, कहिवो वचन बनाय ॥ ४३ ॥
 उपादान अरु निमित्तको, सरस वन्यो संवाद ॥
 समदृष्टीको सुगम है, मूरखको वकवाद ॥ ४४ ॥
 जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह भेद ॥
 साख जिनागमसों मिलै, तो मत कीज्यो खेद ॥ ४५ ॥
 नगर आगरो अग्र है, जैनी जनको वास ॥
 तिहँ थानक रचनाकरी, 'भैया' स्वमति प्रकास ॥ ४६ ॥
 संवत विक्रम भूप को, सत्रहसै पंचास ॥
 फाल्गुण पहिले पक्षमें, दशों दिशा परकाश ॥ ४७ ॥
 इति उपादाननिमित्तसंवाद ।

अथ चतुर्विंशतितीर्थकरजयमाला लिख्यते ।

दोहा.

बीस चार जगदीशको, बंदों शीस नवाय ॥

कहूँ तास जयमालिका, नामकथन गुण गाय ॥ १ ॥

पद्मरिछन्द. (१६ मात्रा)

जय जय प्रभु ऋषभ जिनेन्द्रदेव । जय जय त्रिभुवनपति

करहिं सेव ॥ जय जय श्री अजित अनंत जोर । जय जय जि-
हैं कर्म हरे कठोर ॥ २ ॥ जय जय प्रभु संभव शिवसरूप । जय
जय शिवनायक गुण अनूप ॥ जय जय अभिनंदन निर्विकार ।
जय जय जिहिं कर्म किये निवार ॥ ३ ॥ जय जय श्री सुमति
सुमति प्रकाश । जय जय सब कर्म निकर्म नाश ॥ जय जय
पदमप्रभ पदम जेम । जय जय रागादि अलिप्त नेम ॥ ४ ॥
जय जय जिनदेव सुपार्श्व पास । जय जय गुणपुंज कहै नि-
वास ॥ जय जय चंद्रप्रभ चन्द्रक्रांति । जय जय तिहुं पुरजन
हरन भ्रांति ॥ ५ ॥ जय जय पुफदंत महंत देव । जय जय
पट द्रव्यनि कहन भेव ॥ जय जय जिन शीतल शीलमूल ।
जय जय मनमथ मृग शारदूल ॥ ६ ॥ जय जय श्रेयांस अनं-
त वच्छ । जय जय परमेश्वर हो प्रतच्छ ॥ जय जय श्री जिनवर
वासुपूज । जय जय पूज्यनके पूज्य तूज ॥ ७ ॥ जय जय प्र-
भु विमल विमल महंत । जय जय सुख दायक हो अनंत ॥ जय
जय जिनवर श्री अनंत नाथ । जय जय शिवरमणी ग्रहण हा-
थ ॥ ८ ॥

जय जय श्री धर्म जिनेन्द्र धन्न । जय जय जिन निश्चल करन
मन्न ॥ जय जय श्रीजिनवर शांतिदेव । जय जय चक्री तीर्थकरेव
॥ ९ ॥ जय जय श्रीकुंथु कृपानिधान । जय जय मिथ्यातमहरन
भान ॥ जय जय अरिजीतन अरहनाथ । जय जय भवि जीवन
मुक्ति साथ ॥ १० ॥ जय जय मलि नाथ महा अभीत । जय
जय जिन मोहनरेन्द्र जीत ॥ जय जय मुनिसुव्रत तुम सु-
ज्ञान । जय जय त्रिभुवनमें दीप भान ॥ ११ ॥ जय जय नमि-

नाथ निवास सुख । जय जय तिहुं भवननि हरन दुःख ॥ जय
जय श्री नेम कुमारचंद । जय जय अज्ञानतमके निकंद ॥ १२ ॥
जय जय श्रीपार्श्व प्रसिद्ध नाम । जय जय भविदायक मुक्ति-
धाम ॥ जय जय जिनवर श्रीवर्द्धमान । जय जय अनंत सुख-
के निधान ॥ १३ ॥ जय जय अतीत जिन भये जेह । जय जय
सु अनागत हैं हैं तेह ॥ जय जय जिन हैं जे विद्यमान ॥ जय
जय तिन बंदों धर सु ध्यान ॥ १४ ॥ जय जय जिनप्रतिमा जिन
स्वरूप । जय जयसु अनंत चतुष्ट भूप ॥ जय जय मन वच
निज सीसनाथ । जय जय जय 'भैया' नमै सुभाय ॥ १५ ॥

घत्ता.

जिनरूप निहारे आप विचारे, फेर न रंचक भेद कहै ॥
'भैया' इम बंदै ते चिरनंदै, सुख अनंत निजमाहिं लहै ॥ १६ ॥

दोहा.

रागभाव छूट्यो नहीं, मिट्यो न अंतर दोख ॥
संतति वाढै बंधकी, होय कहांसों मोख ॥ १७ ॥

इति चतुर्विंशतितीर्थकरजयमाला.

अथ पंचेन्द्रियसंवाद लिख्यते ।

दोहा.

प्रथम प्रणामि जिनदेवको, बहुरि प्रणामि शिवराय ॥
साधु सकलके चरनको, प्रणामों सीस नवाय ॥ १ ॥
नमहुं जिनेश्वर बैनको, जगत जीव सुखकार ॥
जस प्रसाद घटपट खुलै, लहिये बुद्धि अपार ॥ २ ॥

इक दिन इक उद्यानमें, बैठे श्री मुनिराज ॥
 धर्म देशना देत हैं, भवि जीवनके काज ॥ ३ ॥
 समदृष्टी श्रावक तहां, और मिले बहु लोक ॥
 विद्याधर क्रीड़ा करत, आय गये बहु थोक ॥ ४ ॥
 चली बात व्याख्यानमें, पांचों इन्द्रिय दुष्ट ॥
 त्यों त्यों ये दुख देत है, ज्यों ज्यों कीजे पुष्ट ॥ ५ ॥
 विद्याधर बोले तहां, कर इन्द्रिनको पक्ष ॥
 स्वामी हम क्यों दुष्ट हैं, देखो बात प्रत्यक्ष ॥ ६ ॥
 हमहीतें सब जगलखै, यह चेतन यह नाद ॥
 इक इन्द्रिय आदिक सबै, पंच कहे जिहँ ठाढ़ ॥ ७ ॥
 हमतैं जप तप होत है, हमतैं क्रिया अनेक ॥
 हमहीतें संयम पलै, हम विन होय न एक ॥ ८ ॥
 रागी द्वेषी होय जिय, दोष हमहि किम देहु ॥
 न्याय हमारो कीजिये, यह विनती सुन लेहु ॥ ९ ॥
 हम तीर्थकर देव पै, पांचों हैं परतच्छ ॥
 कहो मुक्ति क्यों जात हैं, निजभावन कर स्वच्छ ॥ १० ॥
 स्वामि कहें तुम पांच हो, तुममें को सिरदार ॥
 तिनसों चर्चा कीजिये, कहो अर्थ निरधार ॥ ११ ॥
 नाक कान नैना कहै, रसना फरस विख्यात ॥
 हम काहू रोकें नही, मुक्ति लोकको जात ॥ १२ ॥
 नाक कहै प्रभु मैं बडो, मोतैं बडो न कोय ॥
 तीन लोक रक्षा करै, नाक कमी जिन होय ॥ १३ ॥

नाक रहेतैं सब रह्यो, नाक गये सब जाय ॥
 नाक बरोबर जगतमें, और न बडो कहाय ॥ १४ ॥
 प्रथम वदन पर देखिये, नाक नवल आकार ॥
 सुंदर महा सुहावनो, मोहँ लोक अपार ॥ १५ ॥
 सीस नवत जगदीसको, प्रथम नवत है नाक ॥
 तौही तिलक विराजतो, सत्यारथ जग वाक ॥ १६ ॥

ढाल "दान सुपात्रन दीजिये" एदेशी भाषा गुजराती.

नाक कहै जग हूँ बडो, बात सुनो सब कोई रे ॥
 नाक रहे पतँ लोकमें, नाक गये पत खोईरे, नाक० ॥ १७ ॥
 नाक रखनके कारणे, बाहूबलि बलवंतों रे ॥
 देश तज्यो दीक्षा ग्रही, पण न नम्यों चक्रवंतों रे, नाक० ॥ १८ ॥
 नाक रहनके कारनै, रामचन्द्र जुध कीधो रे ॥
 सीता आणी बलकरी, बलि ते संयम लीधो रे, नाक० ॥ १९ ॥
 नाक राखण सीता सती, अगनी कुंडमें पैठी रे ॥
 सिंहासन देवन रच्यो, तिहँ ऊपर जा वैठीरे, नाक० ॥ २० ॥
 दशार्णभद्र महा मुनि, नाक राखण व्रत लीधो रे ॥
 इन्द्र नम्यो चरणे तिहाँ, मान सकल तज दीधोरे, नाक० ॥ २१ ॥
 सगर थयो सौरो धणी, छलथी दीक्षा लीधीरे ॥
 नाक तणी लज्जा करी, फिर नवि मनसा कीधीरे, नाक० ॥ २२ ॥
 अभय कुंवर श्रेणिक तणों, बेटो आज्ञाकारीरे ॥
 तूँकारो तातहि दियो, ततछिन दीक्षा धारीरे, नाक० ॥ २३ ॥
 नाम कहूँ केता तणां, जीव तरया जगमाहीरे ॥
 नाक तणे परसादथी, शिव संपति विलसाईरे, नाक० ॥ २४ ॥

सुख विलसै संसारना, ते सह मुझ परसादैरे ॥
 नाना वृक्ष सुगंधता, नाक सकल आस्वादैरे, नाक कहै० ॥२५॥
 तीर्थकर त्रिभुवन धणी, तेहना तनमां वासोरे ॥
 परम सुगंधो घणी लसै, ते सुख नाक निवासोरे, नाक कहै० ॥२६॥
 औरं सुगंधो अनेक छै, ते सब नाकज जाणैरे ॥
 आनंदमां सुख भोगवे, 'भैया' एम वखाणैरे, नाक कहै० ॥२७॥

दोहा.

कान कहँ रे नाक सुन, तू कहा करै गुमान ॥
 जो चाकर आगें चलै, तो नहिं भूप समान ॥ २८ ॥
 नाक मुरनि पानी झरै, वहै सलेष्म अपार ॥
 गंधनि कर पूरित रहै, लाज नही गँवार ॥ २९ ॥
 तेरी छींक सुनै जिते, करै न उत्तम काज ॥
 मूदै तुह दुर्गंधमें, तऊ न आवै लाज ॥ ३० ॥
 वृषभ ऊंट नारी निरख, और जीव जग माहिं ॥
 जित तित तोको छेदिये, तौऊ लजानो नाहिं ॥ ३१ ॥
 कान कहे जिन वैनको, सुनै सदाचित लाय ॥
 जस प्रसाद इह जीवको, सम्यग्दर्शन थाय ॥ ३२ ॥
 कानन कुंडल झलकता, मणि मुक्ता फल सार ॥
 जगमग जगमग हूँ रहै, देखै सब संसार ॥ ३३ ॥
 सातों सुरको गायवो, अद्भुत सुखमय स्वाद ॥
 इन कानन कर परखिये, मीठे मीठे नाद ॥ ३४ ॥
 कानन सुन श्रावक भये, कानन सुनि मुनिराज ॥
 कान सुनहि गुण द्रव्यके, कान बड़े शिरताज ॥ ३५ ॥

राग काफी धमालमें०

कानन सुन ध्यानन ध्याइये हो, चिन्मूरत चेतन पाइये हो, कानन० टेक ।

कानन सरभर को करे हो, कान बड़े सिरदार ॥

छहों द्रव्यके गुण सुनै हो, जाने सकल विचार, कानन० ॥३६॥

संघ चतुर्विध सब तरे हो, कानन सुनि जिन वैन ॥

निज आतम सुख भोगवै हो, पावत शिवपद ऐन, कानन० ॥३७॥

द्वादशांग वानी सुनै हो, काननके परसाद ॥

गणधर तो गुरुवा कहा हो, द्रव्य सूत्र सब याद, कानन० ॥ ३८ ॥

कानन सुनि भरतेश्वरे हो, प्रभुको उपज्यो ज्ञान ॥

कियो महोच्छव हरखसँ हो, पायो है पद निर्वाण, कानन० ॥३९॥

विकट वैन धन्ना सुने हो, निकस्यो तज आवास ॥

दीक्षा गह किरिया करी हो, पायो शिवगति वास, कानन० ॥४०॥

साधु अनाथीसों सुन्यो हो, श्रेणिक जीव विचार ॥

क्षायक सम्यक तव लह्यो हो, पावैगो भवदधि पार, कामन० ॥४१॥

नेमनाथवानी सुनी हो, लीनो संयम भार ॥

ते द्वारिकके दाहसों हो, उबरे हैं जीव अपार, कानन० ॥ ४२ ॥

पार्श्वनाथके वैन सुने हो, महामन्त्र नवकार ॥

धरणेधर पदमावती हो, भये हैं जु तिहि वार, कानन० ॥ ४३ ॥

कानन सुनि कानन गये हो, भूपति तज बहु राज ॥

काज सवारै आपने हो, केवल ज्ञान उपाज, कानन० ॥ ४४ ॥

जिनवानी कानन सुने हो, जीव तरे जग माँहि ॥

नाम कहाँ लों लीजिये हो, 'भैया'जे शिवपुर जाँहि, कान० ४५

दोहा.

आंख कहैरे कान तू, इस्यो करै अहँकार ॥

मैलनिकर मूँछों रहै, लाजै नहीं लगाय ॥ ४६ ॥

भली बुरी सुनतो रहै, तोरै तुरत सनेह ॥
 तो सम दुष्ट न दूसरो, धारी ऐसी देह ॥ ४७ ॥
 दुष्टवचन सुन तो जरै, महा क्रोध उपजंत ॥
 तो प्रसादतैं जीव बहु, नरकन जाय परंत ॥ ४८ ॥
 पहिले तुमको बेधिये, नरनारीके कान ॥
 तोह नही लजात है, बहुर धैर अभिमान ॥ ४९ ॥
 काननकी बातें सुनी, सांची झूठी होय ॥
 आँखिन देखी बात जो, तामें फेर न कोय ॥ ५० ॥
 इन आँखिनसां देखिये, तीर्थकरको रूप ॥
 सुख असंख्य हिरदै लसै, सो जानै चिद्रूप ॥ ५१ ॥
 आँखिन लख रक्षा करै, उपजै पुण्य अपार ॥
 आँखिनके परसादसों, सुखी होत संसार ॥ ५२ ॥
 आँखिनतैं सब देखिये, तात मात सुत भ्रात ॥
 देव गुरु अरु ग्रन्थसब, आँखिनतैं विख्यात ॥ ५३ ॥
 ढाल—“वनमालीके बाग चंपो मौलि रह्योरी” ए देशी ।
 आँखिनके परसाद, देखे लोक सबैरी ॥
 आवै निजपद याद, प्रतिमा पेखत बेरी, आँखनके० ॥ ५४ ॥
 देखूं दृग सिद्धान्त, ग्रन्थ अनेक कह्यारी ॥
 जे भाख्या भगवंत, दर्शित तेह लह्यारी, आँखन० ॥ ५५ ॥
 समवशरणकी रिद्धि, देखत हर्ष घनोरी ॥
 प्रभु दर्शन फलसिद्धि, नाटक कौन गिनोरी, आँखन० ॥ ५६ ॥
 जिन मंदिर जयकार, प्रतिमा परम बनीरी ॥
 देखत हर्ष अपार, थुति नहिं जाहिं बनीरी, आँखन० ॥ ५७ ॥

ईर्ष्या समिति निहार, साधु चलै जु भलेरी ॥
 ते पावैं शिवनार, सुखकी कीर्ति फलेरी, आँखिन० ॥ ५८ ॥
 आँखिन विंव निहार, सम्यक शुद्ध लह्योरी ॥
 गोत तीर्थकर धार, रावन नाम कह्योरी, आँखिन० ॥ ५९ ॥
 चारों परतेक बुद्ध, देखत भाव फिरेरी ॥
 लहि निज आतमशुद्ध, भवजल वेग तिरेरी, आँखिन० ॥ ६० ॥
 पूरव भव आहार, देते दृष्टि परचोरी ॥
 इहि चौबीसी सार, अंसकुमर जु तरचोरी, आँखिन० ॥ ६१ ॥
 वाघिनि साधु विदार, दंतहि दृष्टि धरीरी ॥
 पूरव भवहि निहार, त्यागन देह करीरी, आँखिन० ॥ ६२ ॥
 शालिभद्र सुकुमार, श्रेणिक दृष्टि परचोरी ॥
 गहि संयमको भार, आतम काज करचोरी, आँखिन० ॥ ६३ ॥
 देख्यो जुद्ध अकाज, दीक्षा वेग गहेरी ॥
 पांडव तज सब राज, निज निधि वेग लहेरी, आँखिन० ॥ ६४ ॥
 कहूं कहाँलों नाम, जीव अनेक तरेरी ॥
 'भैया' शिवपुर ठाम, आँखितैं जाय वरेरी, आँखिन० ॥ ६५ ॥

दोहा.

जीम कहै रे आँखि तुम, काहे गर्व करांहि ॥
 काजल कर जो रंगिये, तो हू नाहिं लजांहि ॥ ६६ ॥
 कायर ज्यों डरती रहै, धीरज नहीं लगाय ॥
 बातबातमें रोयदे, बोलै गर्व अपार ॥ ६७ ॥
 जहाँ तहाँ लागत फिरै, देख सलौनो रूप ॥
 तेरे ही परसाद तैं, दुख पावै चिद्रूप ॥ ६८ ॥

कहा कहूं दृगदोषको, मोपैं कहे न जाहिं ॥

देख विनाशी वस्तुको, बहुर तहाँ ललचाहिं ॥ ६९ ॥

जीभ कहैं मोतैं सर्व, जीवत है संसार ॥

पटरस भुंजों स्वाद ले, पालों सब परिवार ॥ ७० ॥

मोविन आंखन खुल सकैं, कान सुनै नहिं वैन ॥

नाक न सूंघै वासको, मो विन कहीं न चैन ॥ ७१ ॥

मंत्र जपत इह जीभसों, आवत सुरनर धाय ॥

किंकर हूँ सेवा करै, जीभहिंके सुपसाय ॥ ७२ ॥

जीभहितैं जंपत रहै, जगत जीवजिन नाम ॥

जसु प्रसादतैं मुख लहै, पावै उत्तम ठाम ॥ ७३ ॥

ढाल—“रे जीया तो विन बड़ीरे छ मास” ए देशी ।

यतीश्वर जीभ बड़ी संसार, जपै पंच नवकार,

जतीश्वर० ॥ टेक ॥

द्वादशांगवाणी श्रवैजी, बोलै वचन रसाल ॥

अर्थ कहै सूत्रन सवैजी, सिखवै धर्म विशाल, यतीश्वर० ॥ ७४ ॥

दुरजनतैं सज्जन करैजी, बोलत मीठे बोल ॥

ऐसी कला न औरपैंजी, कौन आंख किह तोल, यतीश्वर० ॥ ७५ ॥

जीभहितैं सब जीतिथे जी, जीभहितैं सब हार ॥

जीभहितैं सब जीवकेजी, कीजतु हैं उपकार, यतीश्वर० ॥ ७६ ॥

जीभहितैं गणधर भयेजी, भव्यनि पंथ दिखाय ॥

आपन वे शिवपुर गयेजी, कर्मकलंक खपाय, यतीश्वर० ॥ ७७ ॥

जीभहितैं उवझायजूजी, पावै पद परधान ॥

जीभहितैं समकित लह्यो जू, परदेशी परवान, यतीश्वर० ॥ ७८ ॥

मथुरा नगरीमें हुवोजी, जंवृनाम कुमार ॥
 कहिकैं कथा सुहावनीजी, प्रति बोध्यो परिवार, यतीश्वर ॥ ७९ ॥
 रावनसों विरचे भलेजी, वाल महामुनि वाल ॥
 अष्टापद मुक्ते गयाजी, देखहु ग्रंथ निहाल, यतीश्वर ॥ ८० ॥
 मिटै उरझ उरकी सवैजी, पूछत प्रश्न प्रतक्ष ॥
 प्रगट लहै परमात्माजी, विनसे भ्रमको पक्ष, यतीश्वर ॥ ८१ ॥
 तीन लोकमें जीभही जी, दूर करै अपराध ॥
 प्रतिक्रमणकिरिया करैजी, पढ़ै सिझाये साध, यतीश्वर ॥ ८२ ॥
 जीभहि तैं सब गाइयेजी, सातों सुरके भेद ॥
 जीभहितैं जस जंपियेजी, जीभहि पढिये वेद, यतीश्वर ॥ ८३ ॥
 नाम जीभतैं लीजियेजी, उत्तर जीभहि होय ॥
 जीभहि जीव खिमाइयेजी, जीभ समौ नहि कोय, यतीश्वर ॥ ८४ ॥
 केते जिय मुक्ति गयेजी, जीभहिके परसाद ॥
 नाम कहांलें लीजियेजी, भैया बात अनादि, यतीश्वर ॥ ८५ ॥

दोहा.

फर्स कहैरे जीभ तू, एतो गर्व करंत ॥
 तो लागै झूठो कहै, तो हू नाहि लजंत ॥ ८६ ॥
 कहै वचन कर्कस बुरे, उपजै महा कलेश ॥
 तेरे ही परसादतैं, भिड़ भिड़ मरै नरेश ॥ ८७ ॥
 तेरे ही रस काजको, करत अरंभ अनेक ॥
 तोहि तृपति क्यों ही नही, तोतैं सबै उदेक ॥ ८८ ॥
 तोमै तो अवगुण धने, कहत न आवै पार ॥
 तो प्रसादतैं सीसको, जात न लागै वार ॥ ८९ ॥
 झूठे ग्रंथ न तू पढ़ै, दै झूठो उपदेश ॥

जियको जगत फिरावती, और हु करै कलेश ॥ ९० ॥

जा दिन जिय थावर वसत, ता दिन तुममें कौन ॥

कहा गर्व खोटो करो, नाक आँख मुख श्रौन ॥ ९१ ॥

जीव अनंते हम धरें, तुम तौ संख असंखि ॥

तितहू तो हम विन नही, कहा उठत हो झंखि ॥ ९२ ॥

नाक कान नैना सुनो, जीभ कहा गर्वाय ॥

सब कोऊ शिरनायकै, लागत मेरे पाय ॥ ९३ ॥

झूठी झूठी सब कहै, सांची कहै न कोय ॥

विन काया के तप तपे, मुक्ति कहांसों होय ॥ ९४ ॥

सहै परीसह वीस द्वै, महा कठिन मुनि राज ॥

तव तौ कर्म खपाइकै पावत हैं शिवराज ॥ ९५ ॥

ढाल—“ मोरी सहियोरी लाल न आवैगो” ए देशी ।

मोरासाधुजी फरस बडो संसार, करै कई उपकार, मोरा.

दक्षिण करतैं दीजिये जी, दान अनेक प्रकार ॥

तो तिहूँ भवशिवपद लहैजी, मिटै मरनकी मार, मोरा० ॥ ९६ ॥

दान देत मुनिराजको जी, पावै परमानंद ॥

सुरनर कोटि सेवा करैजी, प्रतपै तेज दिनंद, मोरा० ॥ ९७ ॥

नरनारी कोऊ धरोजी, शील व्रतहिं शिरदार ॥

सुख अनेक सो जी लहैजी, देखो फरस प्रकार, मो० ॥ ९८ ॥

तपकर काया कृश करेजी, उपजै पुण्य अपार ॥

सुख विलसै सुरलोककेजी, अथवा भवदधि पार, मोरा० ॥ ९९ ॥

भाव जु आतम भावतोजी, सो वैठो मो माहिं ॥

काया विन किरिया नही जी, किरिया विन सुख नाहिं मो. ॥ १०० ॥

गज सुकुमार गिरयो नहीं जी, फरस तपत भई जोर ॥
 केवल ज्ञान उपायकैजी, पहुँच्यो शिवगति ओर, मोरा० ॥१०१॥
 खंदक ऋषिकी खाल उतारी; सह्यो परीसह जोर ॥
 पूर्व बंध छूटै नहींजी, घट गये कर्म कठोर, मोरा० ॥१०२॥
 देखहु मुनि दमदंतको जी, कौरों करी उपाधि ॥
 ईदनमें गर्भित भयोजी, तऊन तजीय समाधि, मोरा० ॥१०३॥
 सेठ सुदर्शनको दियोजी, राजा दंड ग्रहार ॥
 सह्यो परीसह भावस्थोंजी, प्रगळ्यो पुण्य अपार, मोरा० ॥१०४॥
 प्रसन्न चन्द्र शिर फरसियोजी, फिर जगये सब भाव ॥
 नरकहि तज शिवगति लहीजी, देखहु फरस उपाव, मोरा० ॥१०५॥
 जेते जिय मुकते गयेजी, फरसहि के उपगार ॥
 पंच महाव्रत विनधरेजी, कोऊ न उतरयो पार, मोरा० ॥१०६॥
 नांव कहाँलों लीजियजी, वीत्यो काल अनंत ॥
 'भैया' मुझ उपकारकोजी, जानै श्रीभगवंत, मोरा० ॥१०७॥

सोरठा.

मन बोल्यो तिहँ ठौर, अरे फरस संसारमें ॥
 तू मूरख शिरमौर, कहा गर्व झूठो करै ॥ १०८ ॥
 इक अंगुल परमान, रोग छानवें भर रहे ॥
 कहा करै अभिमान, देख अवस्था नरककी ॥ १०९ ॥
 पांचों अव्रत सार, तिनसेती नित पोषिये ॥
 उपजै कई विकार, एतेपै अभिमान यह ॥ ११० ॥
 छिन इकमें खिर जाय, देखत दृष्ट शरीर यह ॥
 एतेपै गर्वाय, तोसम मूरख कौन है ॥ १११ ॥

दोहा.

मन राजा मन चक्रि है, मन सबको सिरदार ॥
 मनसां बडो न दूसरो, देख्यो इहि संसार ॥ ११२ ॥
 मनतैं सबको जानिये, जीव जिते जगमाहिं ॥
 मनतैं कर्म खपाइये, मनसरभर कोउ नाहिं ॥ ११३ ॥
 मनतैं करुणा कीजिये, मनतैं पुण्य अपार ॥
 मनतैं आतमतत्त्वको, लखिये सब विचार ॥ ११४ ॥
 मनहि सयोगी स्वामिपैं, सत्य रह्यो ठहराय ॥
 चार कर्मके नाशतैं, मन नहिं नाशयो जाय ॥ ११५ ॥
 मन इन्द्रिनको भूप है, इन्द्रिय मनके दास ॥
 यह तौ वात प्रसिद्ध है; कीन्हीं जिनपरकाश ॥ ११६ ॥
 तब बोले मुनिरायजी, मन क्यों गर्व करंत ॥
 देखहु तंदुल मच्छको, तुमतैं नर्क परंत ॥ ११७ ॥
 पाप जीव कोई करो, तू अनुमोदै ताहि ॥
 तासम पापी तू कह्यो, अनरथ लेहि विसाहि ॥ ११८ ॥
 इन्द्रिय तौ बँदी रहें, तू दौरें निशदीश ॥
 छिन छिन बांध कर्मको, देखत है जगदीश ॥ ११९ ॥
 बहुत वात कहिये कहा, मन सुनि एक विचार ॥
 परमात्मको ध्याइये, ज्यों लहिये भवपार ॥ १२० ॥
 मन बोल्यो मुनि राजसां, परमात्म है कौन ॥
 स्वामी ताहि बताइये, ज्यों लहिये सुख भौन ॥ १२१ ॥
 आत्मको हम जानते, जो राजत घट माहिं ॥
 परमात्म किह ठौर है, हम तौ जानत नाहिं ॥ १२२ ॥

परमात्म उहि ठौर है, रागद्वेष जिहि नाहिं ॥
 ताको ध्यावत जीव ये, परमात्म हूँ जाहिं ॥ १२३ ॥
 परमात्म द्वै विधि लसै, सकल निकल परमान ॥
 तिसमें तेरे घट वसै, देखि ताहि धर ध्यान ॥ १२४ ॥
 ढाल—“ कपूर हुवै अति उजळो रे मिरियासेती रंग” पृ. देशी ।
 प्राणी आत्म धरम अनूपरे, जगमें प्रगट चिद्रूप, प्राणी० टेक ।
 इन्द्रिनकी संगति कियेरे, जीव परै जग माहिं ॥
 जन्म मरन बहु दुख सहैरे, कबहू छूटै नाहिं, प्राणी० ॥ १२५ ॥
 भोरो परचो रस नाककेरे, कमलमुदित भये रैन ॥
 केतकी कांटन बाँधियोरे, कहूँ न पायो चैन, प्राणी० ॥ १२६ ॥
 काननकी संगत कियेरे, मृग मारचो वन माहिं ॥
 अहि पकरचो रस कानकेरे, कितहू छूट्यो नाहिं, प्राणी० ॥ १२७ ॥
 आँखनिरूप निहारकैरे, दीप परत है धाय ॥
 देखहु प्रगट पतंगकोरे, खोवत अपनो काय, प्राणी० ॥ १२८ ॥
 रसनारस मछ मारियोरे, दुर्जन कर विसवास ॥
 यातैं जगत विगूचियोरे, सहै नरकदुख वास, प्राणी० ॥ १२९ ॥
 फरसहितैं गज बसपरचोरे बंध्यो सांकल तान ॥
 भूख प्यास सबदुखसहैरे, किहू विधिकहहिं वखान प्राणी० १३० ॥
 पंचेन्द्रियकी प्रीतिसौरे, जीव सहै दुख घोर ॥
 काल अनंतहिं जग फिरैरे, कहूँ न पावे ठोर, प्राणी ॥ १३१ ॥
 मन राजा कहिये बडोरे, इन्द्रिनको सिरदार ॥
 आठ पहर प्रेरत रहैरे, उपजै कई विकार, प्राणी० ॥ १३२ ॥
 मन इंद्री संगति कियेरे, जीव परै जग जोय ॥
 विषयनकी इच्छा बढेरे, कैसें शिवपुर होय, प्राणी० ॥ १३३ ॥

इन्द्रिनेत मन मारिये, जोरिये आत्म माहिं ॥
 तोरिये नातो रागसोंरे, फोरिये बल इयां थाहिं, प्राणी० ॥१३४॥
 इन्द्रिने नेह निवारिये, टारिये क्रोध कषाय ॥
 धारिये संपत्ति शास्यतीरे, तारिये त्रिभुवन राय प्राणी० ॥१३५॥
 गुण अनंत जामें लसरे, केवल दर्शन आदि ॥
 केवल ज्ञान विराजतोरे, चेतन चिह्न अनादि, प्राणी० ॥१३६॥
 धिरता काल अनादिलोंरे, राज जिहें पद माहिं ॥
 गुण अनंत स्वामी बहरे, दूजो कोऊ नाहिं, प्राणी० ॥१३७॥
 शक्ति अनंत विराजतीरे, दोष न जामहि कोय ॥
 समकित गुणकर सोभितोरे, चेतन लखिये सोय, प्राणी० ॥१३८॥
 बढ घट कचहू नहीरे, अविनाशी अविकार ॥
 भिन्न रहें परद्रव्यसोंरे, सो चेतन निरधार, प्राणी० ॥१३९॥
 पंच वर्णमें जो नहीरे, नही पंच रस माहिं ॥
 आठ फरसतें भिन्नहरे, गंध दोऊ कोऊ नाहिं, प्राणी० ॥१४०॥
 जानत जो गुण द्रव्यकेरे, उपजन विनमन काल ॥
 सो अविनाशी आत्मारे, चिह्नहु चिह्न दयाल, प्राणी० ॥१४१॥
 गुण अनंत या ब्रह्मकेरे, कहिये किह्विधि नाम ॥
 'मैया' मनवचकायसोंरे, कीजे तिहपरिणाम, प्राणी० ॥१४२॥

दोहा.

परद्रव्यनसों भिन्न जो, स्वकिय भाव रसलीन ॥
 सो चेतन परमात्मा, देख्यो ज्ञान प्रवीन ॥१४३॥
 जो देखें गुण द्रव्यके, जानें सबको भेद ॥
 सो या घटमें प्रगट हैं, कहा करत हैं खेद ॥१४४॥
 गुण अनंतको नाथ वह, चिदानंद भगवान ॥

दर्शन ज्ञान विराजतो, देखो घर निज ध्यान ॥ १४५ ॥
 देखनहारो ब्रह्म वह, घट घटमें परतच्छ ॥
 मिथ्यातमके नाशतैं, सूझै सबको स्वच्छ ॥ १४६ ॥
 जैसो शिव तैसो इहाँ, भैया फेर न कोय ॥
 देखो सम्यक नयनसों, प्रगट विराजै सोय ॥ १४७ ॥
 निकट ज्ञानदृग देखतैं, विकट चर्मदृग होय ॥
 विकट कटै जव रागकी, प्रगट चिदानंद जोय ॥ १४८ ॥
 जिनवानी जो भगवती, दास तास जो कोय ॥
 सो पावहि सुखसास्वते, परम धर्म पद होय ॥ १४९ ॥
 संवत सत्र इक्यावने, नगर आगरे माहिं ॥
 भादों सुदि सुभ दोजको, बालख्याल प्रगटाहिं ॥ १५० ॥
 सुरसमाहिं सब सुख वसै, कुरसमाहिं कछु नाहिं ॥
 दुरस वात इतनी यहै, पुरुष प्रगट समझाहिं ॥ १५१ ॥
 गुण लीजे गुणवंत नर, दोष न लीज्यो कोय ॥
 जिनवानी हिरदै वसे, सबको मंगल होय ॥ १५२ ॥
 इति पंचेन्द्रियसंवाद ।

अथ ईश्वरनिर्णयपचीसी लिख्यते ।

दोहा.

परमेश्वर जो परमगुरु, परमज्योति जगदीस ॥
 परमभाव उर आनकें, वंदत हों नमि सीस ॥ १ ॥
 ईश्वर ईश्वर सब कहै, ईश्वर लखै न कोय ॥
 ईश्वर तो सो ही लखै, जो समदृष्टी होय ॥ २ ॥
 ब्रह्मा विष्णु महेश जे, ते पाये नहिं पार ॥
 ता ईश्वरको और जन, क्यों पावै निरधार ॥ ३ ॥

ईश्वरकी गति अगम है, पार न पायी जाय ॥

वेदस्मृति सब कहत हैं, नाम भजोरे भाय ॥ ४ ॥

कवित्त.

ब्रह्मा अरु विष्णु महादेव तीनों पच हारे, काहु न निहारे प्रभु
कैसे जगदीस हैं । दशों अवतार माहिं कौनैधों जनम लीन्हों,
तिन हू न पाये परब्रह्मा ऐसे ईस हैं । ध्रुव प्रहलाद दुरवासा
लोम ऋषि भये, किन हू न कहे ऐसे आप विस्वावीस हैं ।
आयत अचंभो इह धावत सकल जग, पावत न कोऊ ताहि
नाय काहि सीस हैं ॥ ५ ॥

एक मतवारे कहें अन्य मतवारे सब, मेरे मतवारे परवारे मत
सारे हैं । एक पंचतत्त्ववारे एक एकतत्त्व वारे, एक भ्रममत-
वारे एक एक न्यारे हैं ॥ जैसे मतवारे वकें तैसे मतवारे वकें,
तामों मतवारे तकें बिना मतवारे हैं ॥ शांतिरसवारे कहें मतको
निवारे रहें, तई प्रानप्यारे लहें और सब वारे हैं ॥ ६ ॥

अनङ्गशेखर.

अरं अज्ञान आतमा लखै न तू महातमा, लग्यो है तो महा-
तमा निजातमा न सूझई । प्रसिद्ध जो विख्यातमा विराजै गात
गातमा, कहावे पात पातमा चिदातमा न वूझई ॥ मिथ्यात्व मोह
मातमा लग्यो तु जीव घातमा, क्रोधादि वातवातमा अज्ञातमा
हैं झूझई । अनंत शक्ति जातमा उद्योत ज्यों प्रभातमा, सु सूझै
खंध आतमा तू बंधमें अरुझई ॥ ७ ॥

कवित्त.

हिंसाके कौरया जोपे जैहें सुरलोक मध्य, नर्कमांहि कहो बुध

(१) किरान. २ भोले.

कौन जीव जावेंगे ? । लेकै हाथ शस्त्र जेई छेदत पराये प्रान,
ते नहीं पिशाच कहो और को कहावेंगे ? ॥ ऐसे दुष्ट प्रापी जे
संतापी पर जीवनके, ते तो सुख संपतिसों कैसैं के अघावेंगे ॥ अहो
ज्ञानवंत संत तंतकै विचार देखो, बोवें जे बंबूर ते तौ आम कैसैं
खावेंगे ? ॥ ८ ॥

कुंडलिया ।

सुख जो तुमको चाहिये, सो सुख सबको चाह ।
खान पान जीवत रहै, धन सनेह निरवाह ॥
धन सनेह निरवाह, दाह दुख काहि न व्यापै ।
थावर जंगम जीव, मरन भय धार जु कांपै ॥
आपै देह विचार, होयकै आपहि सनमुख ।
'भैया' घटपट खोल, बोल कहि कौन चहै सुख ॥ ९ ॥

कवित्त.

वीतराग वानीकी न जानी बात प्राणी मूढ, ठानी तैं क्रिया
अनेक आपनी हठाहठी । कर्मनके बंध कौन अन्ध कछू सूझै
तोहि, रागदोष पर्णितसों होत जो गठागठी ॥ आतमाके जीतकी
न रीत कहू जानै रंच, ग्रन्थनके पाठ तू करै कहा पठापठी ।
मोहको न कियो नाश सम्यक न लियो भास, सूत न कपास
करै कौरीसों लठालठी ॥ १० ॥

हाथी घोरे पालकी नगारे रथ नालकी न, चकचोल चालकी
न चढि रीझियतु है । स्वेतपट चालकी न मोती मन मालकी
न, देख द्युति भाल की न मान कीजियतु है ॥ शैल बाग ताल
की न जल जंतु जालकी न, दया वृद्ध बालकी न दंड दीजियतु है ।

(१) कपड़ा बुननेवालेसों.

देख गति कालकी न ताह कौन हालकी न, चाविचूव गालकी न
वीन लीजियतु है ॥ ११ ॥

जैसे कौउ स्वान परयो काचके महलवीच, ठौर ठौर स्वान
देख भूस भूस मरयो है । वानर ज्यों मूठी बांध परयो है पराये वश,
कृयेमें निहार सिंह आप कूद परयो है ॥ फटिककी शिलामें
विलोक गज जाय अरयो, नलिनीके सुवटाको कौनैधों पकरयो
है । तैसे ही अनादिको अज्ञानभाव मान हंस, आपनो स्वभाव
भूलि जगतमें फिरयो है ॥ १२ ॥

दोहा.

ईश्वरके तो देह नहिं, अविनाशी अविकार ॥

ताहि कहैं शठ देह धर, लीन्हों जग अवतार ॥ १३ ॥

जो ईश्वर अवतार ले, मरै बहुर पुन सोय ॥

जन्म मरन जो धरतु है, सो ईश्वर किम होय ॥ १४ ॥

एकनकी घां होय कै, मरै एकही आन ॥

ताको जे ईश्वर कहैं, ते मूरख पहचान ॥ १५ ॥

ईश्वरके सब एकसे, जगतमांहि जे जीव ॥

काहूँपे नहिं द्वेष है, सबपैं शांति सदीव ॥ १६ ॥

ईश्वरसों ईश्वर लरै, ईश्वर एक कि दोय ॥

परशुराम अरु रामको, देखहु किन जगलोय ॥ १७ ॥

रौद्र ध्यान वतैं जहां, तहां धर्म किम होय ॥

परम बंध निर्दय दशा, ईश्वर कहिये सोय ॥ १८ ॥

ब्रह्माके खरशीस हो, ता छेदन कियो ईस ॥

ताहि सृष्टिकर्त्ता कहै, रख्यो न अपनो सीस ॥ १९ ॥

जो पालक सब सृष्टिको, विष्णु नाम भूपाल ॥
 सो मारयो इक बानतैं, प्रान तजे ततकाल ॥ २० ॥
 महादेव वर दैत्यको, दीनों होय दयाल ॥
 आपन पुन भाजत फिरयो, राख लेहु गोपाल ॥ २१ ॥
 जिनको जग ईश्वर कहै, ते तो ईश्वर नाहिं ॥
 ये हू ईश्वर ध्यावते, सो ईश्वर घट माहिं ॥ २२ ॥
 ईश्वर सो ही आतमा, जाति एक है तंत ॥
 कर्म रहित ईश्वर भये, कर्म सहित जगजंत ॥ २३ ॥
 जो गुण आतम द्रव्यके, सो गुण आतम माहिं ॥
 जड़के जड़में जनिये, यामै तो भ्रम नाहिं ॥ २४ ॥
 दर्शन आदि अनंत गुण, जीव धरै तिहुं काल ॥
 वर्णादिक पुद्गल धरै, ग्रगट दुहुंकी चाल ॥ २५ ॥
 सत्यारथ पथ छोड़के, लगै मृषाकी ओर ॥
 ते मूर्ख संसारमें, लहै न भवको छोर ॥ २६ ॥
 'भैया' ईश्वर जो लखै, सो जिय ईश्वर होय ॥
 यों देख्यो सर्वज्ञने, यामें फेर न कोय ॥ २७ ॥
 इति ईश्वरनिर्णयपचीसी ।

अथ कर्त्ताअकर्त्तापचीसी लिख्यते ।

दोहा.

कर्मनको कर्त्ता नहीं, धरता सुद्ध सुभाय ॥
 ता ईश्वरके चरन को, वंदों सीस नवाय ॥ १ ॥
 जो ईश्वर करता कहै, भुक्ता कहिये कौन ॥
 जो करता सो भोगता, यहै न्यायको भौन ॥ २ ॥

दुहुं दोषतँ रहित है, ईश्वर ताको नाम ॥
 मनवचशीस नवाइकँ, करुं ताहि परणाम ॥ ३ ॥
 कर्मनको करता वहै, जापै ज्ञान न होय ॥
 ईश्वर ज्ञानसमूह है, किम कर्त्ता है सोय ॥ ४ ॥
 ज्ञानवंत ज्ञानहिं करै, अज्ञानी अज्ञान ॥
 जो ज्ञाता कर्त्ता कहै, लगै दोष असमान ॥ ५ ॥
 ज्ञानीपै जड़ता कहा, कर्त्ता ताको होय ॥
 पंडित हिये विचारकँ, उत्तर दीजे सोय ॥ ६ ॥
 अज्ञानी जड़तामयी, करै अज्ञान निशंक ॥
 कर्त्ता भुगता जीव यह, यों भाखै भगवंत ॥ ७ ॥
 ईश्वरकी जिय जात है, ज्ञानी तथा अज्ञान ॥
 जो इह न कर्त्ता कहो, तौ है बात प्रमान ॥ ८ ॥
 अज्ञानी कर्त्ता कहै, तौ सब वनै बनाव ॥
 ज्ञानी है जड़ता करै, यह तौ वनै न न्याव ॥ ९ ॥
 ज्ञानी करता ज्ञानको, करै न कहुं अज्ञान ॥
 अज्ञानी जड़ता करै, यह तो बात प्रमान ॥ १० ॥
 जो कर्त्ता जगदीश है, पुण्य पाप किहू होय ॥
 मुख दुख काको दीजिये, न्याय करहु बुध लोय ॥ ११ ॥
 नरकनमें जिय डारिये, पकर पकरकँ बाँह ॥
 जो ईश्वर करता कहो, तिनको कहा गुनाह ॥ १२ ॥
 ईश्वरकी आज्ञा विना, करत न कोऊ काम ॥
 हिंसादिक उपदेशको, कर्त्ता कहिये राम ॥ १३ ॥
 कर्त्ता अपने कर्मको, अज्ञानी निर्धार ॥
 दोष देत जगदीशको, यह मिथ्या आचार ॥ १४ ॥

ईश्वर तौ निर्दोष है, करता भुक्ता नाहिं ॥
 ईश्वरको कर्त्ता कहै, ते मूरख जगमाहिं ॥ १५ ॥
 ईश्वर निर्मल मुकुरवत, तीनलोक आभास ॥
 सुख सत्ता चैतन्यमय, निश्चय ज्ञान विलास ॥ १६ ॥
 जाके गुन तामें बसै, नहीं औरमें होय ॥
 सूधी दृष्टि निहारतैं, दोष न लागै कोय ॥ १७ ॥
 वीतरागवानी विमल, दोषरहित तिहुंकाल ॥
 ताहि लखै नहीं मूढ जन, झूठे गुरुके बाल ॥ १८ ॥
 गुरु अंधे शिष्य अंधकी, लखै न बाट कुवाट ॥
 विना चक्षु भटकत फिरै, खुलै न हिये कपाट ॥ १९ ॥
 जोलों मिथ्यादृष्टि है, तोलों कर्त्ता होय ॥
 सो हू भावित कर्मको, दर्वित करै न कोय ॥ २० ॥
 दर्व कर्म पुद्गल मयी, कर्त्ता पुद्गल तास ॥
 ज्ञानदृष्टिके होत ही, सूझे सब परकाश ॥ २१ ॥
 जोलों जीव न जान ही, छहों कायके वीर ॥
 तौलों रक्षा कौनकी, कर है साहस धीर ॥ २२ ॥
 जानत है सब जीवको, मानत आप समान ॥
 रक्षा यातैं करत है, सबमें दरसन ज्ञान ॥ २३ ॥
 अपने अपने सहजके, कर्त्ता हैं सब दर्व ॥
 यहै धर्मको मूल है, समझ लेहु जिय सर्व ॥ २४ ॥
 भैया, बात अपार है, कहै कहाँलों कोय ॥
 थोरेहीमें समझियो, ज्ञानवंत जो होय ॥ २५ ॥

सत्रहसे इक्यावनै, पोष शुक्ल तिथि वार ॥
जो ईश्वरके गुण लखै, सो पावे भवपार ॥ २६ ॥

इति कर्त्ताककर्त्तापचीसी.

अथ दृष्टान्तपचीसी लिख्यते ।

दोहा.

केवल ज्ञान स्वरूपमें, वसै चिदात्म देव ॥
मन बच शीस नवायकै, कीजे तिनकी सेव ॥ १ ॥
एक शुद्ध परमात्मा, दुविधि तास पद जान ॥
त्रिविधि नमत हों जोर कर, चहुं निक्षेपन बान ॥ २ ॥
सुरसति वर्षति मेघ जिम, जिन मुख अमृत धार ॥
पीवत है भवि जीव जे, ते सुख लहै अपार ॥ ३ ॥
जिय हिंसा जगमें बुरी, हिंसा फल दुख देत ॥
मकरी मांखी भक्ष्यती, ताहि चिरी भख लेत ॥ ४ ॥
जिय हिंसा करते नहीं, धरते शुद्ध स्वभाय ॥
तौ देखौ मुनिराजके, सेवत सुरनर पाय ॥ ५ ॥
झूठ भलो नहिं जगतमें, देखहु किन दृग जोय ॥
झूठी तूती बोलती, ता ढिग रहै न कोय ॥ ६ ॥
सांच बडो संसारमें, मानत सब परमान ॥
सांच सूआ कहै रामको, सुनत सबै धर कान ॥ ७ ॥
बिन दीनों जे लेत हैं, ताहि लगै बहु पाप ॥
चौरहि सूरी दीजिये, देखहु जग संताप ॥ ८ ॥

लेत नहीं परद्रव्यको, देत सकल परत्याग ॥
 तौ लच्छी भगवानके, रहत चरन ढिग लाग ॥ ९ ॥
 शीलव्रत पालै नहीं, भालै परतिय रूप ॥
 पेख हु रावन आदि बहु, परत नर्कके कूप ॥ १० ॥
 मन वच काया योगसों, शीलव्रतहिं ठहराय ॥
 सेठ सुदर्शन देखिये, सुरगण भये सहाय ॥ ११ ॥
 परिग्रह संग्रह ना भलो, परिग्रह दुखको मूल ॥
 माखी मधुको जोरती, देखहु दुखको शूल ॥ १२ ॥
 जिनके परिग्रह रंच नहिं, मातजात जिम वाल ॥
 तिह मुनिवरके इंद्र हू, सेवत चरन त्रिकाल ॥ १३ ॥
 मन वच काया योगसों, सब त्यागी मुनिराज ॥
 कछु त्यागी जिय अणुव्रती, तेहू हैं सिरताज ॥ १४ ॥
 राग न कीजे जगतमें, राग किये दुख होय ॥
 देखहु कोकिल पींजरै, गहि डारत हैं लोय ॥ १५ ॥
 देख संडासी पकरिये, अहिरण ऊपर डार ॥
 आगहि घनसों पीटिये, लोहैं संग निवार ॥ १६ ॥
 नेहन कीजै आनसों, नेह किये दुख होय ॥
 नेह सहित तिल पेलिये, डार जंत्रमें जोय ॥ १७ ॥
 परसंगति कीजे नहीं, परहि मिले दुख पेख ॥
 पानी जैसैं पीटिये, वस्त्र मिले दुख देख ॥ १८ ॥
 पवन जु पोषै मसकको, मसक थूल है जाय ॥
 देखहु संगति दुष्टकी, पौनहि देह जराय ॥ १९ ॥
 चेतन चंदन वृक्षसों, कर्म साँप लपटाहिं ॥
 बोलत गुरुवच मोरके, सिथल होय दुर जाहिं ॥ २० ॥

कुगुरु कुगतिके सारथी, मूढनको ले जाहिं ॥
 हिंसाके उपदेश दै, धर्म कहै तिहमाहिं ॥ २१ ॥
 दक्षनके हित दक्षसों, शठकै शठसों प्रीत ॥
 अलि अम्नुजपै देखिये, दर्दुर कर्म मीत ॥ २२ ॥
 परभावनसों विरचकै, निज भावनको ध्यान ॥
 जो इह मारग अनुसरै, सो पावै निर्वान ॥ २३ ॥
 बहुत बात कहिये कहा, थोरे ही दृष्टन्त ॥
 जो पावै निज आतमा, सो पावै भव अन्त ॥ २४ ॥
 'भैया' निज पाये विना, भ्रमन अनन्त कीन ॥
 तेई तरे संसारमें, जिहँ आपो लखि लीन ॥ २५ ॥
 एक सात पण दोय हँ, अश्विन दिशाँ प्रकास ॥
 यह दृष्टांत पचीसिका, कही भगोतीदास ॥ २६ ॥

इति दृष्टान्तपचीसी

अथ मनवत्तीसी लिख्यते ।

दोहा.

दर्शन ज्ञान चरित्र जिहँ, सुख अनन्त प्रतिभास ॥
 वंदत हों तिहँ देवको, मन धर परम हुलास ॥ १ ॥
 मनसों वंदन कीजिये, मनसों धरिये ध्यान ॥
 मनसों आतम तत्त्वको, लखिये सिद्ध समान ॥ २ ॥
 मन खोजत है ब्रह्मको, मन सब करै विचार ॥
 मनविन आतम तत्त्वको, करै कौन निरधार ॥ ३ ॥
 मनसम खोजी जगतमें, और दूसरो कौन ॥
 खोज गहै शिवनाथको, लहै सुखनको भौन ॥ ४ ॥

जो मन सुलटै आपको, तौ सूझै सब सांज ॥
 जो उलटै संसारको, तौ मन सूझै कांच ॥ ५ ॥
 सत असत्य अनुभय उभय, मनके चार प्रकार ॥
 दोय झुकै संसारको, द्वै पहुंचावै पार ॥ ६ ॥
 जो मन लागै ब्रह्मको, तौ सुख होय अपार ॥
 जो भटकै भ्रम भावमें, तौ दुख पार न वार ॥ ७ ॥
 मनसो बली न दूसरो, देख्यो इहि संसार ॥
 तीन लोकमें फिरत ही, जातन लागै वार ॥ ८ ॥
 मन दासनको दास है, मन भूपनको भूप ॥
 मन सब बातनि योग्य है, मनकी कथा अनूप ॥ ९ ॥
 मन राजाकी सैन सब, इन्द्रिनसे उमराव ॥
 रात दिना दौरत फिरै, करै अनेक अन्याव ॥ १० ॥
 इन्द्रियसे उमराव जिहँ, विषय देश विचरंत ॥
 भैया तिह मन भूपको, को जीतै विन संत ॥ ११ ॥
 मन चंचल मन चपल अति, मन बहु कर्म कमाय ॥
 मन जीते विन आतमा, मुक्ति कहो किम धाय ॥ १२ ॥
 मनसो जोधा जगतमें, और दूसरो नाहिं ॥
 ताहि पछारै सो सुभट, जीत लहै जग माहिं ॥ १३ ॥
 मन इन्द्रिनको भूप है, ताहि करै जो जेर ॥
 सो सुख पावै मुक्तिके, यामें कछु न फेर ॥ १४ ॥
 जब मन मूँघो ध्यानमें, इन्द्रिय भई निराश ॥
 तब इह आतम ब्रह्मने, कीने निज परकाश ॥ १५ ॥
 मनसो मूरख जगतमें, दूजो कौन कहाय ॥
 सुख समुद्रको छाडकै, विषके वनमें जाय ॥ १६ ॥

विप भक्षनतैं दुख बढै, जानै सब संसार ॥
 तबहू मन समझै नहीं, विषयन सेती प्यार ॥ १७ ॥
 छहों खंडके भूप सब, जीत किये निजदास ॥
 जो मन एक न जीतियो, सहै नरक दुख वास ॥ १८ ॥
 छाँड़ तनकसी झूंपरी, और लंगोटी साज ॥
 सुख अनंत विलसंत है, मन जीतै मुनिराज ॥ १९ ॥
 कोटि सताइस अपछरा, वत्तिस लक्ष विमान ॥
 मन जीते विन इन्द्र हू, सहै गर्भ दुख आन ॥ २० ॥
 छाँड़ घरहि वनमें वसै, मन जीतनके काज ॥
 ताँ देखो मुनिराजजू, विलसत शिवपुर राज ॥ २१ ॥
 अरि जीतनको जोर है, मन जीतनको खाम ॥
 देख त्रिखंडी भूपको, परत नरकके धाम ॥ २२ ॥
 मन जीतै जे जगतमें, ते सुख लहै अनंत ॥
 यह तौ बात प्रसिद्ध है, देख्यो श्रीभगवंत ॥ २३ ॥
 देख बडे आरंभसों, चक्रवर्ति जग माहिं ॥
 फेरत ही मन एकको, चले मुक्तिमें जाहिं ॥ २४ ॥
 वाहिज परिगह रंच नहिं, मनमें धरै विकार ॥
 तंदुल मच्छ निहारिये, पडै नरक निरधार ॥ २५ ॥
 भावनहीतैं बंध है, भावनहीतैं मुक्ति ॥
 जो जानै गति भावकी, सो जानै यह युक्ति ॥ २६ ॥
 परिग्रह कारन मोहको, इम भाख्यो भगवान ॥
 जिहँ जिय मोह निवारियो, तिहिं पायो कल्यान ॥ २७ ॥

अरिछ.

कहा भयो बहु फिरे तीर्थ अडसट्टका ॥
 कहा होय तन दहे, रैन दिन कट्टका ॥

कहा होय नित रटै राम मुख पट्टका ।
 जो बस नाही तोहि पंसेरी अट्टका ॥ २८ ॥
 कहा मुंडाये मूंड वसे कहा मट्टका ।
 कहा नहाये गंग नदीके तट्टका ॥
 कहा कथाके सुने वचनके पट्टका ।
 जो बस नाही तोहि पंसेरी अट्टका ॥ २९ ॥

चौपाई १६ मात्रा.

कहा कहों जियकी जड़ताई । मोपैं कछु वरनी नहिं जाई ॥
 आरज खंड मनुष्यभव पायो । सो विषयनसँग खेल गमायो ॥ ३० ॥
 आगें कहो कौन गति जैहो । ऐसे जनम बहुर कहाँ पैहो ॥
 अरे तू मूरख चेत सवेरे । आवत काल छिनहि छिन नेरे ॥ ३१ ॥
 जबलों जमकी फौज न आवै । तबलों जो मनको समुझावै ॥
 आतम तत्त्व सिद्धसम राजै । ताहिं विलोक मर्नभय भाजै ॥ ३२ ॥
 बहुत बात कहिये कहु केती । कारज एक ब्रह्म ही सेती ॥
 ब्रह्म लखै सो ही सुख पावै । भैया सो परब्रह्म कहावै ॥ ३३ ॥

चौपाई १५ मात्रा.

नगर आगरे जैनी बसै । गुण मणिरिद्ध वृद्धि कर लसै ॥
 तिहँ थानक मन ब्रह्म प्रकाश । रचना कही 'भगोतीदास' ३४
 इति मनवत्तीसी ।

अथ स्वप्नवत्तीसी लिख्यते ।

दोहा.

स्वप्नेवत संसारमें जागे श्रीजिनराय ॥
 तिनके चरन चितारकें, वंदत हों मन लाय ॥ १ ॥

(१) आठ पंसेरीका मन ।

मोह नींदमें जीवको, वीत गयो चिरकाल ॥
 जाग न कवहू आपकी, कीन्ही सुध संभाल ॥ २ ॥
 जानत है सब जगतमें, यह तन रहवो नाहिं ॥
 पोपत है किहू भावसों, मोह गहलता माहिं ॥ ३ ॥
 मेरे भीत नचीत तू, है वैढ्यो किहू ठौर ॥
 आज काल जम लेत है, तोहि सुपन भ्रम और ॥ ४ ॥
 देखत देखत आंखसों, यह तन विनस्यो जाय ॥
 एतेपर थिर मानिये, यहो मूढ शिरराय ॥ ५ ॥
 जो प्रभातको देखिये, सो संध्याको नाहिं ॥
 ताहि सांच कर मानिये, भ्रम अरु कहा कहाहिं ॥ ६ ॥
 ज्यों सुपनेमें देखिये, त्यों देखत परतच्छ ॥
 सब विनाशी वस्तु है, जात छिनकमें गच्छ ॥ ७ ॥
 सुपनेमें भ्रम देखिये, जागत हू भ्रम मूल ॥
 ताहि सांच शठ मानकें, रह्यो जगतमें फूल ॥ ८ ॥
 सुपनेमें अरु जागतें, फेर कहा है वीर ॥
 बाहूमें भ्रम भूल हैं, बाहूमें भ्रम भीर ॥ ९ ॥
 सुपनेवत संसार है, मूढ़ न जाने भेव ॥
 आठ पहर अज्ञानमें, मग्न रहैं अहमेव ॥ १० ॥
 सुपनेसों कहै झूठ है, जाग कहै निजगेह ॥
 ते मूरख संसारमें, लहै न भवको छेह ॥ ११ ॥
 कहा सुपनमें सांच है ? कहा जगतमें सांच ? ॥
 भूल मूढ़ थिरमानकें, नाचत डोलै नाच ॥ १२ ॥
 आँख मूंद खोलै कहा, जागत कोऊ नाहिं ॥
 सोवत सब संसार है, मोह गहलता माहिं ॥ १३ ॥

मोह नींदको त्यागकें, जे जिय भये सचेत ॥
 ते जागे संसारमें, अविनाशी सुख लेत ॥ १४ ॥
 अविनाशी पद ब्रह्मको, सुख अनंतको मूल ॥
 जाग लह्यो जिहँ जगतमें, तिहँ पायो भवकूल ॥ १५ ॥
 अविनाशी घट घट प्रगट, लखत न कोऊ ताहि ॥
 सोय रहे भ्रम नींदमें, कहि समुझावैं काहि ॥ १६ ॥
 आप कहै हम दक्ष हैं, और न कहै अज्ञान ॥
 अहो सुपनकी भूलमें, कहा गहै अभिमान ॥ १७ ॥
 मान आपको भूपती, औरनसों कहै रंक ॥
 देख सुपनकी संपदा, मोहित मूढ निशंक ॥ १८ ॥
 देख सुपनकी साहिबी, मूरख रह्यो लुभाय ॥
 छिन इकमें छय जायगी, धूम महलके न्याय ॥ १९ ॥
 कहा सुपनकी साहिबी, मूरख हिये विचार ॥
 जम जोधा छिन एकमें, लेहैं तोहि पछार ॥ २० ॥
 सोवतमें इह जीवको, सुरति रहै नहिं रंच ॥
 आप कछु मानै कछु, सबहि भरम परपंच ॥ २१ ॥
 मूरख है यह आत्मा, क्यों ही समझत नाहिं ॥
 देख सुपनवत आंखसों, बहुर मगन तिह माहिं ॥ २२ ॥
 जानत है जमराजकी, आवत फौज प्रचंड ॥
 मार करै इह देहको, छिनक माहिं शत खंड ॥ २३ ॥
 ऐसे जमको भय नहीं, पोषत तन मन लाय ॥
 तिनसम मूरख जगतमें, दूजो कौन कहाय ॥ २४ ॥
 मूरख सोवत जगतमें, मोह गहलतामाहिं ॥
 जन्म मरन बहु दुख सहै, तो हू जागत नाहिं ॥ २५ ॥

जन ऊपर जम जोर है, जिनसों जम हु डराय ॥
 तिनके पद जो सेइये, जमकी कहा वसाय ॥ २६ ॥
 जिनके पदको सेवते, निजपद परगट होय ॥
 तिनतैं वडो न दूसरो, और जगतमें कोय ॥ २७ ॥
 निजपद परगट होत ही, शिवपद मिलै सुभाय ॥
 जनम मरन बहु दुख मिटै, जम विलख्यो है जाय ॥ २८ ॥
 जम जीतेतैं जीवको, सुख अनंत ध्रुव होय ॥
 बहुर न कवहू, सोयबो, जगे कहावैं सोय ॥ २९ ॥
 जम जीते जीते बहै, जागे बहै प्रमान ॥
 बहै सवन शिरमुकट है, चेतन धर तिहँ ध्यान ॥ ३० ॥
 ध्यान धरत परब्रह्मको, तोहि परमपद होय ॥
 तुहू कहावैं सिद्धमय, और कहै कहा कोय ॥ ३१ ॥
 चेतन ढील न कीजिये, धरहु ब्रह्मको ध्यान ॥
 सुख अनंत शिवलोकमें, प्रगटै महा कल्याण ॥ ३२ ॥
 इह विधि जो जागै पुरुष, निज दृग कर परकास ॥
 तिहँ पायो सुखशास्वतो, कहै 'भगोत्तीदास ॥ ३३ ॥
 उग्रसेनपुर अचनिपैं, शोभत मुकट समान ॥
 तिह थानक रचना कही, समुझ लेहु गुणवान ॥ ३४ ॥
 इति सुपनवत्तीसी ।

अथ सूबावत्तीसी लिख्यते ।

दोहा.

नमस्कार जिन देवको, करों दुहूँ करजोर ॥
 सुबा वतीसी सुरस मैं, कहूँ अरिनदलमोर ॥ १ ॥

आतम सुआ सुगुरु वचन, पढत रहै दिन रैन ॥
 करत काज अघरीतिके, यह अचरज लखि नैन ॥ २ ॥
 सुगुरु पढावे प्रेमसों, यहू पढत मनलाय ॥
 घटके पट जो ना खुलै, सबहि अकारथ जाय ॥ ३ ॥

चौपाई.

सुवा पढायो सुगुरु बनाय । करम बनहि जिन जइयो भाय ॥
 भूले चूके कबहु न जाहु । लोभनलिनपै दगा न खाहु ॥ ४ ॥
 दुर्जन मोह दगाके काज । बांधी नलनी तर धर नाज ॥
 तुम जिन बैठ हु सुवा सुजान । नाज विषयसुख लहि तिहँ थान ॥
 ५ ॥ जो बैठहु तो पकरि न रहियो । जो पकरो तो दह जिन
 गहियो ॥ जो दह गहो तो उलटि न जइयो । जो उलटो तो
 तजि भजि धइयो ॥ ६ ॥ इह विधि सूआ पढायो नित्त । सुवटा
 पढिके भयो विचित्त ॥ पढत रहै निशदिन ये वैन । सुनत लहै
 सब प्राणी चैन ॥ ७ ॥ इक दिन सुवटै आई मनै । गुरु संगत
 तज भज गये बनै ॥ वनमें लोभ नलिन अति बनी । दुर्जन मोह
 दगाको तनी ॥ ८ ॥ ता तरु विषयभोग अन धरे । सुवटै जान्यो
 ये सुख खरे ॥ उत्तरे विषयसुखनके काज । बैठ नलिनपै बिलसै
 राज ॥ ९ ॥ बैठो लोभ नलिनपै जबै । विषय स्वाद रस लटके
 तबै ॥ लटकत तरै उलटि गये भाव । तर मूंडी ऊपर भये पांव
 ॥ १० ॥ नलिनी दह पकरै पुनि रहै । मुखतै वचन दीनता कहै
 कोउ न बनमें छुडावनहार । नलनी पकरहि करहि पुकार ॥ ११ ॥
 पढत रहै गुरुके सब वैन । जे जे हितकर सिखये ऐन ॥ “सुवटा
 वनमें उड जिन जाहु । जाहु तो भूल खता जिन खाहु ॥ १२ ॥

नलनीके जिन जइयो तीर । जाहु तो तहां न बैठहु वीर ॥ जो
बैठो तो दृढ जिन गहो । जो दृढ गहो तो पकरि न रहो ॥ १३ ॥
जो पकरो तो चुगा न खइयो । जो तुम खावो तो उलटन जइ-
यो ॥ जो उलटो तो तज भज धइयो । इतनी सीख हृदय में
लहियो ॥ १४ ॥ ऐसे वचन पढत पुन रहै । लोभ नलनि तज
भज्यो न चहै ॥ आयो दुर्जन दुर्गति रूप । पकड़े सुवटा सुंदर
भूप ॥ १५ ॥ डारे दुखके जाल मझार । सो दुख कहत न आ-
वै पार ॥ भूख प्यास बहु संकट सहै । परवस परे महा दुख
लहै ॥ १६ ॥ सुवटाकी सुधि बुधि सब गई । यह तौ वात और
कछु भई ॥ आय परे दुख सागर माहिं । अव इततैं कितको
भज जाहिं ॥ १७ ॥ केतो काल गयो इह ठौर । सुवटै जियमें
ठानी और ॥ यह दुख जाल कटै किहूँ भाँति । ऐसी मनमें
उपजी खाँति ॥ १८ ॥ रात दिना प्रभु सुमरन करै । पाप जाल
काटन चित धरै ॥ क्रम क्रम कर काव्यो अघजाल । सुमरन फ-
ल भयो दीनदयाल ॥ १९ ॥ अव इततैं जो भजकें जाउं । तौ
नलनीपर बैठ न खाउं ॥ पायो दाव भज्यो ततकाल । तज दुर्जन
दुर्गति जंजाल ॥ २० ॥ आये उडत बहुर वनमाहिं । बैठे नर-
भव द्रुमकी छाहिं ॥ तित इक साधु महा मुनिराय । धर्म देशना
देत सुभाय ॥ २१ ॥ यह संसार कर्मवनरूप । तामहि चेतन
सुआ अनूप ॥ पढत रहै गुरु वचन विशाल । तौ हू न अपनी
करै संभाल ॥ २२ ॥ लोभ नलिनपैं बैठे जाय । विषय स्वाद
रस लटके आय ॥ पकरहि दुर्जन दुर्गति परै । तामें दुःख
बहुत जिय भरै ॥ २३ ॥ सो दुख कहत न आवै पार । जानत

जिनवर ज्ञानमझार ॥ सुनतैं सुवटा चौक्यो आप । यह तो मो-
 हि परथो सब पाप ॥ २४ ॥ ये दुख तौ सब मैं ही सहे । जो
 मुनिवरने मुखतैं कहे ॥ सुवटा सोचै हिये मझार । ये गुरु सांचे
 तारनहार ॥ २५ ॥ मैं शठ फिरथो करमवन माहिं । ऐसे गुरु
 कहूँ पाये नाहिं ॥ अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो । सांचे गुरु-
 को दर्शन लयो ॥ २६ ॥ गुरुकी गुणस्तुति बारंवार । सुमिरै
 सुवटा हिये मझार ॥ सुमरत आप पाप भज गयो । घटके पद
 खुल सम्यक थयो ॥ २७ ॥ समकित होत लखी सब वात । यह
 मैं यह परद्रव्य विख्यात ॥ चेतनके गुण निजमहि धरे । पुद्गल
 रागादिक परिहरे ॥ २८ ॥ आप भगन अपने गुण माहिं । जन्म
 मरण भय जियको नाहिं ॥ सिद्ध समान निहारत हिये । कर्म
 कलंक सबहि तज दिये ॥ २९ ॥ ध्यावत आप माहिं जगदीश ।
 दुहुंपद एक विराजत ईश ॥ इहविधि सुवटा ध्यावत ध्यान ।
 दिनदिन प्रति प्रगटत कल्याण ॥ ३० ॥ अनुक्रम शिवपद जिय-
 को भया । सुख अनंत विलसत नित नया ॥ सतसंगति सबको
 सुख देय । जो कछु हियमें ज्ञान धरेय ॥ ३१ ॥ केवलपद
 आतम अनुभूत । घट घट राजत ज्ञान संजूत ॥ सुख अनंत
 विलसै जिय सोय । जाके निजपद परगट होय ॥ ३२ ॥ सुवा
 बतीसी सुनहु सुजान । निजपद प्रगटत परम निधान ॥ सुख
 अनंत विलसहु ध्रुव नित्त । 'भैयाकी' विनती धर चित्त ॥ ३३ ॥
 संवत सत्रह त्रेपन माहिं । अश्विन पहिले पक्ष कहाहिं ॥ दशमी
 दशौ दिशा परकास । गुरु संगति तैं शिव सुखभास ॥ ३४ ॥

इति सुवाबत्तीसी ।

अथ ज्योतिषके छन्द लिख्यते ।

छप्पय ।

दिन करके दिन बीस, चंद्र पंचास प्रमानहु ।
मंगल विंशति आठ, बुद्ध छप्पन शुभ ठानहु ॥
शानिके गण छत्तीस, देव गुरु दिनहि अठावन ।
राहु वियालिस लहिय, शुक्र सत्तर मन भावन ॥
इम गनहु दशा निजराशितें, सूरज जित संक्रमहिं तित ।
शुभफलहिं विचारहु भविक जन, परम धरम अवधार चित ॥ १ ॥

मेप वृश्चिक पति भौम, वृषभ तुलनाथ शुक्र सुर ।
मीनराशि धनराशि ईश, तस कहत देव गुरु ॥
कन्या मिथुन बुधेश, कर्क स्वामी श्री चंद गणि ॥
मकर कुंभ नृप शनी, सिंह राशिहि प्रभु रवि भणि ॥
ये राशी द्वादश जगतमें, ज्योतिष ग्रंथ वखानिये ।
तस नाथ सात लख भविकजन, परम तत्त्व उर आनिये ॥ २ ॥
मेप सूर वृष चंद्र, मकर मंगल गण लिजै ।
कन्या बुध अति शुद्ध, कर्क सुरगुरुहि भणिजै ॥
मीन शुक्र सुख करन, तुलहि दुख हरन शनीश्वर ॥
मिथुन राहु जय करय, भरय भंडार धनीश्वर ॥
इह विधि अनेक गुण उच्च महि, रिद्ध सिद्धि संपति भरय ॥
तस नाथ सात लख भविकजन, परम धर्म जिय जय करय ॥ ३ ॥

दोहा.

तुल सूरज वृश्चिक शशी, कर्क भौम बुध मीन ॥
मकर वृहस्पति कन्य भृगु, मेप शनिश्वर दीन ॥ ४ ॥

राहु होय धन राशि जो, ए सब कहिये नीच ॥
 परमारथ इनमें इतो, रहिये निज सुख वीच ॥ ५ ॥
 इति ज्योतिषछन्द ।

अथ पद राग प्रभाती ।

साहिव जाके अमर है सेवक सब ताके ॥
 दीप और पर दीपमें भर रहे सदाके, साहिव० ॥ १ ॥
 जामे तीर्थकर भये चक्री वसु देवा ॥
 काल अनन्तहु एकसे, घटवढ नहि टेवा, साहिव० ॥ २ ॥
 जाकी उत्पति नित्य है नित होय विनाशा ॥
 जीव विना पुद्गल विना सागर सम वासा, साहिव० ॥ ३ ॥
 अर्थ कहो याको कहा विनती सौ वारा ॥
 नाव कह्यो या पदविपै, तुम लेहु विचारा, साहिव० ॥ ४ ॥

पुनः

कहा तनकसी आयुपै, मूरख तू नाचै ॥
 सागरधितिधर खिर गये, तू कैसें बांचै, कहा० ॥ १ ॥
 देख सुपनकी संपदा, तू मानत सांचै ॥
 वे जु नर्ककी आपदा, जर है को आंचै, कहा० ॥ २ ॥
 धर्मकर्ममें को भलो परखो मणि काचै ॥
 भैया आप निहारिये परसों मति मांचै, कहा० ॥ ३ ॥

इति पद.

अथ फुटकर कविता लिख्यते ।

कवित्त.

तेरो ही स्वभाव चिनमूरति विराजत है, तेरो ही स्वभाव सुख
 सागरमें लहिये । तेरो ही स्वभाव ज्ञान दरसन राजत है, तेरो ही

स्वभाव ध्रुव चारितमें कहिये ॥ तेरो ही स्वभाव अविनाशी सदा दीसत है तेरो ही स्वभाव परभावमें न गहिये । तेरो ही स्वभाव सब आन लसै ब्रह्ममाहिं यातैं तोहि जगतको ईश सरदहिये ॥१॥

मोह मेरे सारेने विगारे आन जीव सब, जगतके वासी तैसे वासी कर राखे हैं ॥ कर्मगिरिकंदरामें बसत छिपाये आप, करत अनेक पाप जात कैसे भाखे हैं ॥ विपैवन जोर तामे चोरको निवास सदा, परधन हरयेके भाव अभिलाखे हैं । तापै जिनराज जूके बैन फौजदार चढे, आन आन मिले तिन्हें मोक्ष देश दाखे हैं ॥ २ ॥

जोलों तेरे हिये भर्म तोलों तू न जानै मर्म, कौन आप कौन कर्म कौन धर्म सांच है । देखत शरीर चर्म जो न सहं शीत धर्म, ताहि धोय मानं धर्म ऐसे भ्रम माच है ॥ नेक हू न होय नर्म वात वातमाहिं गर्म, रहो चाहै हेम हर्म वसनाहीं पांच है । एते पै न गहै शर्म कैसे हैं प्रकाश पर्म, ऐसे मूढ भर्ममाहिं नाचै कर्म नाच है ॥३॥

अमल सु पी रहैरी अमल सुपीरहैरी, अमल वही रहैरी अमल सु पीर है । वानी जो गहीरहैरी वानी जो वही रहैरी, वानी न कही लहैरी वानी न कही रहै ॥ परको शरीरहैरी परको नही रहैरी, परको नही रहैरी वहै दुख भीर है । भौदधि गहीरहैरी आयो तिह तीरहैरी, चेतैं निज घां कहीरी परहै सही रहै ॥४॥

अरिनके ठट्ट दह वट्ट कर डारे जिन, करम सुभट्टनके पट्टन उजारे हैं । नर्क तिरजंच चट पट्ट देकैं बैठ रहे, विपै चौर झट झट्ट पकर पछारे हैं ॥ भौ वन कटाय डारे अट्ट मद दुट्ट मारे, मदनके देश जारें क्रोध हू संहारे हैं । चढत सम्यक्त सूर बढत प्रताप पूर, सुखके समूह भूर सिद्धके निहारे हैं ॥ ५ ॥

वारवार फिर आई वारवार फिर आई, वारवार फेर आई
आतमसों हरी है । वारवार जुर आई वारवार जर आई,
वारवार जार आई ऐसी नीच खरी है ॥ वारवार वार चाहै
वारवार वार चाहै, वारवार चार चाहै मानो चार दरी है । वारवार
धोखो खाहि वारवार कहै काहि, वारवार पोषै ताहि वारबुधि
करी है ॥ ६ ॥

अपनी कमाई भैया पाई तुम यहां आय, अब कछु सोच किये
हाथ कहा परि है । तब तो विचार कछु कीन्हों नाहिं बंधसमें,
याके फल उदै आय हमै ऐसे करि है ॥ अब पछताये कहा होत
है अज्ञानी जीव, भुगते ही वनै कृति कर्म कहूं हरि है । आगेको
संभारिकें विचार काम वही करि, जातैं चिदानंद फंद फेरकै न
धरि है ॥ ७ ॥

नाम मात्र जैनी पै न सरधान शुद्ध कहूं, मूँड़के मुँड़ाये कहा
सिद्धि भई बावरे । काय कृश किये कछु कर्म तौ न कृश होहिं,
मोह कृश करिवेको भयो तो न चावरे ॥ छाँड्यो घरवार पै न
छाँड्यो घरवार कोऊ, वार वार ढूँढ़ै धन वनै कहूं दावरे । कलि-
युगके साधुकी वडाई कहो केती कीजे, रात दिना जाके भाव
रहै हाव हावरे ॥ ८ ॥

सवैया.

हे मन नीच निपात निरर्थक, काहेको सोच करै नित कूरो ।
तू कितहू कितहू पर द्रव्य है, ताहिकी चाह निशा दिन झूरो ॥
आवत हाथ कछु शठ तेरे जु, बांधत पाप प्रणाम न पूरो ।
आगेको वेल बढै दुखकी कछु, सूझत नाहिं किधों भयो सूरु ॥ ९ ॥

छप्पय छंद.

शीश गर्व नहिं नम्यो, कान नहिं सुनै वैन सत ॥
नैन न निरखे साधु, वैनतैं कहे न शिवपति ॥
करतैं दान न दीन, हृदय कछु दया न कीनी ॥
पेट भरयो कर पाप, पीठ परतिय नहिं दीनी ॥
चरन चले नहिं तीर्थ कहँ, तिहि शरीर कहा कीजिये ॥
इमि कहै श्याल रे श्वान यह ! निंद निवृष्ट न लीजिये ॥ १० ॥

सवैया. (मात्रिक)

मनवचकाय योग तीनहुंसाँ, सब जीवनको रक्षक होय ॥
झूठे वचन न बोलै कबहू, विना दिये कछु लेय न जोय ॥
शीलव्रतहिं पालैं निरदूपन, दुविधि परिग्रह रंच न कोय ॥
पंच महाव्रत ये जिन भापित, इहि मगचलै साधु है सोय ॥ ११ ॥

कवित्त.

पेटहीके काज महाराजजूको छांड देत, पेटहीके काज झूठ
जंपत वनायकें । पेटहीके काज राव रंकको बखान करै, पेटहीके
काज तिन्हें मेरु कहँ जायकें ॥ पेटहीके काज पाप करत डरात
नाहिं, पेटहीके काज नीच नयँ शिर नायकें । पेटहीके काजको
खुशामदी अनेक करै, ऐसे मूढ पेट भैर पंडित कहायकें ॥ १२ ॥

छप्पय.

बीतरागके विंव सेव, समदृष्टी करई ॥
अष्टक द्रव्य चढाय, थाल भरि आगे धरई ॥
पूजा पाठ प्रमान, जाप जप ध्यानहिं ध्यावै ॥
अचल अंग थिरभाव, शुद्ध आतम लौ लावै ॥

(१) कहत.

मंजार निरखि नैवेद्यको, मर्कट फल इच्छा धरहि ।
तंदुलहिं चिरा पुष्पहिं भँवर, एक थाल भुंजन करहि ॥ १३ ॥

मात्रिक कवित्त.

जे जिहँ काल जीव मत ग्राही, किरिया भावहोहिं रस रत्त ।
कर करनी निज मन आनंदै, बांछा फल चिंतहिं दिन रत्त ॥
रहित विवेक सु ग्रंथ पाठ कर, झार धूर पद तीन धरत्त ।
तिनको कहिये औगुन थानक, चक्रीधरमें नृपति भरत्त ॥ १४ ॥

कवित्त.

केई केई बेर भये भूपर प्रचंड भूप, बड़े बड़े भूपनके देश
छीनलीने हैं । केई केई बेर भये सुर भौनवासी देव, केई केई
बेर तो निवास नर्क कीने हैं ॥ केई केई बेर भये कीट मलमूत
माहिं, ऐसी गति नीचवीच सुख मान भीने हैं । कौड़ीके अनंत
भाग आपन विकाय चुके, गर्व कहा करे मूढ़ ! देख ! दृग दीने
हैं ॥ १५ ॥

जब जोग मिल्यो जिनदेवजीके दरसको, तब तो संभार कछु
करी नाहिं छतियाँ । सुनि जिनवाणीपै न आनी कहूं मन माहिं.
ऐसो यह प्राणी यों अज्ञानी भयो मतियाँ ॥ स्वपर विचारको
प्रकार कछु कीन्हों नाहिं, अब भयो बोध तब झूरे दिन रतियाँ ।
इहाँ तो उपाय कछु बनै नाहिं संजमको, वीत गयो औसर बनाय
कहै बतियाँ ॥ १६ ॥

छप्पय.

जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ अघ कैसे आवें ।

जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ व्यंतर भज जावें ॥

जहाँ जपहि नवकार, तहाँ सुख संपत्ति होई ।
जहाँ जपहि नवकार, तहाँ दुख रहै न कोई ॥
नवकार जपत नव निधि मिलै, सुख समूह आवै सरव ।
सो महा मंत्र शुभ ध्यानसों, 'भैया' नित जपवो करव ॥ १७ ॥

दोहा.

सीमंधर स्वामी प्रमुख, वर्त्तमान जिनदेव ॥
मन वच शीस नवायके, कीजे तिनकी सेव ॥ १८ ॥
महिमा केवल ज्ञानकी, जानत है श्रुतज्ञान ॥
तातें दुह्म बरावरी, भापे श्री भगवान ॥ १९ ॥
जितनो केवल ज्ञान है, तितनो है श्रुतज्ञान ॥
नाव भिन्न यातें कह्यो, कर्म पटल दरम्यान ॥ २० ॥
विन कपायके त्यागतें, सुख नहिं पावै जीव ॥
ऐसे श्री जिनवर कही, बानी माहिं सदीव ॥ २१ ॥
जो कुदेवमें देव बुधि, देव विपै बुधि आन ॥
जो इन भावन परिणवै, सो मिथ्या सरधान ॥ २२ ॥
जैसे पटेंको पेखनो, तैसो यह संसार ॥
आय दिखाई देत है, जात न लगै बार ॥ २३ ॥
त्याग विना तिरवो नहीं, देखहु हिये विचार ॥
तूँवी लेपहिं त्यागती, तव तर पहुँचै पार ॥ २४ ॥
त्याग बडो संसारमें, पहुँचावै शिवलोक ॥
त्यागहितें सब पाइये, सुख अनंतके थोक ॥ २५ ॥
सुगुरु कहत है शिष्यको, आपहि आप निहार ॥
भले रहे तुम भूलिकें, आपहि आप विसार ॥ २६ ॥

(१) बीचमें. २ पटवीजना. (दृष्टोत्)

जो घर तज्यो तो कहा भयो, राग तज्यो नहिं वीर ! ॥
 साँप तजै ज्यों कंचुकी, विष नहिं तजै शरीर ॥ २७ ॥
 भरतक्षेत्र पंचम समय, साधु परिग्रहवंत ॥
 कोटि सात अरु अर्ध सब, नरकहिं जाय परंत ॥ २८ ॥
 देत मरन भव साँप इक, कुगुरु अनंती बार ॥
 वरु साँपहिं गहपकरिये, कुगुरु न पकर गँवार ॥ २९ ॥
 बाघ सिंघको भय कहा ? एकवार तन लेय ॥
 भय आवत है कुगुरुको, भवभव अति दुख देय ॥ ३० ॥
 दृगके दोष न छूटहीं, मृग जिमि फिरत अजान ॥
 धृग जीवन या पुरुषको, भृगुकेदास समान ॥ ३१ ॥
 केवलज्ञान स्वरूप मय, राजत श्री जिनराय ॥
 वंदत हों तिनके चरन, मनवच शीस नवाय ॥ ३२ ॥
 कर्मनके वश जीव सब, वसत जगतके माहिं ॥
 जे कर्मनको वस किये, ते सब शिवपुर जाहिं ॥ ३३ ॥
 इति फुटकर कविता.

अथ परमात्मशतक लिख्यते ।

दोहा.

पंच परम पद प्रणामिके, परम पुरुष आराधि ॥
 कहों कछु संक्षेपसों, केवल ब्रह्म समाधि ॥ १ ॥
 सकल देवमें देव यह, सकल सिद्धमें सिद्ध ॥
 सकल साधुमें साधु यह, पेख निजातमरिद्ध ॥ २ ॥

(२) यह निजातम की समृद्धि सम्पूर्ण देवोंमें देव, सम्पूर्ण सिद्ध पर-

सारे विभ्रम मोहके, सारे जगत मँझार ॥
सारे तिनके तुम परे, सारे गुणहिं विसार ॥ ३ ॥

सोरठा.

पीरे होहु सुजान, पीरे का रे हैं रहे ॥
पीरे तुम विन ज्ञान, पीरे सुधा सुबुद्धि कहँ ॥ ४ ॥
विमल रूप निजमान, विमल आन तू ज्ञान में ॥
विमल जगतमें जान, विमल समलतातें भयो ॥ ५ ॥
उजरे भाव अज्ञान, उजरे जिहँतें बंधये ॥
उजरे निरखे भान, उजरे चारहु गतिनतें ॥ ६ ॥

मात्माओंमें सिद्ध और सम्पूर्ण साधुओंमें साधु है इससे हे भव्य
उस निजातम रिद्धिको पेख अर्थात् देख ॥

(३) (सारे) सम्पूर्ण जगतमें जो मोहके (सारे) सब विभ्रम हैं, तुम
(सारे) उत्तम २ गुणोंको विसारके उन्हींके (सारे) सहारे अर्थात् आ-
श्रय पड़े हो ।

(४) हे मुजान ! (पीरे) पियरे अर्थात् प्यारे होओ. (पीरे) दु-
खित (का रे) क्यों हो रहे हो, और तुम विना ज्ञानके ही (पीरे) पीड़े
अर्थात् दुःखित हुए हो, इसलिये अब बुद्धि रूपी अमृत को (पीरे)
पान करो ।

(५) हे विमल आत्मन् ! अपना (विमल) कर्मों से रहित स्वरूप
मान करके (तू ज्ञानमें आन) ज्ञानको प्राप्त हो, (विमल) विशेष मल-
रहित सिद्ध संसारमेंसे ही जानों, क्योंकि विमल मलसहितसे होता है,
भावार्थ मोक्ष संसारपूर्वकही होता है ।

(६) हे आत्मन ! वह अज्ञानभाव (उजरे) उजड़े अर्थात् विनाश

सुमरहु आतम ध्यान, जिहि सुमरे सिधि होत है ॥
सुमरहिं भाव अज्ञान, सुमरन से तुम होतहो ॥ ७ ॥

दोहा.

मैनकाम जीत्यो वली, मैनकाम रस लीन ॥
मैनकाम अपनो कियो, मैनकाम आधीन ॥ ८ ॥
मैनासे तुम क्यों भये, मैनासे सिध होय ॥
मैनाहीं वा ज्ञानमें, मैनरूप निज जोय ॥ ९ ॥
जोगी सो ही जानिये, वसै सजोगीगेह ॥
सोई जोगी जोगैहै, सब जोगी सिरतेह ॥ १० ॥

को प्राप्त हुए जिनसे आत्मा (उजरे) उजले अर्थात् प्रगटरूपसे बंद हो रहा था, और जब ज्ञान सूर्य (उजरे) उज्ज्वल देखे गये, तब चारों गतों से (उजरे) छूटे भावार्थ सिद्ध पदको प्राप्त हुए ।

(७) हे भाई! ध्यानमें आत्माका स्मरण करो जिसके स्मरणसे कार्य सिद्ध होता है, अथवा जिससे सिद्ध होते हो, अज्ञान भावों के (सुमरेहिं) विलकुल नष्ट होजाने से तुम (सुमरनसे) स्मरण करने योग्य (परमात्मा) हो सके हो ।

(८) मैं बलवान कामको न जीत सका और (मैनकाम) मैं 'नकाम' व्यर्थ रसलीन अर्थात् विषयाशक्त हुआ. मैनकाम कहिये कामदेवके आधीन होकर मैंने अपना काम न किया अर्थात् आत्मकल्याण नहीं किया ।

(१०) (पी) हे प्रिय ! तुम (तारी) ध्यानको भूल करके अथवा तारी कहिये मोहरूपी नसा पी कहिये पिया और (तारीतन) संसार की अथवा मोहकी रीतियों में लवलीन हो रहेहो, इसलिये हे प्रवीण तुम ज्ञान की (तारी) ताली अर्थात् कुंजी (चाबी) 'खोजो' तलाश करो, जो (तारी)

१ तेरहवें गुणस्थानमें २ योग्य है.

तारी पी तुम भूलके, तारीतन रसलीन ॥
 तारी खोजहु ज्ञानकी, तारी पति परवीन ॥ ११ ॥
 जिन भूलहु तुम भर्ममें, जिन भूलहु जिनधर्म ॥
 जिन भूलहिं तुम भूलहो, जिन शासनको मर्म ॥ १२ ॥
 फिरे बहुत संसारमें, फिर २ थाके नाहिं ॥
 फिरे जवहिं निर्जरूपको, फिरे न चहुं गति माहिं ॥ १३ ॥
 हरी खात हो बावरे, हरी तोरि मति कौन ॥
 हरी भजो आपौ तजो, हरी रीति सुख हौन ॥ १४ ॥

द्वयसरी दोहा.

जैनी जाने जैन नैं, जिन जिन जानी जैन ॥
 जेजे जैनी जैन जन, जानै निज निज नैन ॥ १५ ॥

तुम्हारी (पत) लज्जा है अथवा तुम प्रवीन और तारीपति कहिये ज्ञान-
 रूपी तारीके पतिहो

(१४) हे (बावरे) भोले जीव । तेरी मति किसने हरली है, जो तू
 (हरी) (सन्नित्त वस्तुएँ) खाता है, अब आपौ (ममत्व) छोड़ करके (हरी)
 सिद्ध भगवान को भजो अर्थात् ध्यावो. यही सुखहोनेवाली (हरी) तानी
 अथवा उत्तम रीति है.

(१५) जैनी जैनशास्त्रोक्त नयोंको जानता है, और (जिन)
 जिन्हों ने उन नयोंको (जिन) नहीं जानीं, उनकी (जैन) जय नहीं होती
 है. इसलिये (जेजे) जो जो (जैनजन) जिनधर्मके दास जैनी हैं
 वे अपनी २ (नैन) नयोंको अवश्य ही जानें अर्थात् समझें.

(१) एक प्रकारका नशा. (२) मत (निषेधार्थ). (३) जिनेश्वर भगवानको.

(४) भ्रमण करे. (५) पलटै, सम्मुख होवै. (६) आत्मरूप.

परमारथ परमें नहीं, परमारथ निज पास ॥
 परमारथ परिचय बिना, प्राणी रहै उदास ॥ १६ ॥
 परमारथ जानें परम, परं नहिं जाने भेद ॥
 परमारथ निज परखिबो, दर्शन ज्ञान अभेद ॥ १७ ॥
 परमारथ निज जानिबो, यहै परमको राज ॥
 परमारथ जाने नहीं, कहौ परम किहि काज ॥ १८ ॥
 आप पराये वश परे, आपा डारयो खोय ॥
 आपें आप जाने नहीं, आप प्रगट क्यों होय ॥ १९ ॥
 सब सुख सांचेमें वसै, सांचो है सब झूठ ॥
 सांचो झूठ वहायके, चलो जगतसों रूठ ॥ २० ॥
 जिनकी महिमा जे लखें, ते जिनैं होहिं निदान ॥
 जिनवानी यों कहत है, जिन जानहु कछु आन ॥ २१ ॥
 ध्यान धरो निजरूपको, ज्ञान माहिं उर आन ॥
 तुम तो राजा जगतके, चेतहु विनती मान ॥ २२ ॥
 चेतन रूप अनूप है, जो पहिचानें कोय ॥
 तीन लोकके नाथकी, महिमा पावे सोय ॥ २३ ॥
 जिन पूजहिं जिनवर नमहिं, धरहिं सुथिरता ध्यान ॥
 केवलपदमहिमा लखहिं, ते जिय सम्यकवान ॥ २४ ॥

(२०) सम्पूर्ण सुख सांचेमें अर्थात् सच्चे स्वरूपमें है, और सांचा अर्थात् पौद्गलिकदेह रूपी सांचा बिल्कुल झूठा अर्थात् अस्थिर है इसलिये, (सांचो झूठ) इस देहरूपी झूठे, सांचेको त्याग करके, संसारसों (रूठ) रुष्ट होकर चल अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर.

१ दुखित. २ परन्तु. ३ आतमा. ४ आप अपनेको नहीं जानता. ५ तीर्थकर. ६ हृदयमें शान लाकरके.

मुदत लों परवश रहे, मुदत कर निज नैन ॥
 मुदत आई ज्ञानकी, मुदतकी, गुरु वैन ॥ २५ ॥
 ज्ञान दृष्टि धर देखिये, शिष्ट न यामहिं कोय ॥
 ईष्ट कर पर वस्तुसों, भिष्ट रीति है सोय ॥ २६ ॥
 तुम तौ पद्म समान हो, सदा अलिप्त स्वभाव ॥
 लिप्त भये गोरेंस विपें, ताको कौन उपाव ॥ २७ ॥
 वेदभाव सब त्याग कर, वेद ब्रह्मको रूप ॥
 वेद माहिं सब खोज है, जो वेदे चिद्रूप ॥ २८ ॥
 अनुभवमें जोलों नहीं, तोलों अनुभव नाहिं ॥
 जे अनुभव जानें नहीं, ते जी अनुभव माहिं ॥ २९ ॥
 अपने रूप स्वरूपसों, जो जिय राखे प्रेम ॥
 सो निहचै शिवपद लहै, मनसावांचानेम ॥ ३० ॥

(२५) हे आत्मन् ! तुम अपने नेत्रोंको (मुदित) मुद्रित अर्थात् बंद करके (मुदतलों) बहुत समय तक परवश अर्थात् पुद्गलके वशमें रहे; परंतु जब ज्ञानकी (मुदत) अवधि आई, तब गुरुके वचनोंने (मुदत) मदत अर्थात् सहायता कीन्हीं.

(२९) जबतक अनुभव—‘अनु-पश्चात्’ भव—संसारमें नहीं अर्थात् जबतक थोड़े भव बाकी न रहें, तबतक ‘अनुभव’, अर्थात् सम्यक ज्ञान नहीं है, क्योंकि जो अनुभव (सम्यक ज्ञान) नहीं जानते हैं, वे ‘अनुभव’, अर्थात् पीछे संसारमें ही पड़े रहते हैं,

- (१) उत्तम. (२) प्यार. (३) ‘शृष्ट’ खराब. (४) ‘शो’ इन्द्रियोंके ‘रस’ विषयमें.
 (५) क्षीणुनपुसकभाव. (६) आत्माका स्वरूप जान. (७) श्रावणमें. (८) पता.
 (९) यदि चिद्रूपको जानता हो तो. नहीं तो कुछ नहीं. १० मनसे और वचनसे.

प्रश्नोत्तर.

षट् दर्शनमें को शिरै? कहा धर्मको मूल? ॥
 मिथ्यातीके है कहा? 'जैन' कह्यो सु कबूल ॥ ३१ ॥
 वीतराग कीन्हों कहा? को चन्दा की सैन? ॥
 धामद्वार को रहत है? 'तारे' सुन शिख बैन ॥ ३२ ॥
 धर्म-पन्थ कोन कह्यो? कौन तरै संसार? ॥
 कहो रंकवल्लभ कहा? 'गुरु' वोले वच सार ॥ ३३ ॥
 कहो स्वामि को देव है? कौ कोकिल सम काग? ॥
 को न नेह सज्जन करै? सुनहु शिष्य विनराग ॥ ३४ ॥
 गुरु सङ्गति कहा पाइये? किहि विन भूलै भर्म? ॥
 कहो जीव काहे मयी? 'ज्ञान' कह्यो गुरु मर्म ॥ ३५ ॥
 जिनें पूजै ते हैं किसे? किहें जगमें मान? ॥
 पंचमहाव्रत जे धरै, 'धन' वोले गुरु ज्ञान ॥ ३६ ॥
 छिन छिन छीजै देह नर, कित है रहो अचेत ॥
 तेरे शिर पर अरि चढ्यो, काल दमामों देत ॥ ३७ ॥
 जो जन परसों हित करै, निज सुधि सबै विसार ॥
 सो चिन्तामणि रत्न सम, गयो जन्म नर हार ॥ ३८ ॥
 जैसे प्रगट पतङ्गके, दीप माहिं परकाश ॥

(३१) छहों दर्शनमें जैनदर्शन श्रेष्ठ है, धर्मोंका मूल जैन है, मिथ्यातीके जैन अर्थात् जै (विजय) नहीं होती.

(१) घर. (२) गरीबका वल्लभ अर्थात् प्यारा गुरु (भारी) पदार्थ होता है.

(३) जो कोयल विना राग (मोटी आवाज) कीहो वह काग समान ही है. (४)

जो जिन भगवानकी पूजा करते हैं वे धन अर्थात् धन्य हैं. (५) सूर्य.

तैसे ज्ञान उदोतसों, होय तिमिरको नाश ॥ ३९ ॥

चार माहिं जोलों फिर, धरै चारसों प्रीति ॥

तौलों चार लखै नहीं, चार खूंट यह रीति ॥ ४० ॥

जे लागे दशवीससों, ते तेरह पंचास ॥

सोरह वासठ कीजिये, छांड चारको वांस ॥ ४१ ॥

विधि कीजे विधि भाव तज, सिद्ध प्रसिद्ध न होय ॥

यहै ज्ञानको अंग है, जो घट बूझै कोय ॥ ४२ ॥

चार व्यसन को नृपति जो, प्रभु जुआ तो ज्ञान ॥

तुम राजा शिवलोकके, वह दुरमतिकी खान ॥ ४३ ॥

आप अकेलो ब्रह्म मय, परयो भरमके फंद ॥

ज्ञानशक्ति जानें नहीं, कैसे होय स्वच्छंद ॥ ४४ ॥

शिवस्वरूपके लखतहीं, शिवसुख होय अनन्त ॥

शिव समाधिमें रम रहे, शिव मूरति भगवंत ॥ ४५ ॥

(४०) जीव जब तक चार माहिं अर्थात् चार गतीन (देव, मनुष्य, नरक, तिर्यक्ष) में फिरता है और चार (क्रोध, मान, माया, लोभ) में प्रीति रखता है, तब तक चार अनन्त चतुष्टय (अनन्तसुख, अनन्तज्ञान, अनन्तबल; अनन्तवीर्य) को प्राप्त भी नहीं कर सका है, अर्थात् कर्मोंसे रहित नहीं हो सका है, यह चार खूंटकी रीति है.

(४१) जो दश+वीस=तीस कहिये तृष्णासे अथवा लीसे अनुरक्त हुए. वह तेरह+पंचास+कहिये तेसठ हैं अर्थात् मूर्ख हैं. इसलिये सोलह+बासठ+अठहत्तर कहिये आठ कर्मोंको हतकर तर कहिये तिरो और चार गतिनका बास छोड दो (इसमें संख्या शब्दोंसे श्लेष रूप द्वितीय अर्थ ग्रहण कर कविने चतुराई दिखाई है.)

बालापन गोकुलवसे, यौवन मनमथ राज ॥
 वृन्दावन पर रस रचे, द्वारे कुवजा काज ॥ ४६ ॥
 दिना दशकके कारणे, सब सुख डारयो खोय ॥
 विकल भयो संसारमें, ताहि मुक्ति क्यों कोय ॥ ४७ ॥
 या माया सों राचिके, तुम जिन भूलहु हंस ॥
 संगति याकी त्यागके, चीन्हों अपनो अंस ॥ ४८ ॥
 जोगी न्यारो जोगतें, कौरे जोग सब काज ॥
 जोगें जुगत जानें सबै, सो जोगी शिवराज ॥ ४९ ॥
 जाकी महिमा जगतमें, लोकालोक प्रकाश ॥
 सो अविनाशी घट विपें, कीन्हों आय निवास ॥ ५० ॥
 केवल रूप स्वरूपमें, कर्म कलङ्क न होय ॥
 सो अविनाशी आत्मा, निजघट परगट होय ॥ ५१ ॥
 धर्माधर्म स्वभाव निज, धरहु ध्यान उरआन ॥
 दर्शन ज्ञान चरित्रमें, केवल ब्रह्म प्रमान ॥ ५२ ॥
 निज चन्दाकी चाँदनी, जिहि घटमें परकाश ॥
 तिहिँ घटमें उद्योत है, होय तिमरको नाश ॥ ५३ ॥

(४६) कृष्णजी बालापनमें गोकुलमें रहे. यौवनमें मथुरामें, और फिर कुन्दा परस्त्रीके रसमें मग्न हो उसके द्वारे वृन्दावनमें रहे. इसी प्रकार हे जीव ! तू बालापनमें तो ' गोकुल, अर्थात् इन्द्रियोंके कुल समूहमें अथवा उनकी केलिमें रहा, और जवानीमें मनमथ अर्थात् कामदेवके राज्यमें रहा अर्थात् वशमें रहा, और पीछे वृन्दावन जो कुटुम्ब समूह उसमें रचा. काहेके लिये, 'द्वारे कुवजाकाज, कहिये द्वार जो आस्रव उसके कवजेमें आनेको अथवा द्वार जो मोक्षका उसको कुब्ज अर्थात् बन्द करनेकेलिये,

जित देखत तित चांदनी, जव निज नैनन जोत ॥
 नैन मिचैत पेखै नहीं, कौन चांदनी होत ॥ ५४ ॥
 ज्ञान भान परगट भयो, तम अरि नासे दूर ॥
 धर्म कर्म मारग लख्यो, यह महिमा रहिपूर ॥ ५५ ॥
 जेतन की संगति किये, चेतन होत अजान ॥
 ते तनसों ममता धरै, आपुनो कौन सयान ॥ ५६ ॥
 जे तन सों दुख होत है, यहै अचंभो मोहि ॥
 चेतन सों ममता धरै, चेतन! चेत न तोहि ॥ ५७ ॥
 जा तनसों तू निज कहै, सो तन तौ तुझ नाहिं ॥
 ज्ञान प्राण संयुक्त जो, सो तन तौ तुझ माहिं ॥ ५८ ॥
 जाके लखत यहै लख्यो, यह मै यह पर होय ॥
 महिमा सम्यक् ज्ञानकी, बिरला वूझै कोय ॥ ५९ ॥
 छहों द्रव्य अपने सहज, राजत हैं जग माहिं ॥
 निहचै दृष्टि विलोकिये, परमें कबहूँ नाहिं ॥ ६० ॥
 जड़ चेतन की भिन्नता, परम देवको राज ॥
 सम्यक होत यहै लख्यो, एक पंथ द्वै काज ॥ ६१ ॥
 समुझै पूरण ब्रह्मको, रहै लोभ लौं लाय ॥
 जान वूझ कूए परै, तासों कहा वसाय ॥ ६२ ॥
 जाकी प्रीतिप्रभावसों, जीत न कबहू होय ॥
 ताकी महिमा जे धरें, दुरबुद्धी जिय सोय ॥ ६३ ॥
 जाकी परम दशाविषे, कर्म कलङ्क न कोय ॥
 ताकी प्रीतिप्रभावसों, जीव जगतमें होय ॥ ६४ ॥

अपनी नवनिधि छांड़ि कै, मांगत घर २ भीख ॥
 जान वृक्ष कूप परै, ताहि कहौ कहा सीख ॥ ६५ ॥
 मूढ मगन मिथ्यातमें, समुझै नाहिं निठोल ॥
 कानी कौड़ी कारणे, खोवै रतन अमोल ॥ ६६ ॥
 कानी कौड़ी विषय सुख, नरभव रतन अमोल ॥
 पूरव पुन्यहिं कर चढ्यो, भेद न लहै निठोल ॥ ६७ ॥
 चौरासी लखमें फिरै, रागद्वेष परसङ्ग ॥
 तिनसों प्रीति न कीजिये, यहै ज्ञानको अङ्ग ॥ ६८ ॥
 चल चेतन तहां जाइये, जहां न राग विरोध ॥
 निजस्वभाव परकाशिये; कीजे आतम बोध ॥ ६९ ॥
 तेरे वाग सुज्ञान है, निज गुण फूल विशाल ॥
 ताहि विलोकहु परमंतुम, छांड़ि आल जंजाल ॥ ७० ॥
 छहों द्रव्य अपने संहज, फूले फूल सुरंग ॥
 तिनसों नेह न कीजिये, यहै ज्ञानको अंग ॥ ७१ ॥
 सांच विसारयो भूलके, करी झूठसों प्रीति ॥
 ताहीतें दुख होत हैं, जो यह गही अनीति ॥ ७२ ॥
 हित शिक्षा इतनी यहै, हंस सुनहु आदेश ॥
 गहिये शुद्ध स्वभावको, तजिये कर्म कलेश ॥ ७३ ॥

सोरठा.

ज्यों नर सोवत कोय, स्वप्न माहिं राजा भयो ॥
 त्यों मन मूरख होय, देखहि सम्पत्ति भरमकी ॥ ७४ ॥
 कहहु कौन यह रीति, मोहि बतावहु परमंतुम ॥
 तिन ही सों पुनि प्रीति, जो नरकहिं ले जात हैं ॥ ७५ ॥

एहो ! जगतके राय, मानहु एती वीनती ॥
 त्यागहु पर परजाय, काहे भूले भरममें ॥ ७६ ॥
 एहो ! चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी ॥
 जो नरकहिं ले जाय, तिनही सों रांचे सदा ॥ ७७ ॥
 तुम तौ परम सयान, परसों प्रीति कहा करी ॥
 किहिगुण भये अयान, मोहि बतावहु सांच तुम ॥ ७८ ॥
 कर्म शुभाशुभ दोय, तिनसों आपौ मानिये ॥
 कहहु मुक्ति क्यों होय, जो इन मारग अनुसरै ॥ ७९ ॥
 मायाहीके फन्द, अरुझे चेतनराय तुम ॥
 कैसे होहु स्वछन्द, देखहु ज्ञान विचारके ॥ ८० ॥
 एहो ! परम सयान, कौन सयानप तुम करी ॥
 काहे भये अयान, अपनी जो रिधि छाड़िके ॥ ८१ ॥
 तीन लोकके नाथ, जगवासी तुम क्यों भये ॥
 गहहु ज्ञानको साथ, आवहु अपने थैल विपै ॥ ८२ ॥
 तुम पूनों सम चन्द, पूरण ज्योति सदा भरे ॥
 परे पराये फन्द, चेतहु चेतनरायजू ॥ ८३ ॥
 जानहिं गुण पर्याय, ऐसे चेतनराय हैं ॥
 नैनन लेहु लखाय, एहो ! सन्त सुजान नर ॥ ८४ ॥
 सब कोउ करत किलोल, अपने अपने सहजमें ॥
 भेद न लहत निठोलै, भूलत मिथ्या भरममें ॥ ८५ ॥

दोहा.

आन न मानहि औरकी, आनैं उर जिनवैन ॥

(८६) जो और (अन्यधर्मवालों) की (आन) आज्ञा अथवा

१ किसकारण. २ चतुरता. ३ मोक्षस्थल. ४ पूर्णिमा. ५ मूर्ख.

आनन देखै परमको, सो आनै शिव ऐन ॥ ८६ ॥
 'लो' गनको लागो रहे, 'भ' वजल वोरे आन ॥
 ये द्वयअक्षर आदिके, तजहु ताह पहिचान ॥ ८७ ॥
 जित देखहु तित देखिये, पुद्गलहीसों प्रीत ॥
 पुद्गल हारे हार अरु, पुद्गल जीते जीत ॥ ८८ ॥
 पुद्गलको कहा देखिये, धरै विनाशी रूप ॥
 देखहु आतम सम्पदा, चिद्विलासचिद्रूप ॥ ८९ ॥
 भोजन जल थोरो निपेट, थोरी नींद कपाय ॥
 सो मुनि थोरे कालमें, वसहिं मुकतिमें जाय ॥ ९० ॥
 जगत फिरत कै जुगै भये, सो कछु कियो विचार ॥
 चेतन अब किन चेतहू, नरभव लह अतिसौर ॥ ९१ ॥
 दुर्लभ दश दृष्टान्तसों, सो नर भव तुम पाय ॥
 विषय सुखनके कारणे, सर्वसँ चले गँवाय ॥ ९२ ॥
 ऐसी मति विभ्रम भई, विषयन लागत धाय ॥
 कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ ९३ ॥
 देखहु नो निज दृष्टिसों, जगमें थिर कछु आह ॥
 सबै विनाशी देखिये, को तज गहिये काह ॥ ९४ ॥

ज्ञा नहीं मानता है, अपने हृदय में भगवानके वचनों को धारण करता
 और परम अर्थात् शुद्ध त्माका 'आनन' सुख अर्थात् रूप अवलोकन
 है, वह यथार्थ मोक्ष को प्राप्त करता है।

लोभ. २ अत्यन्त. ३ युग.

इस शतकके ९१. ९२. ९३. नं.

४ श्रेष्ठ. ५ सर्वस्व. ६ दौड़के.

के दोहे वैराग्यपक्षीसीमें भी आये हैं.

केवल शुद्ध स्वभावमें, परम अतीन्द्रिय रूप ॥
 सो अविनाशी आत्मा, चिद्विलास चिद्रूप ॥ ९५ ॥
 जैसो शिखेतहि वसै, तैसो या तनमाहिं ॥
 निश्चय दृष्टि निहारिये, फेर रंच कहुं नाहिं ॥ ९६ ॥
 चेतन कर्म उपाधि तज, रागद्वेषको संग ॥
 जे प्रगटै निज सम्पदा, शिव सुख होय अभंग ॥ ९७ ॥
 तू अनन्त सुखको धनी, सुखमय तोहि स्वभाव ॥
 करते छिनमें प्रगट निज, होय बैठ शिवराव ॥ ९८ ॥
 ज्ञान दिवाकैर प्रगटते, दश दिशि होय प्रकाश ॥
 ऐसी महिमा ब्रह्मकी, कहत भगवतीदास ॥ ९९ ॥
 जुगल चन्दकी जे कला, अरु संयमके भेद ॥
 सो संवत्सर जानिये, फाल्गुण तीज सुपेद ॥ १०० ॥

इति परमात्मशतकम्.

१०० (जुगलचन्दकी जे कला) चन्द्रकी सोलह कलाके जो जुगल
 (दूने) बत्तीस और संयम (नियम) के भेद सत्रह अर्थात् १७३२
 सम्वत्की फाल्गुण सुपेद (सुदी) तीज— “फाल्गुणशुक्ल
 तृतीया सम्वत् १७३२ विक्रमाब्दको यह परमात्मशतक बनाया.”

१ सिद्धपरमात्मा. २ मोक्षक्षेत्रमें. ३ सूर्य.

अथ चित्रबद्धकविता.

अनुष्टुपछन्द,

आपा थान न था पाआ ।

चार मार रमा रचा ॥

राधा सील लसी धारा ।

साद साम मसा दसा ॥ १ ॥

पादानुपादगतागत चित्रम्.

आ	पा	था	न
चा	र	मा	र
रा	धा	सी	ल
सा	द	सा	म

दोहा.

पर्म सेव पर सेव तज, निज उधरन मनधारि ॥

धर्म सेव वर सेव सज, निज सुधरन धनधारि ॥ २ ॥

त्रिपदीबद्धचित्रम्.

प	से	प	से	त	नि	उ	र	म	धा
र्म	व	र	व	ज	ज	ध	न	न	रि
ध	से	व	से	स	नि	सु	र	ध	धा

त्रिपदीपंचकोष्टकं.

पर्म	पर	तज	उध	मन
सेव	सेव	निज	रन	धारि
धर्म	वर	सज	सुध	धन

अन्य सप्तकोष्टकं त्रिपदी.

पर्म	वप	सेव	जनि	उध	नम	धा
से	र	त	ज	र	न	रि
धर्म	वर	सेव	जिन	सुध	नध	धा

दोहा.

जैन धर्म में जीव की, कही जात तहकीक ॥

जैन धर्म में जीत की, लही बात यह ठीक ॥ ३ ॥

एकाक्षर त्रिपदीवद्ध चक्रम्.

जै	ध	में	व	क	जा	त	की
न	र्म	जी	की	ही	त	ह	क
औ	ध	में	त	ल	बा	य	ठी

कपाटबद्ध चक्रम्.

जै	न	{ }	न	जै
ध	र्म	{ }	र्म	ध
में	जी		जी	में
व	की	{ }	की	त
क	ही	{ }	ही	ल
जा	त		त	बा
त	ह		ह	य
की	क	{ }	क	ठी

अश्वगतिबद्ध चित्रम्.

जै	न	ध	र्म	में	जी	व	की
क	ही	जा	त	त	ह	की	क
जै	न	ध	र्म	में	जी	त	की
ल	ही	बा	त	य	ह	ठी	क

छन्द (मात्रा १०) अनुप्रासरहित.

न तनमें मैंन तन, तहेम सु सुमहेत ॥

न मनमें मैंन मन, मैं सु मैं हों हों मै सु मै ॥ ४ ॥

सर्वतोभद्रगति चित्रम्.

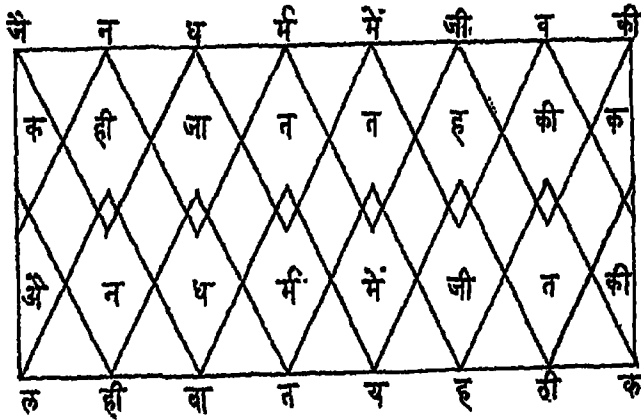
न	त	न	मै	मैं	न	त	न
त	हे	म	सु	सु	म	हे	त
न	म	न	मै	मै	न	म	न
मै	सु	मै	हों	हों	मै	सु	मै
मै	सु	मै	हों	हों	मै	सु	मै
न	म	न	मै	मै	न	म	न
त	हे	म	सु	सु	म	हे	त
न	त	न	मै	मै	न	त	न

दोहा.

जैन धर्ममें जीवकी, कही जात तहकीक ॥

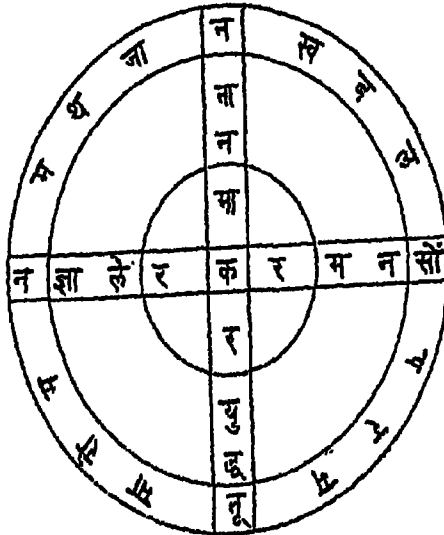
ऐन धर्ममें जीत की, लही जात यह ठीक ॥ ३ ॥

चदाई बद्ध चित्रम्.



दोहा- करमनसों करयुद्ध तू, करले ज्ञान कमान ॥
तान स्वबलसों परम तू, माते मनमथ जान ॥ ६ ॥

चक्र बद्ध चित्रम्.

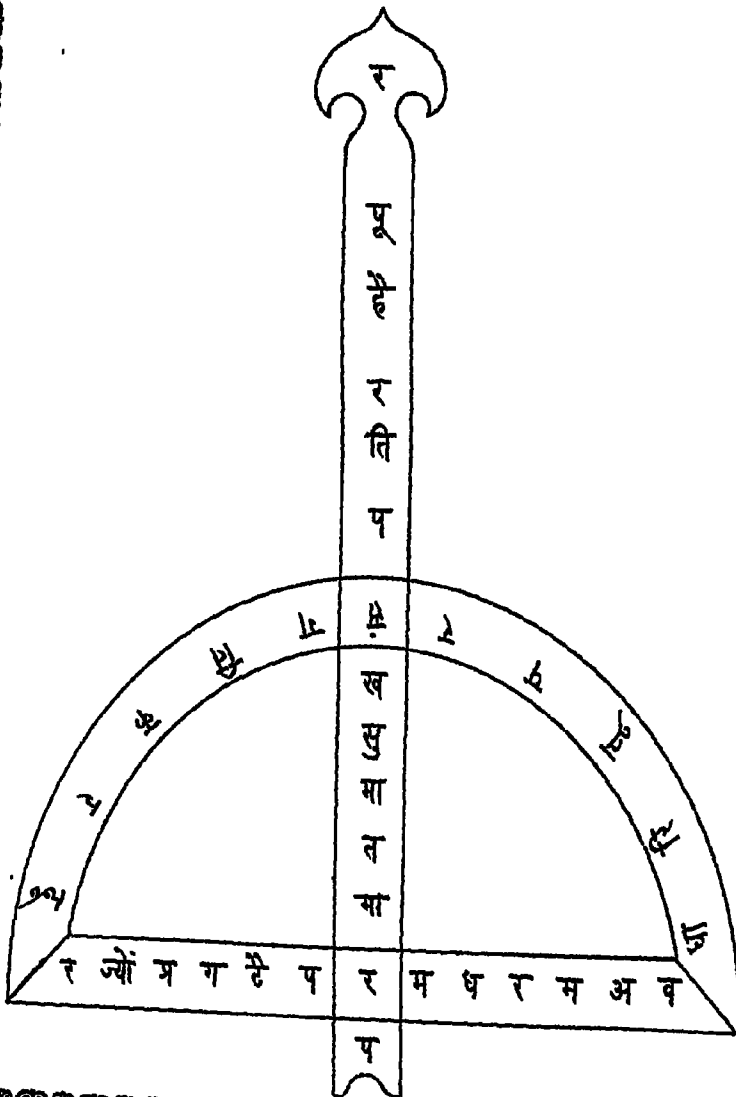


दोहा.

परम धरम अवधारि तू, पर संगति कर दूर ॥

ज्यों प्रगटै परमात्मा, सुख संपति रहै पूर ॥ ७ ॥

धनुषबद्धचित्रम्.

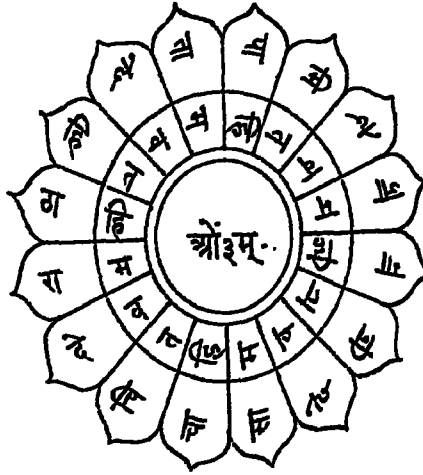


आभीर छंद.

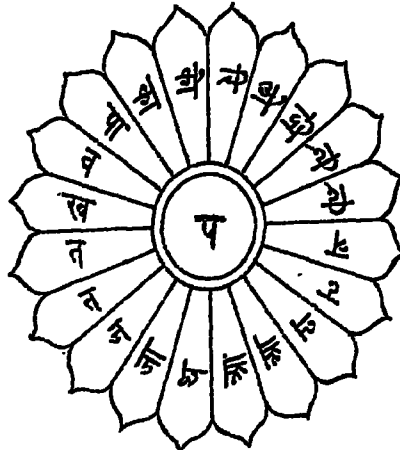
रामदेव चित चाहि । सामदेव नित गाहि ॥

जामदेव मित पाहि । तामदेव हित ठाहि ॥ ८ ॥

सर्वतो भद्रगति चित्रम्.



दोहा- आप आप अय जाप जय, तप तप स्वप वप पाप ॥
काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप त्रप दप वाप ॥ ९ ॥
विंशतिपत्र कमलाकार वद्ध चित्रम्.

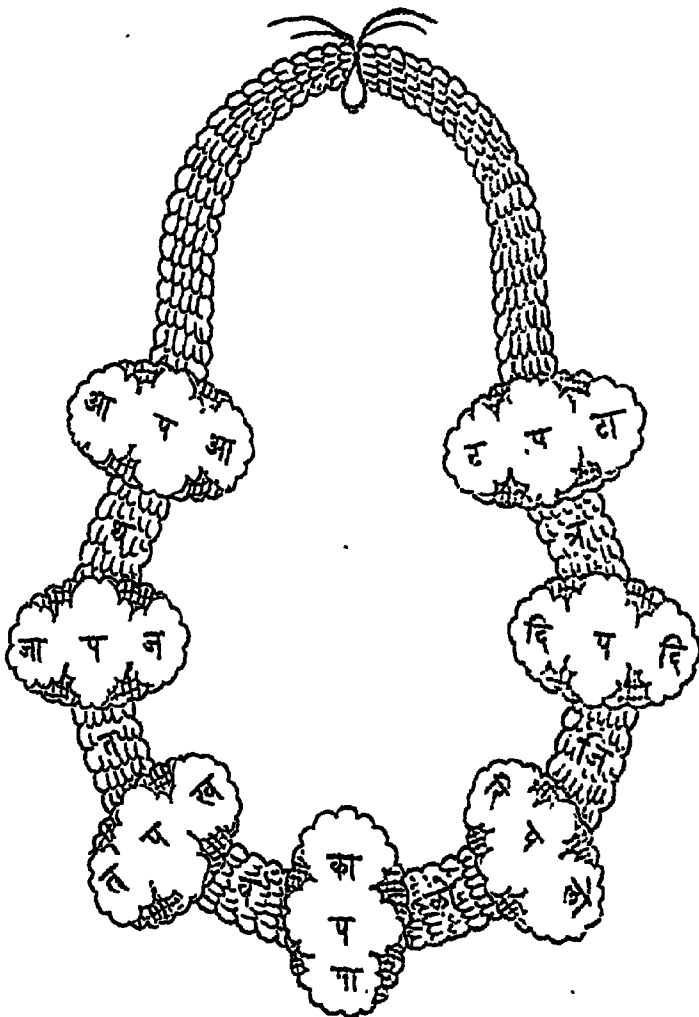


दोहा.

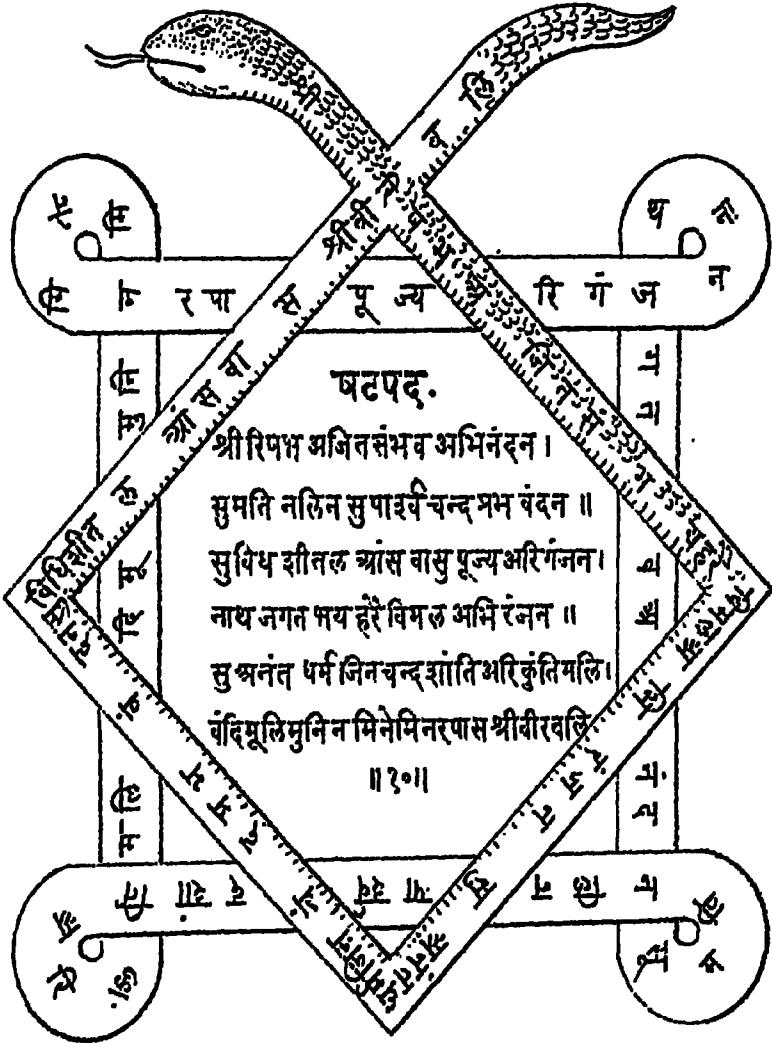
आप आप थप जाप नप, तप तप खप वप पाप ॥

काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप त्रप टप दप ॥ ९ ॥

हारवद्धित्रम्.



नाग वद्ध चित्रम्.

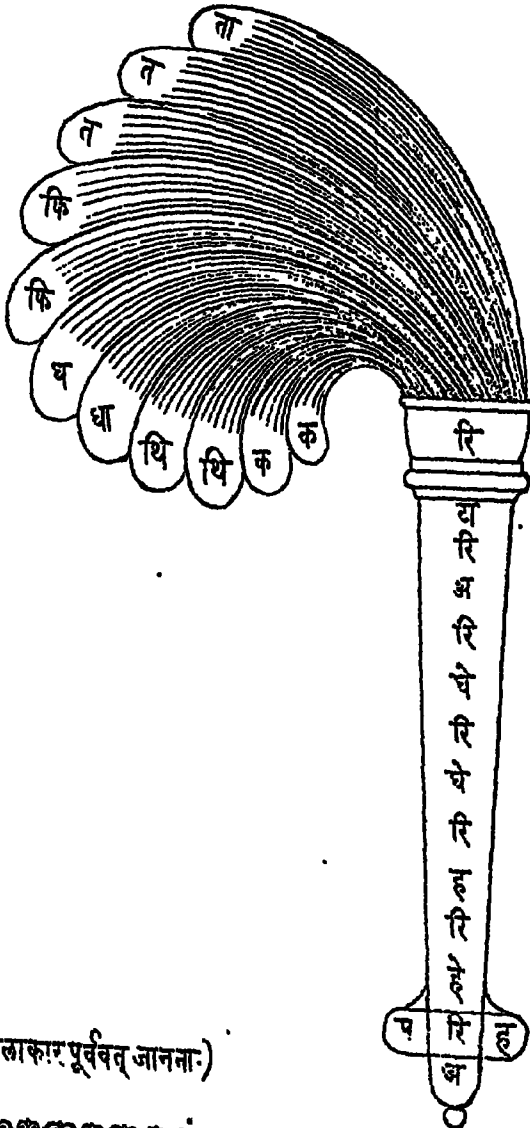


दोहा

अरि परि हरि अरि हेरि हरि, घेरि घेरि अरि दारि ॥

करि करि थिरि थिरि धारि धरि, फिरि फिरि तरि तरि तारि ॥३१॥

चामराकार बद्ध चित्रम्.

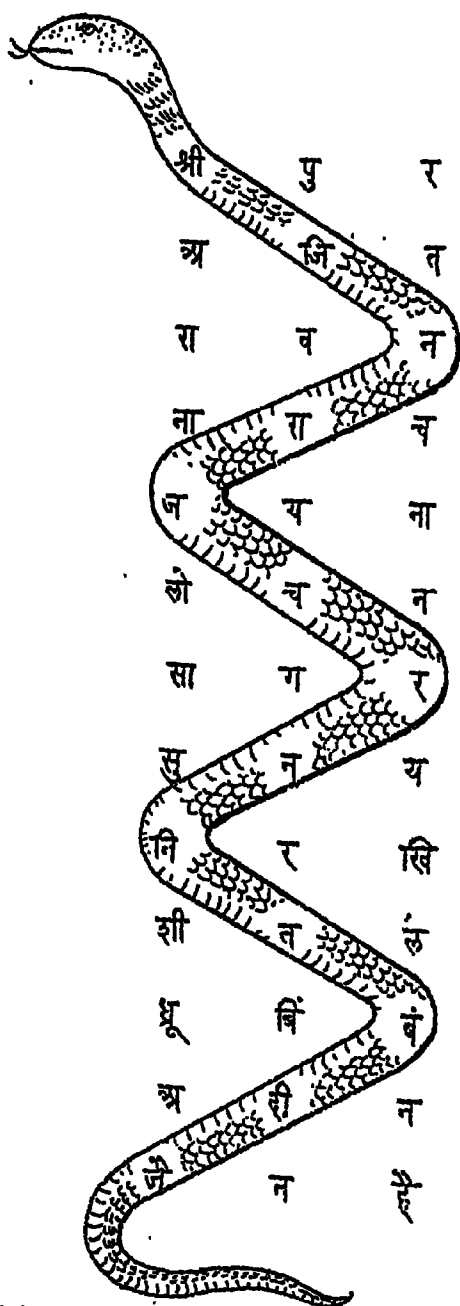


(कमलाकार पूर्ववत् जानना)

द्वितीय नाग वद्ध.



तृतीय नागवद्ध- वहिलिपिका.



घटपद-

कहाँ असको जनम? नाम कहा दूजे जिनको? । केन सीय अपहरि? कहा सीजो संहनको? ॥
 दयावंत कहा करे? केन वणदिक पेसे? । को अति जल संगेहे? अवन पुण को कह लेसे? ॥
 साधु चलत किग धरणिपर? महलिपुर जिन कवनहुव? । कवन अकिनम? कवन प्रभु? कवन शिरोगणि धर्म तुव? ॥१२॥

अथग्रन्थकर्त्ता परिचय. चौपाई ।

जंवूद्धीप सु भारत वर्ष । तामें आर्य क्षेत्र उत्कर्ष ॥
 तहाँ उग्रसेन पुर थान । नगर आगरा नाम प्रधान ॥ १ ॥
 तहाँ वसहिं जिनधर्मी लोक । पुण्यवन्त बहु गुणके थोक ॥
 बुद्धिवन्त शुभ चर्चा करें । अखय भँडार धर्मको भरें ॥ २ ॥
 नृपति तहाँ राजै औरंग । जाकी आज्ञा वहै अभंग ॥
 ईति भीति व्यापै नहिं कोय । यह उपकार नृपतिको होय ॥ ३ ॥
 तहाँ जाति उत्तम बहु वसै । तामें ओसवाल पुनि लसै ॥
 तिनके गोत बहुत विस्तार । नाम कहत नहिं आवै पार ॥ ४ ॥
 सबतें छोटी गोत प्रसिद्ध । नाम कटारिया रिद्धि समृद्ध ॥
 दशरथसाहु पुण्यके धनी । तिनके रिद्धि वृद्धि अति धनी ॥ ५ ॥
 तिनके पुत्र लालजी भये । धर्मवंत गुणगण निर्मये ॥
 तिनके पुत्र भगवतीदास । जिन यह कीन्हों 'ब्रह्मविलास' ॥ ६ ॥
 जामें निज आतमकी कथा । ब्रह्मविलास नाम है यथा ॥
 बुद्धिवंत हँसियो मत कोय । अल्पमती भाषा कवि होय ॥ ७ ॥
 भूल चूक निज नयन निहार । शुद्ध कीजियो अर्थ विचार ॥
 संवत सत्रह पंचपचास । ऋतुवसंत वैशाख सुमास ॥ ८ ॥
 शुक्लपक्ष तृतिया रविवार । संघ चतुर्विधको जयकार ॥
 पढत सुनत सबको कल्याण । प्रगट होय निजआतम ज्ञान ॥ ९ ॥
 तिहूं कालके जिन भगवान । वंदन करों जोर जुग पान ॥
 भैया नाम भगवतीदास । प्रगट होहु तसु ब्रह्मविलास ॥ १० ॥
 बहुत बात कहिये कहा धनी । जीव यहै त्रिभुवनको धनी ॥
 प्रगट होय जब केवल ज्ञान । शुद्ध स्वरूप यही भगवान ॥ ११ ॥
 इति श्रीआगरानिवासी भैया भगवतीदासजीकृत ब्रह्मविलास सम्पूर्ण.

विना टका पैसा खर्च किये ही

सैकड़ों शास्त्रोंका-

दान.

जो कोई महाशय अपने यशके इच्छुक हों तथा जिनवाणीका प्रचार करके जैनसमाजका हितसाधन करना चाहें अथवा शास्त्रदानके द्वारा असमर्थ विद्यार्थियों वा जैनी भाइयोंको सैकड़ों ग्रंथोंकी स्वाध्याय करानेका पुण्य लेना चाहें तो वे महाशय हमसे पत्रव्यवहार करें. हमने अपने शारीरिक वा मानसिक परिश्रमसे ऐसा ही एक उपाय निकाला है कि, उसकेद्वारा सैकड़ों ग्रंथ विना पैसा खर्च किये ही दान कर सक्ते

हैं.

यदि

इच्छा हो तो नीचे लिखे पतेसे हमारे साथ पत्रव्यवहार करें.

आपका

दास-

पन्नालाल जैन मैनेजर-

जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय.

पो० गिरगांव, बम्बई.